विश्वासघात

लेखक

श्री गुरुदत्त

प्रकाशक

भारती साहित्य सदन

३०।६० कनॉट सरकस, नई दिल्ली १

मूल्य ४॥)

अनुक्रमणिका

क्रम			पृष्ठ संख्या
१—समर्पण	...	...	३
२—प्राक्कथन	...	...	४
३—राष्ट्र पुरुष	...	...	८
४—स्वराज्य की आशा में	...	...	६५
५—प्रकाश की ओर	...	...	१४४
६—डायरैक्ट ऐक्शन	...	...	२३४
७—तबलीग़	...	...	२६८
८—विष बीज	...	...	३४६
९—निर्भ्रान्त मन	...	...	३७२

समर्पण !

उन लोगों की पुण्य स्मृति में जिन्होंने भारतीय संस्कृति और परम्पराओं को बनाया है, जिन्होंने उस संस्कृति और परम्पराओं को मार्जित कर संसार में सर्वोत्कृष्ट सभ्यता की रूप-रेखा खींची है और जिन्होंने अपने सर्वस्व की आहुति देकर उस संस्कृति और सभ्यता की ज्योति को जीवित रखा है, यह तुच्छ श्रद्धाञ्जली है !

—गुरुदत्त

प्राक्कथन

हावड़ा के पुल पर खड़े होकर, पुल के नीचे से बहते गंदे जल को देख और उसमें अनेक प्रकार तथा आकार के जहाज नौकाओं अथवा बजरों को तैरते देख, एक विशेष प्रकार का भाव मन में उत्पन्न होता है। मन पूछता है कि क्या जिस पानी में अनेकों नगरों का मल-मूत्र अनेकों कारखानो का कचरा और नौकाओं के असंख्य यात्रियो का थूक-नाक मिला हुआ है, क्या यही पतित पावनी गंगा का जल है?

हरिद्वार तथा उससे भी ऊपर गंगोत्तरी में जो शीतल, स्वच्छ, मधुर और पावन जल है, क्या यह वही है जो इस पुल के नीचे से गंधाता हुआ चला जाता है? दूर पूर्वी किनारे के एक घाट पर, अमावस्या के पर्व पर स्नानार्थ आए असंख्य नर-नारी दिखाई देते हैं। दूर-दूर के गाँव तथा नगरो से आए ये लोग इस हुगली के पानी में डुबकी लगाने को व्याकुल प्रतीत होते हैं। यह क्यों? यह तो वह पतित पावनी गंगा नहीं जिसके दर्शन-मात्र अथवा नाम-स्मरण से पापी देवता बन जाते हैं।

कलकत्ता के घाट पर गंगा के स्नान करनेवाले के मुख से, "हर-हर गंगे" के शब्द क्या अनर्गल हैं? इसमें सार पूछने की लालसावाले जिज्ञासु को भक्त के मन मे बैठने की आवश्यकता है।

"ओ भक्त! देखो जल में यह क्या बहता जा रहा है?'

किसी जहाज से छोड़ी गंदे तेल की धारा थी।

"जै गंगा मैया की।" भक्त के मुख से अनायास निकल गया। उसने प्रश्नकर्ता के मुख की ओर देखते हुए कहा, "वह देखो, कौन स्नान कर रही है?"

जिज्ञासु की दृष्टि उस ओर घूम गई। एक कुबड़ी, कानी, वृद्धा गले तक पानी में पैठी हुई, सूर्य की ओर मुख कर भगवान की अर्चना कर रही थी। जिज्ञासु की समझ में कुछ नहीं आया। उसने प्रश्न-भरी दृष्टि से भक्त की ओर देखा। भक्त ने पूछा, "कैसी है वह भक्तिनी?"

"अति कुरूपा है।"

"आँखोंवाले अंधे! उसकी आत्मा में पैठ कर देखो। आज निर्धन, अपाहज और निस्सहाय लोगों का एक-मात्र आश्रय वह बनी हुई है। सत्य-मार्ग की पथिक सत्तर वर्ष का मार्ग लाँघकर उस आलोक मे लीन होनेवाली है जिसमें लीन होने के लिए संसार लालायित रहता है।"

"परन्तु मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं मिला।"

"बाहरी रूप-रंग देखनेवालों को वास्तविक श्रेष्ठता दिखाई नही देती। भाई, संसार में जो कुछ दिखाई देता है कितना कुरूप है, परंतु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि सब कुछ सत्ताहीन है। भगवान शिव की जटाओं से स्रवित जल इस नदी के जल के कण-कण में व्यापक है। उसका तो एक बिन्दुमात्र पूर्ण सागर को पवित्र करने की सामर्थ्य रखता है।"

"यह मन की भावना-मात्र है भक्त! डुबकी लगाकर देखो कि भगवान की जटाओ से निकला जल शरीर को लगता है अथवा उस जहाज से फेका हुआ कचरा?"

इस भावना में कुछ तत्व है क्या? यह प्रश्न मन में उत्पन्न होना स्वभाविक ही है। परन्तु संसार में कहीं शुद्ध पवित्रता मिलती भी है? प्रकृति में प्रायः सब वस्तुएँ मिश्रित तथा अन्य वस्तुओं से संयुक्त अवस्था में पाई जाती हैं और बुद्धिमान पुरुष मैल-मक्खी को निकाल शुद्ध वस्तु उपलब्ध कर लेते हैं।

भारतीय सस्कृति भी गंगा की पवित्र धारा की भाँति बहुत ही प्राचीन काल से चली आती है। वेदो के काल से चली हुई, ब्राह्मण

ग्रन्थ, उपनिषद्, दर्शन-शास्त्र अथवा रामायण, महाभारत इत्यादि कालों में समृद्ध होती हुई और फिर बौद्ध, वेदान्त, वैष्णव इत्यादि मतो से विख्यात होती हुई बहती चली आई है। पीछे इस सभ्यता में कचरा और कूड़ा-करकट भी सम्मिलित हुआ है और अब हुगली नदी की भाँति एक अति विस्तृत, मिश्रित और ऊपर से मैला प्रवाह बन गई है।

इस प्रवाह में अभी भी वह शुद्ध निर्मल और पावन ज्योति विद्य-मान है। आँख के पीछे मस्तिष्क न रखनेवाले के लिए वह गंदा पानी है। परन्तु दिव्य दृष्टि रखनेवाले जानते हैं कि इसमें अभी भी मोती-माणिक्य भरे पड़े हैं। भारतीय सभ्यता गंगा की भाँति हुगली का पानी नहीं, प्रत्युत वह पवित्र जल है जो त्रिपुरारि की जटाओं से निकलता है।

वैदिक सभ्यता आज हिन्दुस्तानी तहज़ीब बनने जा रही है। वह हुगली का मटियाला गंधाता हुआ जल बनने जा रहा है। उसमें स्नान करने का अर्थ यह होनेवाला है कि पूर्ण विदेशी सभ्यता इसको आच्छादित करनेवाली हो। केवल देखनेवाले, इसको पूर्ण रूप मे परिवर्तित हो गया समझते हैं, परन्तु समझनेवाले इस हुगली के पानी मे गंगोत्तरी के जल को व्यापक पाते हैं।

कुछ ऐसी बातें हैं जो इस सभ्यता की रीढ़ की हड्डी है। पुनर्जन्म, कर्म-फल, विद्वानों का मान, विचार स्वातन्त्र, व्यक्ति से समाज की श्रेष्ठता, चरित्र-महिमा इत्यादि इस सभ्यता के अमिट अंग हैं। ये सब के सब वैदिककाल से आज तक अक्षुण्ण चले आते हैं। भारतीय सभ्यता की ये वस्तुएँ सार-रूप हैं। जब जब भारतीयों ने इसको छोड़ा है और विदेशी मिले हुए कचरे को भारतीय सभ्यता माना है तब तब ही देश तथा जाति आर्थिक, मानसिक और आत्मिक पतन की ओर गई है।

आज अँग्रेज़ियत और मुसलमानियत देश में इसकी पवित्र विचार-धारा को दूषित कर रही हैं। यह सम्भव है कि इन दोनों का रूप दूसरे देशों में यहाँ से भिन्न हो, परन्तु इससे क्या होता है? वास्तविक बात तो उस रूप से है जो यहाँ प्राप्य है। किसी अन्य स्थान, किसी अन्य काल और परिस्थितियो में ये सभ्यताएँ कुछ अन्य रूप रखती हो तो रखें, हमारा वास्ता तो यहाँ की बातो से है।

जब कचरा अधिक होने लगता है तो मनुष्य पवित्रता के स्रोत पर पहुँच डुबकी लगाने की सोचता है। यदि वर्तमान सभ्यता वेदो की पवित्र सभ्यता का गंदला रूप है और गंदलापन इतना अधिक है कि असल को खोज निकालना कठिन हो रहा हो तो इसके स्रोत वेदों में डुबकी लगाने की आवश्यकता है।

गंगा की महिमा जमना, घाघरा इत्यादि उसमें मिलनेवाली नदियो के कारण नहीं है। उसमें मिला हुआ कीचर अथवा मैला उसकी शोभा को बढ़ाता नहीं है। उसकी महिमा उसके स्रोत के निर्मल जल के कारण है। बुद्धिमान मल को पृथक् कर सार को प्राप्त कर भोग करता है। यही परम साधना है।

यह उपन्यास है। ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख कहानी का वातावरण बनाने के लिए किया गया है। पात्रो का नाम, स्थान, और घटनाओं की तिथियाँ, सब की सब कल्पित हैं। इनका वास्तविक बातों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

—गुरुदत्त

विश्वासघात

राष्ट्र-पुरुष

"मैं फिरोज़पुर जा रहा था। दूसरे दर्जे का टिकट ले प्लैटफार्म नम्बर एक पर पहुँचा तो कलकत्ता से डाक गाड़ी शट-शट करती हुई प्लैटफार्म पर आ खड़ी हुई। फिरोज़पुर के लिये गाड़ी प्लैटफार्म नम्बर सात पर खड़ी थी और एक नम्बर के पूरे प्लैटफार्म को लाँघ कर वहाँ जाना होता था।

"कलकत्ता से आ रहे यात्रियों के स्वागत के लिए, आये हुए उनके मित्रो और सम्बन्धियों की भारी भीड़ थी। इससे प्लैटफार्म से लाँघना कठिन हो रहा था। जब तक मैं एक नम्बर के प्लैटफार्म को लाँघकर सात नम्बर पर जाता, कलकत्ता की गाड़ी के मुसाफिर गाड़ी से उतर कुलियों से सामान उठवा स्टेशन से बाहर जाने लगे थे। उस समय मेरी दृष्टि एक मुसाफिर पर पड़ी।

"मुसाफिर सिर से नंगा था। श्वेत कुर्ता और धोती पहिने था। धोती का एक छोर कंधे पर डाले और पाँव में मोटे चमड़े की चप्पल पहिने, वह भीड़ से एक ओर हो, अनिश्चित मन से, कुछ सोच रहा प्रतीत होता था।

"मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि मैंने उसको कहीं देखा है। मैं उसके समीप से निकल गया। समीप से निकलते समय मैंने उसको एक गम्भीर साँस लेते देखा। मेरा मन अपनी पूर्व स्मृतियो को टटोलने लगा। मैं याद कर रहा था कि मैंने उसको कहाँ देखा है। इतने में मैं कुछ दूर निकल गया। इस समय मुझको कुछ याद हो आया, परन्तु मैं सोचता था कि यह कैसे हो सकता है। उनको तो अंडेमन में होना

चाहिये था। यह सोच मैं आगे बढ़ना चाहता था, परन्तु मेरे पाँव रुक गए। मन के पट पर चित्रित चित्र ने कहा, वही तो हैं।

"मैं लौट पड़ा। देखा कि वे वहीं पर खड़े प्लैटफार्म पर लटक रही घड़ी को देख रहे थे। जब मैं उनके पास आकर खड़ा हुआ तब भी वे सिर उठाए घड़ी की ओर ही देख रहे थे। इतनी बड़ी घड़ी में समय देखने के लिए इतनी देरी नहीं लगनी चाहिये थी। इससे मैं समझ गया कि वे कुछ सोच रहे हैं।

"मुझे समीप खड़ा देख उनका ध्यान उखड़ा और वे मेरी ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखने लगे। मैंने अब समीप से देखा तो मुझको विश्वास हो गया। मेरे मुख से निकल गया, 'प्रोफेसर साहब।'

"संतोष की एक क्षीण रेखा उनके मुख पर दिखाई दी। परन्तु वह शीघ्र ही विलीन हो गई। उन्होने मुझको केवल यह कहा, 'मैंने पहिचाना नहीं।'

"मैंने मन में समझा कि मेरे पहिचानने में भूल नहीं हुई। मैंने झुककर उनके चरण स्पर्श किये। उन्होंने मुझको बाहों से पकड़कर उठा लिया और गले लगा लिया।

"'आप यहाँ कैसे?' कहते-कहते मेरा गला रुँध गया और आँखें भीग गईं। उन्होंने बाहर निकलने के दरवाजे की ओर चलते हुए कहा, 'मैं छूट गया हूँ। यहाँ तक तो सरकारी टिकट से पहुँच गया हूँ। अब सोच रहा था कि किधर जाऊँ। न जाने कौन-कौन परिचितों में कहाँ-कहाँ है?'

"मैं अपना फिरोज़पुर जाना भूल गया और उनके साथ लौट पड़ा। मैंने कहा, 'आइये! मेरे साथ आइये।'

"'कहाँ?'

"मैंने उत्तर दिया, 'मेरे साथ मेरे घर, मोहनलाल रोड पर। मैं आपका विद्यार्थी हूँ और आपके विचारों का प्रशंसक हूँ। आप जब

अमैरिका से फार्मास्यूटिकल शिक्षा लेकर आए थे तो आपके पास कभी-कभी संगत करने जाया करता था।'

"हम दोनों रेल के स्टेशन से बाहर आ गए। मैंने देखा कि प्रोफेसर साहब का बिस्तर इत्यादि कुछ नहीं। मैंने पूछा, 'आपका सामान ?'

'भगवान् का धन्यवाद है कि जान वापस आ गई है।'

"यह बात सत्य ही थी। प्रोफेसर साहब को फाँसी की आज्ञा हो चुकी थी। फाँसी से आधा घंटा पूर्व प्राणदंड के स्थान आजन्म कैद की आज्ञा उन्हें मिली थी और फाँसी की टिकटिकी से लटकाये जाने के स्थान अंडेमन भेज दिये गये थे। टाँगे में बैठते हुए उन्होंने कहा, 'यह सब कुछ पुनः देखने की आशा नहीं थी।'

"ये भाई परमानन्द जी थे। मैंने अपनी राष्ट्रीयता की दीक्षा सर्व-प्रथम उनसे ही प्राप्त की थी। आर्य समाज मन्दिर में व्याख्यान देते हुए आपने "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" का पाठ पढ़ाया था।

"छै वर्ष तक अंडेमन में रहने के कारण, उनका मन हिल गया था। अतएव भाई जी का अपनी स्त्री से पुनर्मिलन अति हृदय-विदारक घटना थी। जब से वे कैद हुए थे, उनकी स्त्री आर्य कन्या पाठशाला में बीस रुपये महीना पर पढ़ाने का काम कर अपना तथा अपने बच्चों का पालन कर रही थी। उसे सूचना मिली तो वह उनको लेने आई। यह दम्पति-मिलन दुःख तथा उल्लास का एक विचित्र मिश्रण था।

"समय बदल चुका था और भाई जी की स्त्री के मन में एक क्षीण किरण की भाँति अपने पति से पुनः मिलने की आशा बनी हुई थी, परन्तु इस मिलन के पूर्व जो अंतिम समाचार उसे मिला था वह भाई जी के आमरण अन्न-शन्न करने का था। इससे उनको इस प्रकार सामने खड़ा देख, उसके मन में उठते भावों का उल्लेख करना असम्भव है। यह केवल अनुभव का विषय ही है।

"भाई जी सन् १९१५ में जेल भेजे गए थे और अब १९२१ था।

देश की अवस्था में भारी परिवर्तन आ चुका था। महात्मा गान्धी देश के मनोनीत नेता बन चुके थे।

"खलाफत आन्दोलन चला और बंद हो गया। इस आन्दोलन की बुझती हुई चिन्गारियाँ कुछ राष्ट्रीय स्कूल, कॉलेज तथा विद्यापीठों के रूप में रह गई थीं। इस काल में मैं अपने व्यवसाय को पुनः जीवित करने के लिए युरोप के भ्रमण के लिए चला गया था। वहाँ से मैं सन् १९२३ में लौटा।

"युरोप से लौटने पर 'आकाशवाणी' के दर्शन हुए। यह साप्ताहिक पत्र भाई जी निकाल रहे थे। इस पत्र को पढ़कर मेरे मन में कई बार एक संशय उत्पन्न हो जाता था। उस संशय के निवारण के लिए मैं भाई जी से मिलने की उत्कंठा करने लगा था।

"एक दिन भाई जी ब्रैडलॉ हॉल की ओर से, धूप से बचने के लिए, अपने सिर पर एक श्वेत चादर डाले हुए और हाथ में एक मोटा-सा डंडा लिए हुए आते दिखाई दिये। मैं, महात्मा हंसराज जी, प्रधान, दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कॉलेज कमेटी, से मिलने जा रहा था। भाई जी को देख मैंने उनके चरण स्पर्श किये और हाथ जोड़ नमस्ते की। उन्होंने पहिचान लिया, 'ओह ! जीवनलाल जी, कहाँ रहते हैं आप ? आपके कभी दर्शन नहीं हुए ?'

"'जी, मैं अभी-अभी युरोप से लौटा हूँ।'

"मैं अपने मन का संशय निवारण करने की आशा में उनके साथ ही चल पड़ा। भाई जी के साथ एक और सज्जन थे और वे उनको कह रहे थे। 'ब्रैडलॉ हॉल के कम्पाउंड में एक नैशनल कॉलेज खोला है, परन्तु यह सब पानी मथने के समान प्रतीत होता है।'

"मेरे इसमें कारण पूछने पर उन्होंने कहा, 'अराष्ट्रवादी लोगों के साथ रहकर राष्ट्रीयता की दुर्गति कर रहे हैं। भारत में राष्ट्र हिन्दू है, परन्तु यह कांग्रेसवादी इसको ऐसा नहीं मानते।'

"यही तो मेरे मन का प्रश्न था। मैंने इसमें अपना संशय बताया। इस पर उन्होंने अपने कथन की व्याख्या कर दी। उन्होंने कहा, 'राष्ट्र एक सजीव वस्तु है। इसके एक अंग को कष्ट होने से, पूर्ण शरीर को दु:खी होना चाहिये। देश के जिस बसनेवाले को देश के हित-अहित से अरुचि हो, वह देश में रहता हुआ भी, राष्ट्र का अंग नहीं माना जा सकता।'

"इस विवेचना ने मेरे मन में हलचल मचा दी। एक बार इस राष्ट्रीयता के पुजारी ने मुझको 'स्वर्गादपि गरीयसी' का उपदेश दिया था। इस दिन उसने एक शब्द में राष्ट्र शब्द के अर्थ का निरूपण कर दिया।

"राष्ट्र एक सजीव पुरुष है। यह मंत्र है जिसका मैं सन् १६२३ से जप कर रहा हूँ। इस जप से जो साक्षात्कार मुझको हुआ है वह वर्णनातीत है, मैंने तुम्हारी कांग्रेस के पूर्ण इतिहास को इस मन्त्र की कसौटी पर कसा है और उसे राष्ट्रीयता से रिक्त पाया है।"

[२]

लाहौर में मोहनलाल रोड पर, एक विशाल तीन छत के मकान के एक कमरे में एक वृद्ध 'एक युवक को' अपनी उक्त जीवन-स्मृति सुना रहा था।

१६४५ के निर्वाचन हो चुके थे। पंजाब धारा-सभा के जितने भी हिन्दुओं के स्थान थे सब कांग्रेस के लोगों ने प्राप्त कर लिये थे। भाई परमानन्द, जो हिन्दू महासभा के टिकट पर खड़े हुए थे, एक कांग्रेसी सदस्य से परास्त हो चुके थे। युवक, कांग्रेस के टिकट पर जिला शेखुपुरा की ओर से निर्वाचित हुआ था। अपनी सफलता और अपने दल की सफलता पर उसका मुख चमक रहा था। युवक के हाथ में 'ट्रिब्यून दैनिक' का एक अंक था जिसमें देश-भर के निर्वाचन के आँकड़े छपे थे। युवक ने कहा था, "पिता जी, देश भर में कांग्रेस के लोगों की जीत हुई है।"

पिता ने हँसते हुए कहा, "मैं तो समझता हूँ कि कांग्रेस के सिद्धान्तों की हार हुई है।"

"कैसे ?"

"देखो चेतन।" यह लड़के का नाम था, "कांग्रेस की स्थापना ही इस सिद्धान्त पर हुई थी कि देश में हिन्दू-मुसलमान और अन्य मतमतान्तरों के लोग एक जाति के अंग हैं। इस जाति का नाम कांग्रेस ने 'हिन्दुस्तानी कौम' रखा था। साठ वर्ष के निरन्तर प्रचार और घोषणाओं के पश्चात् भी मुसलमानों ने यह निर्विवाद सत्य प्रकट कर दिया है कि वे हिन्दुओं तथा अन्य मत के लोगों से एक पृथक् जाति हैं। उन्होंने मुसलिम लीग को, जो मुसलमानों को एक पृथक् जाति मानती है और उनके लिये एक पृथक् देश माँग रही है, ६६ प्रतिशत मत दिये हैं।"

"परन्तु पिता जी," चेतनानन्द का कहना था, "हिन्दुओं ने तो सर्वमत से कांग्रेस को अपनाया है।"

"ठीक ! परन्तु इस शर्त पर कि तुम अँगरेजों को भारत से निकाल देने का काम कर रहे हो और तुम लोग अखण्ड भारत के लिये यत्न करोगे। यह दोनों बातें हिन्दुओं को प्रिय हैं। इससे हिन्दुओं ने तुम्हें वोट दिये हैं। यह दोनों बातें मुसलमान पसन्द नहीं करते, जिससे उन्होंने तुमको वोट नहीं दिये। अब कांग्रेस के लिये केवल दो मार्ग रह गये हैं। या तो निर्वाचन पर दिये अपने वचन पर दृढ़ रहें और पूर्ण मुसलमान जाति का विरोध करें। यदि आवश्यकता पड़े तो उन पर शासन करें। या एक दूसरा मार्ग है कि हिन्दुओं से दिया वचन-भङ्ग करें और पाकिस्तान बनने को स्वीकृति दें। अपने को हिन्दू मुसलमान, दोनों का, प्रतिनिधि तो अब कह नहीं सकते।"

चेतनानन्द को अपने पिता के यह वाक्य रुचिकर प्रतीत नहीं हो रहे थे। उसने उन वाक्यों को कड़ुवा घूँटकर पी लिया और कहा, "आप निश्चिन्त रहिये। इन दोनों में से एक भी बात नहीं होगी।"

"अच्छी बात है। यद्यपि मुझे तुम्हारे कहने का विश्वास नहीं, तो भी धीरज से प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त और कोई उपाय भी तो नहीं है। देखो, मैं तुम्हें अपने गुरु का परिचय देता हूँ।"

इतना कह जीवनलाल ने अपने पुत्र को अपनी आपबीती सुना दी जो प्रथम अध्याय में लिखी जा चुकी है।

"आप भाई परमानन्द जी को अपना गुरु मानते हैं?"

"हाँ, राजनीतिक विचारों में। उन्होंने कांग्रेस के विषय में एक बार कहा था कि इसकी नीति देश को धरातल में पहुँचा देगी।"

"यह सब भ्रम है पिता जी......"

"भ्रम नहीं।" जीवनलाल ने जोश में आकर कहा। "मैं तुम्हें एक अपने अनुभव की बात बताता हूँ॥ महात्मा गांधी ने कोहाट में हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े के पश्चात् आत्मशुद्धि के लिये बीस दिन का व्रत रखा था। इस झगड़े में मुसलमानों ने हिन्दुओं की पूर्ण जनता को कोहाट से बाहर निकाल दिया था अथवा मार डाला था। इससे महात्मा जी को भारी दुःख हुआ था। उन्होंने अपने विश्वस्त लोगों को कोहाट भेजकर वहाँ का विवरण मँगवाया। ऐसा कहा जाता है कि इस जाँच के पश्चात् महात्मा जी को विश्वास हो गया था कि इस झगड़े में पूर्ण दोष मुसलमानों का था। परन्तु जब वक्तव्य देने का समय आया तो महात्मा जी ने वहाँ के मुसलमानों को दोष देने के स्थान पंजाब के सिखों और आर्यसमाजियों की निन्दा की थी।

"मालाबार में भी जब हिन्दू मुसलमानों का झगड़ा हुआ था तो दोष मुसलमानों का था और महात्मा जी ने मालाबार के मोपलों को दंड से बचाने का यत्न किया था।

"ऐसी अवस्था में मैं भाई जी के कहने को भ्रम नहीं मानता। वह सत्य ही प्रतीत होता है।"

चेतनानन्द और उसके पिता के विचारों में आकाश-पाताल का अन्तर था। चेतनानन्द कई वर्ष से कांग्रेस का कार्य कर रहा

था । १६४२ के आन्दोलन में बन्दी बनाकर दो वर्ष तक जेल में रखा जा चुका था ।

पिता-पुत्र का संवाद तब बन्द हुआ जब बगल के कमरे से किसी ने आवाज दी, "मम्मी ! देखो कौन आई हैं ।" पश्चात् दो लड़कियों के हँसने का शब्द हुआ ।

चेतनानन्द, हँसी की आवाज पहिचान, उठ खड़ा हुआ और पिता जी से बोला, "मै जरा देखूं कौन आया है ।"

जीवनलाल की हँसी निकल गई और उसने उर्दू का 'मिलाप' उठा पढ़ना आरम्भ कर दिया । चेतनानन्द बाहर निकल गया ।

[३]

चेतनानन्द पिता के कमरे से निकल दूसरे कमरे में, जहाँ से लड़कियों के हँसने की आवाज आई थी चला गया । एक लड़की ने उसे देख कहा, "भैया देखो । किसे पकड़ लाई हूँ ।"

दूसरी लड़की ने सोफा पर से उठ, हाथ जोड़ उसे नमस्कार की । चेतनानन्द ने हाथ जोड़ कहा, "ओह पार्वती जी! सुनाइये, कैसे आज मन में दया आ गई है ।" फिर उसने दूसरी लड़की को जिसने उसे भैया कह पुकारा था, कहा, "रेवा ! कहाँ पा गई हो तुम इन्हें ?"

रेवा और पार्वती सोफा पर बैठ गईं और चेतनानन्द उसी सोफा पर पार्वती की दूसरी ओर रेवा के पास बैठ गया । रेवा ने एक बाँह पार्वती के गले में और एक चेतनानन्द के गले में डाल-कर कहा, "भैया, मैं तुम से नाराज हूँ । तुमने यह इलैक्शन क्या लड़ा, सब संसार की ही सुद्ध बुद्ध विसार दी । मैं आज इनके घर गई और इनसे कहा कि मिलने नहीं आतीं, तो ये कहने लगीं, मेरे भैया भी इनसे मिलने कब गये हैं । मैं समझ गई और जबरदस्ती इनको पकड़ लाई हूँ । लो अब दोनों को मिला देती हूँ ।"

इतना कह दोनों की गर्दनों को, जिनके गिर्द उसने बाँहें डाली हुई थीं, मिलाने का यत्न किया । इस समय रेवा की माँ आ गई और

उनको इस प्रकार रेवा की बाहों से छूटने का यत्न करते देख हँस पड़ी। माँ ने हँसते हुए कहा, "क्या कर रही हो, रेवा?"

"दोनों में मनमुटाव मिटा रही हूँ।" रेवा ने बाँहें निकाल दोनों को मुक्त करते हुए कहा, "माँ अब तुम आ गई हो, लो अपने पुत्र और पुत्र-वधु को ..।"

पार्वती ने रेवा के मुख पर हाथ रख उसको आगे कहने से रोक दिया। रेवा की माँ हँस पड़ी और पार्वती का मुख लज्जा से लाल हो गया। रेवा की माँ ने पार्वती से उसके माता-पिता का कुशल-क्षेम पूछना आरम्भ कर दिया। उधर रेवा ने अपने भाई को कहा, "भैया अब तो तुम खाली हो न? चुनावों के परिणाम भी निकल गये। बताओ आज पिक्चर देखने ले चलोगे?"

"यदि तुम्हारी सहेली साथ चलेगी तो?"

"अजी भाई साहब, उसी की बात तो कह रही हूँ। मुझे साथ क्या ले जावेंगे आप? मैं दूध-पीती बच्ची नहीं हूँ। मैं तो अकेली भी चली जाती हूँ?

"तो क्या वह दूध-पीती बच्ची है?"

"हाँ सामाजिक जीवन में।"

"तो फिर ले चलूँगा। तुम भी साथ चलोगी?"

"यदि कहो तो?"

"तो चलो।"

रेवा सोफा से उठ पड़ी और माँ से बोली, "मम्मी, इनके लिए चाय बनवाओ और मैं कपड़े बदलकर आती हूँ।"

"इन कपड़ों को क्या हुआ है?"

"यह सिनेमा जाने योग्य नहीं हैं।"

वह उठ चली गई। रेवा की माँ ने भी उठते हुए कहा, "लो, मैं अभी चाय बनवाकर लाती हूँ।"

इस प्रकार चेतनानन्द और पार्वती अकेले रह गए। एक क्षण

तक दोनों चुपचाप बैठे रहे। पश्चात् पार्वती ने नाखून छीलते हुए और भूमि की ओर देखते हुए कहा, "कांग्रेसवालों की दिग्विजय हुई है।"

"हाँ, तीन मास की भाग-दौड़ सफल हुई। अब सिवाय पंजाब और बंगाल के अन्य सब प्रान्तों में कांग्रेसी सरकार बन जावेगी। इसका केन्द्रीय सरकार पर भी प्रभाव पड़ेगा।"

"आप तो बधाई के पात्र हो गये हैं।"

"और तुम पार्वती?" चेतनानन्द ने उसके हाथ को पकड़ अपने दोनों हाथों की तलियों में दबाते हुए पूछा।

"यह भी आपके अधीन है।"

"मैं तो इस अवसर की उत्कण्ठा से प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

"इसी कारण मुझे यहाँ आकर पूछना पड़ा है न? उत्कण्ठा के विचित्र लक्षण हैं यह?"

चेतनानन्द ने लज्जा का भाव बना कहा, "यह बात नहीं प्रिये। कहो तो मैं अभी अपने विवाह की तिथि निश्चित कर लूँ?"

"पहले अपने और मेरे माता-पिता से तो पूछ लीजिए। तिथि तो निश्चय हो जावेगी।"

"क्यों? तुम्हारी क्या आयु है पार्वती?"

इस प्रश्न से पार्वती का मुख लज्जा से लाल हो गया। वह इसका प्रयोजन नहीं समझी। इस पर भी चेतनानन्द को उत्तर की प्रतीक्षा करते देख बोली, "आज तक इतना कुछ हो जाने पर भी आपको आयु पूछने की क्या सूझी है। मैं समझती हूँ कि आपसे कम उमर की ही हूँ।"

चेतनानन्द को अपनी भूल का ज्ञान हुआ, तो क्षमा माँगने लगा, "प्रिये। मैं तुम्हें आयु में बूढ़ी समझ नहीं पूछ रहा। मेरा अभिप्राय यह है कि तुम सज्ञान हो गई हो। कानून से भी हम अपने

विषय में स्वयं निर्णय कर सकते हैं। अतएव तिथि का निर्णय कर अपने माता-पिता को सूचित कर देना पर्याप्त होगा।"

पार्वती इस सफाई से सन्तुष्ट तो हो गई पर अभी भी इस योजना पर अपना विचार स्थिर नहीं कर सकी। वह बोली, "बात तो आप ठीक कहते हैं, परन्तु मुझसे यह कहा नहीं जा सकेगा। मुझको तो लज्जा लगती है। अपने पिता जी के सम्मुख तो मुझसे यह बात निकल ही नहीं सकेगी।"

"बहुत कठोर हैं वे ?"

"नहीं ! मुझमें लज्जा अधिक है।"

"तो उनसे भी मैं ही जाकर कह दूँगा। तुम चुपचाप मेरे साथ खड़ी रहना।"

"हाँ, यह हो सकता है। इस पर भी उनको पहले विचार करने का अवसर मिल जाता तो ठीक था।"

"मैं इसकी आवश्यकता नहीं समझता। विचार करना मेरा और तुम्हारा काम है। सो हमने कर लिया है। देखो पार्वती ! मैं कल सायंकाल तुम्हारे घर आऊँगा और हम दोनों तुम्हारे माता-पिता के के सम्मुख उपस्थित हो अपना निर्णय बतावेंगे। तुम मेरे साथ खड़ी रहना। मैं कह दूँगा कि हम अगले रविवार साय चार बजे अपना विवाह करेंगे।"

"पहले आप अपने माता पिता से तो पूछ लेते।"

"इसकी आवश्यकता नहीं समझता। हाँ, उनको भी परसों दोपहर के समय सूचनां दे देंगे। मकान में तुम्हारे रहने योग्य कमरा है। खाने को रोटी और पहनने को कपड़े हैं।"

"बस ? क्या यही सब कुछ है ? मैं आपके घर आऊँगी तो आपके माता-पिता का आशीर्वाद, सहानुभूति और वात्सल्य भी तो चाहिये।"

"अरे बाबा ! यह सब कुछ मिलेगा। उतना ही जितना मुझे प्राप्त है।"

इस समय माँ वापस लौट आई। उसके पीछे नौकर एक ट्रे में चाय का सामान लगाकर ले आया।

[४]

पार्वती पंडित श्रीधर पाठक, एम० ए०, एम ओ० एल० की लड़की थी। वह बी० ए० पास कर सनातन धर्म कन्या विद्यालय में अध्यापन कार्य करने लगी थी। रेवा की सहपाठिन होने से ला० जीवनलाल के घर आना जाना था। वहाँ चेतनानन्द से भेंट हुई और फिर परस्पर प्रेम हो गया। रेवा और चेतनानन्द कई बार पार्वती के घर भी आ-जा चुके थे। वहाँ उनका सदैव आदरसहित स्वागत होता था।

पार्वती का एक छोटा भाई था। वह बी० ए० के द्वितीय वर्ष में पढ़ता था। रेवा से उसका विशेष अनुराग हो गया था। इस प्रकार दोनों परिवारों के युवा वर्ग में घनिष्ठता पर्याप्त मात्रा मे थी।

रेवा की माँ का अपने पति जीवनलाल से विचार-सामजस्य नहीं था। जीवनलाल सरल और शुद्ध विचारों का आदमी था। उसके मस्तिष्क में देश, राष्ट्र, वेद, शास्त्र, आचार-व्यवहार की भारी महिमा थी। जीवनलाल की स्त्री सुभद्रा के मस्तिष्क में साड़ी, जम्पर, भूषण, शृंगार, खाना-पीना, और सज-धज की महिमा भरी हुई थी।

सुभद्रा जीवनलाल की दूसरी स्त्री थी। विचार-भेद और जीवनलाल के व्यापार में व्यस्त रहने के कारण, चेतनानन्द और रेवा माँ के प्रभाव में पले थे। चेतनानन्द कांग्रेस के भँवर में पड़ राजनीतिक क्षेत्र में जा पहुँचा था। मोटे खद्दर के कपड़े, सिर पर सफेद खद्दर की टोपी और पाँव में चप्पल पहनता था। वह शरीर में हृष्ट-पुष्ट और अच्छा खासा सुन्दर युवक था। रेवा इससे विपरीत थी। स्वस्थ परन्तु छरहरे शरीर की, अट्ठारह-उन्नीस वर्ष की युवती थी। उलटी साड़ी, सिर के बाल बहुत घने परन्तु कटे हुए, जो केवल कन्धों तक ही पहुँचते थे; बारीक रेशम की टाईट जाकट, जो साड़ी से ऊपर ही रह जाती थी, पहनती थी। होठों और गालों पर हलकी सुरखी और पाउडर

का हलका सा छींटा लगाती थी। प्रायः हाथों और पाँवों के नाखूनों पर गहरा लाल चमकदार रंग लगा रहता था।

जैसे भाई-बहिन के रहन-सहन और पहरावे में अन्तर था, वैसे ही दोनो के स्वभाव मे भी अन्तर था। भाई एक गम्भीर तथा दृढ़ विचार परन्तु मोटी बुद्धि रखता था। बहन चंचल, चपल और अत्यन्त तीव्र बुद्धि वाली थी। चलते-फिरते अथवा बैठे बातें करते, वह निश्चल नहीं रह सकती थी। उसका कोई न कोई अंग चलता ही रहता था।

रेवा ने बी० ए० पास तो पार्वती के साथ ही कर लिया था परन्तु वह अभी तक किसी कार्य में नहीं लगी थी। उसका काम 'यंग विमेन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन' की क्लब में जाना, खेलना, कूदना या सिनेमा देखना था। पार्वती के छोटे भाई महेश से उसका परिचय हुआ और पश्चात् प्रेम हो गया था। दोनों प्रायः मिलते रहते थे।

पं० श्रीधर निस्बत रोड पर एक भाड़े के मकान में रहते थे। उन्होने संस्कृत की उच्च शिक्षा प्राप्त कर संस्कृत साहित्य की सेवा, जीवन का उद्देश्य बना रखा था। साङ्ख्य पर भाष्य लिखकर कलकत्ता से छपवाया था, जो तीन हजार पृष्ठ की पुस्तक बनी थी। इस पुस्तक की विदेश में बहुत महिमा हुई थी और केवल यह एक पुस्तक उनके जीवन-निर्वाह का साधन बनी हुई थी। पचास रुपये एक प्रति का दाम था और डेढ़ दो सौ प्रति वर्ष बिक जाती थीं। इसके अतिरिक्त पं० जी दो चार विद्यार्थियो को संस्कृत पढ़ाकर जीवन की गाड़ी चला रहे थे। पंडित जी अपने जीवन को और अपने बच्चों के जीवन को एक स्थिर नियंत्रण में रखे हुए थे। वे ब्रह्म-मुहूर्त में उठ स्नानादि से निवृत्त हो, डेढ़ घंटा पूजा में लगाते थे। पश्चात् चाय, मक्खन-रोटी खाकर घूमने चले जाते। दिन के आठ बजे वे अध्यापन कार्य आरम्भ करते थे। ग्यारह बजे वे भोजन करते थे; पश्चात् थोड़ा आराम कर स्वाध्याय करते। सायं चार बजे फलाहार कर मित्रों से मेल-मिलाप होता। यह कार्यक्रम सायंकाल सात-साढ़े सात तक चला करता था। पश्चात

संध्या कर भोजन करते और कुछ घूमकर रात को सो जाते थे। यह एक स्थिर कार्यक्रम था जो पच्चीस वर्ष से निरन्तर चल रहा था।

आज पार्वती चेतनानन्द की प्रतीक्षा कर रही थी। उसने पार्वती को साथ ले सायं, भेंट के समय, उसके पिता से अपने विवाह की घोषणा करनी थी।

प्रतीक्षा करते-करते सात बज गये; चेतनानन्द नहीं आया। साढ़े सात बजे पंडित जी उठे और संध्या के लिये जा बैठे। पश्चात् उन्होंने भोजन किया और घूमने को निकल गये। जाने से पहिले उन्होंने पार्वती से पूछा था, "महेश कहाँ है? अभी आया नहीं क्या?"

"नहीं, पिता जी", पार्वती का उत्तर था, "शायद उनके कॉलेज में संगीत सभा है।"

"नहीं, वह तो कल है। मुझे भी निमत्रण आया हुआ है।"

"तो मैं नहीं जानती।"

"यह रेवा के साथ उसका घूमना ठीक प्रतीत नहीं होता।"

पार्वती चुप रही, परन्तु उसका हृदय धक-धक करने लगा। आज पहली बार उसके पिता ने रेवा के विषय में यह कहा था। इससे उसे डर लग गया था कि कहीं चेतनानन्द के विषय में भी कुछ कह न दें।

पार्वती की माँ बहुत पढ़ी-लिखी स्त्री नहीं थी। इस पर भी घर के काम-काज के विषय में अति सुघर थी। उसने बिना किसी नौकर की सहायता के घर की देख-रेख भली भाँति कर रखी थी। उसके दोनों बच्चे, पार्वती और महेश, उसकी भाँति पंडित जी से डरते थे और परिवार की मान-मर्यादा का ध्यान रखते थे। पंडित जी की स्त्री और बच्चे, सब, कभी भी पंडित जी के कहने का उल्लंघन नहीं कर सकते थे।

चेतनानन्द के, अपने वचनानुसार, न आने से पार्वती के मन में क्षोभ हो रहा था। कुछ महीनों से चेतनानन्द उसकी उपेक्षा करता प्रतीत होता था परन्तु अभी तक तो यह उपेक्षा उसके निर्वाचन-कार्य

में संलग्न होने के कारण मानी जा रही थी। अब निर्वाचन समाप्त हो चुका था और निर्वाचन के परिणाम भी घोषित हो चुके थे। इससे पार्वती को चेतनानन्द के न आने पर भारी शोक हो रहा था।

रात, पार्वती चौका-बासन करती थी। आज उसका मन इस कार्य में नहीं लगा। इससे उसने माँ से कहा, "माँ, मेरा सिर दर्द करने लगा है। क्या मै जा सो रहूँ?"

उसकी माँ ने आँखे उठा पार्वती के मुख पर देखा। वह कुछ फीका दिखाई दिया। इससे उसने कहा, "थोड़ा चूर्ण खा लो, शायद वायु बन रही है।"

पार्वती 'अच्छा' कह ऊपर की छत पर अपने कमरे में जा लेट रही।

चेतनानन्द आया तो पार्वती की माँ चौका-बासन कर चुकी थी। दरवाजे का खटखटाना सुन, बाहर आ दरवाजा खोल चेतनानन्द को खड़ा देख बोली, "आइये, महेश तो घर है नहीं और पारो के सिर में दर्द हो रहा है।"

"मुझे उनके पिता जी से काम है।"

"वे घूमने गये हैं। अभी आते होंगे। आओ बैठ जाओ।"

चेतनानन्द भीतर बैठक में जा पहुँचा और एक कुर्सी पर बैठ गया। पार्वती ने दरवाजे का खटखटाना सुन लिया था और चेतनानन्द की आवाज पहिचान नीचे आ गई। माँ ने उसे आते देख कहा "लो पारो तो आ गई है। सिर-दर्द कैसा है बेटी?"

"अभी तो है माँ।"

माँ उन दोनों को वहीं छोड़ बिस्तर लगाने भीतर चली गई। चेतनानन्द ने अपनी देरी से आने की सफाई दी। "आज कांग्रेस पार्टी की मीटिंग थी। विचार था कि दो घन्टे में समाप्त हो जावेगी और मैं यहाँ छै बजे पहुँच जाऊँगा, परन्तु मीटिंग इतनी लम्बी हुई कि नौ वहीं बज गये। वहाँ से छुट्टी पा सीधा मोटर में यहाँ ही आ रहा हूँ।"

"आपको आज तो देरी नहीं करनी चाहिये थी। मेरा दिल धक-

धक कर रहा है और इस अनिश्चित अवस्था से दिल पर बोझा अनुभव हो रहा है।"

"पारो प्रिये। मैं क्षमा चाहता हूँ। आज सब निश्चय करके ही जाऊँगा।"

"मेरा तो सिर घूम रहा है। पता नहीं क्यों मेरे मन में संदेह हो रहा है।"

"यह तुम्हारे संस्कारों के कारण ही है। वही भूत बन तुम्हें डरा रहे हैं।"

इस समय महेश और रेवा भी आ गये। "ओह भैया यहाँ हैं।" रेवा ने कहा, "हमें आपके यहाँ होने की आशा नहीं थी।"

"कहाँ से आ रहे हो दोनो ?"

"हम 'राही' चित्र देखने गये थे।" महेश ने कहा।

इस समय पार्वती की माँ बिस्तर लगा बैठक में लौट आई। उसने महेश को देख कहा, "देखो, पिता जी के आने से पहिले भोजन कर लो।"

"माँ, मैं तो खा आया हूँ।"

"कहाँ से ?"

"होटल में खा लिया है।"

माँ [illegible]प मुख देखती रह गई। वह और अधिक रेवा के सम्मुख कहना [illegible] थी। इस समय पंडित जी घूमकर लौट आये। सबको [illegible] कत्रित देख पूछने लगे, "क्या बात है ?"

"कुछ [illegible]" पार्वती की माँ ने कहा, "महेश इत्यादि आये तो दरवाजा [illegible]लने चली आई थी।"

प[illegible] जी ने महेश आदि में चेतनानन्द को भी समझ लिया। इससे चेतनानन्द से पूछने लगे, "किधर गये थे आप लोग ?"

प्रश्न चेतनानन्द से पूछा गया था, इससे महेश ने उत्तर न दे चुप रहना ठीक समझा। चेतनानन्द ने बात बदलकर कहा, "मुझे

आपसे और माता जी से कुछ काम है। मैं आना तो जल्दी चाहता था, परन्तु कांग्रेस पार्टी की मीटिंग में देरी हो गई।"

"हाँ, क्या काम है?" श्रीधर ने गम्भीर हो पूछा।

"पृथक् में बात करना चाहता हूँ।"

इससे पंडित जी ने सतर्क हो चेतनानन्द की ओर देखा। फिर कुछ सोचकर कहा, "तो मेरे स्वाध्याय के कमरे में आ जाओ।"

चेतनानन्द ने पार्वती की ओर देखा और उठकर पंडित जी के साथ चलने को तैयार हो गया। पार्वती भी उठ खड़ी हुई। रेवा ने इस समय सब को गम्भीर हुआ देख कहा, "भैया मैं जाती हूँ। मेरी मोटर मेरे पास है।" और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए उसने हाथ उठा सब को 'बाई, बाई', कहा और बैठक से बाहर निकल गई।

पंडित जी ने चेतनानन्द की ओर देखा और कहा, "इधर आ जाओ।"

[५]

चेतनानन्द ने पार्वती की माता को भी बुला लिया। महेश अपने कमरे में चला गया। पंडित जी अपने स्वाध्याय करने के कमरे में पहुँच तख्तपोश पर बैठ गये। पार्वती की माँ उनके समीप बैठ गई। पार्वती और चेतनानन्द तख्तपोश के समीप रखी कुर्सियों पर बैठ गये। पंडित जी दत्तचित्त हो चेतनानन्द की ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखने लगे।

चेतनानन्द ने अपने मन की बात कहनी आरम्भ कर दी, "मैं तीन वर्ष से पार्वती देवी को जानता हूँ और आप भी मुझे कई बार मिल चुके हैं। इससे हमने परस्पर विचार-विनिमय कर विवाह करने का निश्चय कर लिया है। अगले रविवार सायं चार बजे विवाह करने का समय निश्चित हुआ है।"

पंडित जी ने सुना और माथे पर त्योरी चढ़ा ली। चेतनानन्द चुपचाप अपने कथन का उत्तर सुनने की प्रतीक्षा करने लगा। पार्वती

का मुख सूख गया था और वह भूमि की ओर देख रही थी। पार्वती की माँ का मुख विस्मय में खुला रह गया।

सबसे पहिले श्रीधर कर्तव्यारूढ हुआ। उसने अपनी डायरी उठाई और उसके पन्ने उलट रविवार का पन्ना निकाला। अपना 'फाऊनटेन पेन' उठा, खोल, पन्ने पर लिख लिया। लिखते-लिखते बोलता गया, 'आज चार बजे साय, श्री चेतनानन्द पार्वती देवी से विवाह करेंगे।'

इतना लिख कलम और डायरी को बन्द कर अपने-अपने स्थान पर रख चेतनानन्द से पंडित जी ने कहा, "सूचना के लिये अति धन्यवाद है चेतनानन्द। अब तुम जा सकते हो।"

चेतनानन्द इस व्यवहार के लिये तैयार नहीं था। वह तो समझता था कि या तो पडित जी उनके विवाह के निश्चय पर आपत्ति उठाएँगे अथवा विवाह-सम्बन्धी प्रबन्ध पर बातचीत करेंगे। दोनों में से कोई बात नहीं हुई। पंडित जी ने ऐसे डायरी पर लिखा, जैसे किसी साधारण परिचित के घर विवाह हो। चेतनानन्द चाहता था कि कुछ और कहे परन्तु पंडित जी के कहने पर कि वह जा सकता है, विवश हो उंठा, हाथ जोड़ नमस्कार कही और बाहर चला आया। पार्वती भी उसके पीछे पीछे बाहर निकल आई। बाहर बैठक में पहुँच चेतनानन्द ने पार्वती से कहा, "कल मध्याह्न के भोजन के समय आना। मैं अपने माता-पिता को भी सूचित कर देना चाहता हूँ।"

पार्वती पत्थर की मूर्त्ति की भाँति खड़ी थी। उसका गला सूख गया था और उसके मुख से आवाज नहीं निकल रही थी। चेतनानन्द ने पार्वती का हाथ पकड़ दबाया, नमस्कार कही और चल दिया।

पार्वती बैठक में कितनी ही देर तक खड़ी रही और अपने पिता के व्यवहार पर विचार करती रही। वह समझ नहीं सकी थी कि पिता जी प्रसन्न थे अथवा रुष्ट। उसे चेतना तब हुई जब उसकी माँ ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "पारो!"

पार्वती ने घूम कर माँ की ओर देखा। माँ ने कहा, "जाओ आराम करो। सिर-दर्द बढ़ जायेगा।"

रात को सोने के समय पार्वती की माँ ने अपने पति से पूछा, "पार्वती के विषय में क्या सोचा है आपने?"

"मुझे सोचने के लिये कहा ही किसने है?"

"फिर भी आप बड़े हैं। बच्चों का ख्याल रखना आपका काम है।"

"जब बालक सज्ञान (बालिग़) हो जाते हैं तो उनको अधिकार हो जाता है कि वे अपने माता-पिता की अवहेलना कर सकें।"

"वे बच्चे हैं। आपको तो बचपना नहीं करना।"

"देखो, पारो की माँ। मेरे पास न तो समय है कि मैं एक निश्चय हो चुकी बात पर विचार करूँ, न ही मेरा अधिकार रहा है। जाओ, सो जाओ।"

पं० श्रीधर बड़ा नियंत्रण रखनेवाले थे। इस कारण उनसे कही बात को न करने की शक्ति किसी में नहीं थी। माँ चुपचाप वहाँ से निकली तो पारो के कमरे में जा पहुँची। पार्वती लैम्प बुझा खाट पर लेटी रो रही थी। उसने, अब तक, मन में पूर्ण परिस्थिति का विश्लेषण कर लिया था। उसको अपने पिता की इस विषय में, अस्वीकृति समझ आई थी। इस कारण, पिता की इच्छा का उल्लंघन करे अथवा न करे, विचार कर रो पड़ी थी। आज तक घर में किसी ने भी पिता की इच्छा का विरोध नहीं किया था।

माँ कमरे में दबे पाँव पहुंची थी। अन्धेरे में पार्वती को सिसकियाँ भरते सुन एक-दो क्षण चुप खड़ी रही। पश्चात् उसने, स्विच दबा, लैम्प जला दिया। प्रकाश होने पर पार्वती ने उठकर माँ को खड़े देखा तो और भी विह्वल हो रोने लगी। माँ उसकी चारपाई पर बैठ गई और उसकी पीठ पर हाथ फेर पूछने लगी, "पारो बेटा, रोती क्यों हो?"

"मैं क्या करूँ माँ, समझ में नहीं आता। पिता जी नाराज हैं और मै उनकी इच्छा का विरोध करूँ अथवा न ?"

"देखो बेटी, यदि तो तुम्हारी इच्छा उससे विवाह करने की है तो कर लो। पिता जी मान जावेंगे। इसमे रोने की कोई बात नही।"

"माँ, तुम क्या समझती हो ?"

"मैं तो तुम्हारे जितना पढ़ी नही। मेरी माँ ने तुम्हारे पिता को देखा, पसन्द किया और मेरा विवाह कर दिया। मैंने अपनी माँ की समझ पर विश्वास किया और खुशी-खुशी ससुराल चली आई। तुम्हारे पिता देवता हैं। उन्होने कभी भी मुझ से कठोर बात नहीं कही।"

"माँ, मेरा दिल तो करता है, परन्तु पिता जी की अस्वीकृति खलती है।"

"तुम चिन्ता न करो बेटी। मै उनसे कल बातचीत करूँगी।"

[६]

अगले दिन जीवनलाल के घर एक और ही घटना घटी। पार्वती मध्याह्न के समय वहाँ पहुँची तो चेतनानन्द उसे अपनी माँ के सम्मुख ले गया और कहने लगा, "माँ! हमारा विवाह इस रविवार को होना निश्चय हुआ है।"

माँ ने आशीर्वाद दिया और इस पर प्रसन्नता प्रकट की। परन्तु जब चेतनानन्द ने अपने पिता के सम्मुख पार्वती को ले जाकर यही बात कही तो उन्होने कहा, "मूर्ख, किसी सभ्य-समाज मे बैठे होते तो बात करने का ढंग तो जानते।"

"पिता जी! कौन असभ्यता की बात हो गई है ?"

"तुम विवाह करोगे ?"

"हाँ, पिता जी।"

"किससे ?"

"यह, पार्वती देवी से।"

"इनके पिता जी से पूछा है?"

"उनको भी सूचित कर आया हूँ। मैं समझता हूँ कि यह पर्याप्त है।"

"तो ठीक है। विवाह कर सकते हो, परन्तु निबाह करोगे कहाँ?"

"यहाँ, इस घर पर।"

"नहीं, यहाँ नहीं कर सकते।"

"क्यों?"

"मेरी इच्छा है।"

"पर माता जी ने तो आशीर्वाद दे दिया है।"

"यह ठीक है, पर घर मेरा है। तुम्हारी माता का नहीं।"

"यह कैसे?"

"यह उसी कानून से, जिसके अनुसार तुम बालिग़ हो, अपना विवाह अपनी इच्छा से करने में योग्य हो।"

"मैं समझ नहीं सका पिता जी?"

"देखो, अँगरेजी कानून से तुम बालिग़ हो और अपना विवाह स्वयं कर सकते हो। उसी अँगरेजी कानून से मैं सम्पत्ति का स्वामी हूँ और तुम्हारी माँ केवल स्त्री-धन की। यह मकान उस स्त्री-धन का भाग नहीं है।"

"तो हम विवाह किसी अन्य स्थान पर कर लेंगे।"

"तुम स्वतंत्र हो।"

चेतनानन्द अपमान से भरा हुआ पिता के कमरे से बाहर चला गया। उसका विचार था कि पार्वती उसके साथ ही बाहर निकल आवेगी, परन्तु वह वहीं भूमि की ओर देखती हुई खड़ी रह गई। जीवनलाल ने जब लड़की को खड़े देखा तो पूछा, "क्यों बेटी! तुम क्या चाहती हो?"

"पिता जी! मैंने क्या अपराध किया है?"

"मेरे मूर्ख पुत्र को वरने की इच्छा की है।"

"मैंने तो श्रेष्ठ मान वरा है।"

"तो तुम भूल कर रही हो बेटी।"

इस समय चेतनानन्द की माँ जो बाहर खड़ी सब कुछ सुन रही थी, भीतर आ गई और क्रोध मे कहने लगी। "यह आपने क्या कहा है कि मकान में मेरा अधिकार नहीं है? विवाह के समय तो आपने अपनी प्रत्येक वस्तु मेरे साथ बाँटकर प्रयोग करने का वचन दिया था।"

"ठीक है। पर उसी समय तुमने वचन दिया था कि तुम मेरी आज्ञानुसार चलोगी।"

"तो औरतों की आजादी का क्या हुआ?"

"यह उस विवाह के वचनों में नहीं थी।"

"इसी से तो हम औरतें अपनी आजादी चाहती हैं।"

"देखो चेतन की माँ! जितनी आजादी मैंने दे रखी है उसमे अधिक तुम्हें कहीं नहीं मिलेगी, परन्तु तुम तो दोनों बातें चाहती हो। आम खाना भी चाहती हो और रखना भी।"

"मैं आपकी बाते नहीं समझती। चलो बेटी, बाहर आ जाओ। ये सठिया गये हैं।" उसने पार्वती को बाँह से पकड़कर बाहर ले जाते हुए कहा।

जीवनलाल अपने काम में लग गया। वह देशीय औषध विदेश भेजने का काम करता था। यह कार्य युद्ध के कारण बंद था और अब पुनः आरम्भ हो रहा था।

चेतनानन्द बिना इस बात का विचार किए कि उसका पिता इस विवाह के विरुद्ध है, इसकी तैयारी करता गया। इसमें उसकी माँ उसको प्रोत्साहन दे रही थी।

विवाह, स्पेशल मेरेज ऐक्ट के अनुसार, करने का प्रबन्ध किया गया। मैजिस्ट्रेट की फीस जमा करा दी गई और नगर कांग्रेस कमेटी के कार्यालय में विवाह की रसम करने का आयोजन हो गया।

चेतनानन्द के पिता ने स्पष्ट कह दिया था कि वह विवाह पर नहीं जाएगा। उसकी माँ और बहन दोनों जानेवाली थीं। पार्वती इस सब में ऐसे तैयारी कर रही थी जैसे कोई निर्जीव वस्तु धकेलकर ले जाई जा रही हो। उसकी माँ ने उसे इतना बता दिया था कि उसके पिता दर्शक के रूप में विवाह में जाने का विचार रखते हैं, पिता के रूप में नहीं। वह स्वयं भी उनके साथ वहाँ उपस्थित होगी।

पार्वती ने, उस रात के पश्चात्, जब चेतनानन्द ने विवाह करने का निश्चय उसके पिता को सुनाया था, पिता के सम्मुख उपस्थित होना ठीक नहीं समझा। उसे लज्जा और भय प्रतीत होता था। वह समझती थी कि उसे देखते ही पिता जी का क्रोध फूट पड़ेगा और उसे भय था कि कहीं श्राप न दे बैठें।

विवाह से एक दिन पूर्व, अर्थात् शनिवार तक तो वह अपने निश्चय पर दृढ़ थी। इस पर भी धीरे-धीरे, उसका मन दुर्बल पड़ता जाता था। उसके पिता ने उनको आशीर्वाद देने में अरुचि प्रकट की थी। चेतनानन्द के पिता ने तो स्पष्ट अपना विरोध प्रकट किया था। उनकी उस दिन की बात, 'मेरे मूर्ख पुत्र को वरकर भूल कर रही हो,' बार-बार उसके मन में आ रही थी। चेतनानन्द ने उसे समझाया था कि उसके पिता उसके कांग्रेस में कार्य करने के कारण उससे क्रुद्ध हैं। पर पार्वती को इस पर विश्वास नहीं होता था।

शनिवार को वह स्कूल पढ़ाने को जाने लगी तो चेतनानन्द मकान के बाहर मोटर लिए खड़ा था। वह उसे मोटर में बैठा स्कूल छोड़ने गया। मार्ग में उसने रविवार का कार्यक्रम समझा दिया। उसने बताया, "कल सायं चार बजे मैजिस्ट्रेट नगर कांग्रेस कमेटी के कार्यालय में आवेगा। तीन बजे रेवा मोटर ले तुम्हें लेने आवेगी और ठीक पौने चार बजे तुम उसके साथ वहाँ पहुँच जाना। मैं स्वयं तुम्हें लेने नहीं आऊँगा।

"विवाह के पश्चात् वहीं पर चाय-पार्टी का प्रबन्ध है। चाय-

पार्टी के पश्चात् हम सीधे हवाई जहाज के अड्डे पर पहुँच जाएँगे। और वहाँ मैंने दो सीटें बम्बई के लिए रिज़र्व की हुई हैं। सोमवार प्रातः हम बम्बई पहुँच जाएँगे। वहाँ ताज होटल में मैंने एक डबल-सीटर कमरा आठ दिन के लिए रिज़र्व करवा रखा है।"

पार्वती ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप सुन रही थी पर भीतर ही भीतर उसे यह सब कुछ असत्य प्रतीत हो रहा था।

चेतनानन्द कुछ समय तक उसके मनोभावों का अनुमान लगाता रहा। पश्चात् बोला, "पारो प्रिये! ठीक समझ गई हो न। हाँ, तुम्हें घर से लेकर कुछ नहीं आना। तुम्हारे विवाह के समय पहिनने के कपड़े और बम्बई में रहने के समय के लिये कपडे मैंने बनवा लिए हैं। कल के पहनने के कपड़े रेवा तुम्हारे पास लेकर आएगी। बम्बई साथ जानेवाले कपड़े हवाई जहाज पर पहुँच जावेंगे।

"यदि तुम्हारे माता अथवा पिता जी कुछ देना चाहेंगे तो कहना वहाँ पधारें और जो कुछ देना चाहते हैं स्वयं दें। यदि न देना चाहें तब भी कुछ हानि नहीं। वह आवें तो उनकी अत्यन्त कृपा होगी।"

पार्वती चुपचाप सुनती रही। उसकी आँखें, माता-पिता की बात सुन, भीग गईं।

[७]

रविवार के दिन चेतनानन्द खाना खा, रेवा को पार्वती के कपड़े दे और उसे सब समझा, मोटर में सवार हो कांग्रेस के दफतर में जा पहुँचा। दफतर के बाहर एक खुला मैदान था। वहाँ पाँच सौ के लगभग लोगों की चाय का प्रबन्ध ऐलफिन्सटन होटलवालों के द्वारा किया जा रहा था। ऊपर जहाँ मैजिस्ट्रेट के सम्मुख विवाह की रसम होनेवाली थी रायल-नर्सरीवालों ने कमरा सजाया था। उस कमरे को पुष्प-मंडप का रूप दे दिया गया था।

प्रबन्ध को देख और जहाँ कहीं कोई त्रुटि प्रतीत हुई उसे ठीक

करने को कह, वह अपने मित्र मिस्टर सराजदीन पराचा के घर जा पहुँचा।

बैरिस्टर सराजदीन पराचा प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी का सदस्य था। जब चेतनानन्द उनके घर पहुँचा तो बैरिस्टर साहब घर पर नहीं थे। उनकी बीवी मुम्ताज बेगम ने चेतनानन्द को बहुत आदर के भाव से बैठाया और कहा, "बैरिस्टर साहब आते ही होंगे, बैठिये।"

चेतनानन्द ने एक सोफा पर बैठते हुए कहा, "बैरिस्टर साहब से तो मिलने का वक्त मुकर्रिर था।"

"तो ठहरिए न, क्या कुछ पीने को मँगवाऊँ?"

"हाँ, अगर रैफ्रिजरेटर में पानी ठंडा किया हो तो?"

मुम्ताज ने नौकर को आवाज दी और पानी लाने को कह दिया। पश्चात् इधर-उधर की बातें होने लगीं।

"आज आप चायपार्टी पर आ रही हैं या नहीं?"

"जी वाह, यह भी खूब कही। 'इन्वाईट' करके भी न करना चाहते हैं आप?"

"नहीं, नहीं, मेरा यह मतलब नहीं। मैं पूछ रहा था कि आप भूलीं तो नहीं, खैर, बैरिस्टर साहब भी तो साथ आ रहे हैं न?"

"उनकी तो उनसे ही पूछ लीजियेगा। आप बम्बई से कब लौटियेगा?"

"सिरफ आठ दिन वहाँ रहने का विचार है। बाद में आल इंडिया कांग्रेस कमेटी की बैठक दिल्ली में होनी है, मिसेज़ को यहाँ माँ के पास छोड़ दिल्ली भी तो जाना है।"

"मिसेज़ को यहां किस लिए छोड़ जाइएगा। क्या वह 'प्रिजैन्टेबल' दूसरों के सामने लाने योग्य वस्तु) नहीं हैं?"

"बहुत सुन्दर है वह। मुझे डर ही लगा रहता है कि कहीं किसी की नजर न लग जाए।"

"ओह! यह बात है। ठीक है, तब तो उसे महफ़ूज़ (सुरक्षित)

रखना ही चाहिये। दिल्ली में तो गाँठ-कतर बहुत हैं और उसके कतरकर ले जाए जाने का डर करना ही चाहिये।"

"हाँ, मगर अब तो दिल्लीवाले लाहोर मे भी आने लगे हैं।"

"और उनमें एक मै हूँ।"

इस समय सराजदीन साइब आ गए। चेतनानन्द को बैठा देख बहुत स्नेह से हाथ बढ़ाकर मिलाते हुए बोले, "तो आ गये चेतनानन्द! सुनाओ सब इन्तजाम ठीक हो गया है या नहीं ?"

"मालूम तो होता है। आप तो आइयेगा न ?"

"सुना है आपके स्वसुर साहब पुराने ख्याल के हिन्दू हैं ?"

"हाँ।"

"तो क्या लड़की भी वैसी ही है ?"

"नहीं, वह नहायत ही आज़ाद ख्याल वाली लड़की है।"

"मैं चाहता था कि हवाई जहाज के अड्डे पर जाने से पहिले हमारे घर को रौनक बख्शते।"

"सो तो है ही। मैं तो यह कहने आया हूँ कि मैं अपनी मोटर गाड़ी यहाँ छोड़ जाऊँगा और आप अपनी गाड़ी में हमको 'एयरोड्रोम' पर छोड़ आइयेगा।"

"तो ठीक है। यह पक्की रही।"

चेतनानन्द वहाँ से अपने घर गया। रेवा और उसकी माँ अपने घर से पार्वती के घर को जा चुकी थीं। चेतनानन्द खद्दर के कपड़े पहन और दो कपड़ों से लदे सूट-केस नौकर से उठवा मोटर में रखवा 'एयरोड्रोम' ले गया। वहाँ उनको तुलवा, बुक करवा दिया।

इस समय तीन बज चुके थे। इससे वह सीधा परी-महल, जहाँ कांग्रेस कमेटी का कार्यालय था, जा पहुँचा। रेवा और उसकी माँ अभी नहीं पहुँची थीं। चेतनानन्द चाय-पार्टी का प्रबन्ध देखने चला गया। वहाँ सब ठीक था, कार्यालय की सजावट देखने चला आया। वह बहुत सुन्दर सजाया गया था। एक खम्भे पर रंग-रंग के गुलाब

के फूल लगे थे। चेतनानन्द ने एक लाल फूल उतारा और अपनी अचकन के बटन-होल में लगा लिया। इस प्रकार प्रबन्ध से संतुष्ट हो मेहमानों के स्वागत के लिये कुछ मित्रों को खड़ा कर स्वयं पार्वती की प्रतीक्षा करने लगा।

ठीक पौने चार बजे पंडित श्रीधर और पार्वती की माँ आए। स्वागत करनेवालों ने उन्हें कार्यालय में बैठाया। चार बजे रेवा अकेली मोटर में आई और चेतनानन्द उसे अकेली आते देख लपक-कर उसके समीप पहुँचा और पूछने लगा, "सब आ गए रेवा?"

"पार्वती आ गई है भैया?" उलटा रेवा ने प्रश्न कर दिया।

"नहीं तो।"

"तो वह घर पर नहीं है। उसकी माँ से मैंने पूछा तो उन्होंने बताया कि दो बजे की गई हुई है। वे तो घर को ताला लगा चले आए हैं।"

चेतनानन्द का मुख विवर्ण हो गया। उसका गला सूख गया। उसने भर्राये गले से पूछा, "कहीं पंडित जी ने तो उसे घर में कैद नहीं कर दिया?"

"नहीं भैया! मैं मकान को भीतर और बाहर से देख आई हूँ। महेश मेरे साथ था। वह घर से डेढ़ से अढ़ाई बजे तक अनुपस्थित रहा था और पार्वती उसी बीच में गई थी।

"पार्वती की माता जी विवाह के अवसर पर एक सोने का हार देना चाहती हैं। जब उन्होने पंडित जी से पूछा तो उत्तर मिला कि वह उसकी माँ का है। वह उसकी स्वामिन है। यदि चाहे तो दे सकती है। वह हार पार्वती की माता जी अपने साथ लाई हैं। माता जी को महेश के साथ वहाँ घर के बाहर छोड़ आई हूँ। मैं यह देखने चली आई हूँ।"

चेतनानन्द के मस्तिष्क में चक्कर आने लगे थे। वह नहीं समझ सका कि क्या हुआ है।

इतने में सराजदीन साहब अपनी स्त्री मुम्ताज बेगम के साथ आ गये। उन्हें बैठने को कह, मोटर में बैठ पार्वती के घर पता करने चला गया। वहाँ मकान के बाहर उसकी माता तथा महेश घर के सामने खड़े प्रतीक्षा कर रहे थे। वह वहाँ से लौट आया। कांग्रेस कार्यालय में पहुँचा तो मैजिस्ट्रेट आ चुका था। चेतनानन्द को आया देख सब मित्र उससे मिलने के लिए आगे बढ़े। परन्तु वह सबको छोड़ पार्वती के माता-पिता के पास जा पहुँचा। वे पुष्प-मंडप के बाहर खड़े विवाह की रीति के होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। चेतनानन्द ने पार्वती की माता से पूछा, "पार्वती नहीं आई। आपको मालूम है कि वह कहाँ है?"

"हम समझते थे कि वह तुम्हारी ओर गई है?"

"नहीं, हमारे घर नहीं गई।"

"तो फिर कहाँ गई है?" पार्वती की माँ के मन में एक भय समा गया। पंडित श्रीधर गम्भीर खड़ा रहा। जब चेतनानन्द घबराया हुआ कांग्रेस कार्यालय से बाहर निकल गया तो पंडित श्रीधर ने अपनी स्त्री से कहा, "कुछ गड़बड़ हो गई है। मूर्ख लड़की कहीं आत्मघात न कर बैठे। कई दिन से मैं उसे चिंतित देख रहा हूँ।"

पार्वती की माँ की आँखों में आँसू छलकने लगे थे। पंडित जी ने देखा तो बोले, "चलो चलकर पारो का पता करना चाहिये।"

साढ़े पाँच बजे मैजिस्ट्रेट वापस चला गया। मेहमान भी एक-एक दो-दो कर लौट गए। रेवा और महेश एक गाड़ी में लौटे। चेतनानन्द और उसकी माँ दूसरी गाड़ी में। ये सब मोहनलाल रोड वाले मकान में पहुँच गए। लाला जीवनलाल मध्याह्न का खाना खा घर से चले गए थे और अभी तक लौटे नहीं थे।

चेतनानन्द बैठक में पहुँच सोफा पर ऐसे बैठा जैसे डेढ़ मन का पत्थर लुढ़क पड़ता है। उसकी माँ कपड़े बदलने अपने कमरे में चली

गई। रेवा और महेश उसके साथ सहानुभूति प्रकट करने वहीं बैठ गए।

एकाएक चेतनानन्द को स्मरण हो आया, कि हवाई जहाज का टिकट वापस किया जा सकता है। इससे उसने घड़ी में समय देखा। हवाई जहाज जाने में अभी दो घंटे थे। उसने महेश से कहा "महेश भैया। मेरा एक काम तो कर दो। 'एयर इंडिया' के कार्यालय में चले जाओ और ये टिकट वापस कर आवो। दस प्रतिशत काटकर रकम मिल जावेगी। दफ्तर 'माल' पर है और रेवा तुम्हें मोटर पर ले जावेगी।"

इतना कह उसने जेब से दो टिकट निकाल महेश को दे दिए। महेश और रेवा जाने लगे तो चेतनानन्द ने एक बात और कह दी, "ताज बम्बई में तार दे देना कि चेतनानन्द ने जो कमरा रिज़र्व किया है कैन्सल कर दें।

"जाओ भैया! यह काम कर दो। एक हजार फोकट में जाता बच जाएगा।"

रेवा और महेश कमरे से बाहर निकल आए। रेवा अपने कमरे में गई तो महेश भी उसके साथ था। उसने पेट्रोल के 'कूपन' निकालने के लिए, मेज का दराज खोला तो उसमें आठ नौ सौ रुपये के नोट पड़े दिखाई दिए। रेवा रुपयों को देख सोचने लगी। एकाएक उसने नोट उठा अपने पर्स में रख लिए और महेश को साथ ले नीचे उतर आई।

मकान के नीचे गराज में मोटर गाड़ी रख दी गई थी। रेवा दो क्षण तक गराज के बाहर खड़ी विचार करती रही, पश्चात् बोली, "ताँगे में चलेंगे। जितनी देर पेट्रोल डलवाने में लगेगी, उतने काल में तो हम ठिकाने पहुँच जावेंगे।"

मकान से महेश और रेवा मोरी दरवाजे की ओर चल पड़े। कुछ दूर जाने पर ताँगा मिला तो दोनों सवार हो माल पर जा पहुँचे।

वहाँ पहुँच रेवा ने हवाई जहाज के कार्यालय के क्लर्क से पूछा, "कार्यालय की बस कितनी देर मे 'एयरोड्रोम' जावेगी ?"

क्लर्क ने पूछा, "आपका नाम ?"

"मिस्टर और मिसेज़ आनन्द ।"

"हाँ, आपकी सीटे रिज़र्व हैं ।"

महेश रेवा की बात सुन हँसनेवाला था कि रेवा ने अपना पाँव उसके पाँव पर रखकर सकेत कर दिया । वह अचम्भे में मुख देखता रह गया । कार्यालय के क्लर्क ने बताया, "बस जाने मे अभी डेढ़ घंटा है । ठीक साड़े सात यहाँ से जावेगी ।"

रेवा ने कलाई पर बँधी घड़ी देखी और कहा, "अच्छी बात उससे पहिले हम आ जावेगे ।" पश्चात् उसने महेश की ओर घूमकर कहा, "चलिए, खाना खा लें ।"

महेश 'किंकर्तव्यविमूढ़' की भाँति रेवा की ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखता रहा । वहाँ से बाहर आ, उसने पूछा, "मै कुछ नहीं समझा ?"

"मेरी इच्छा बम्बई सैर करने जाने की हो गई है ।"

"मुझको साथ लेकर ।"

"हाँ, देखिए महेश जी, ताज होटल में कमरा रिजर्व है । वहाँ हम पति-पत्नी बनकर रहेंगे ।"

"वंडरफुल !" महेश ने खड़े हो रेवा की आँखों में देखते हुए कहा । रेवा ने महेश का हाथ पकड़ दबाते हुए कहा, "आज की दुर्घटना से मुझे यह समझ आया है कि हमारे विवाह की भी स्वीकृति हमारे माता-पिता नहीं देगे । मेरी माता जी आपको अभी तक आदर की दृष्टि से देखती थीं, आपकी बहन की करतूत के कारण आपसे घृणा करने लगेंगी ।

"ऐसी अवस्था में हमें अपना विवाह स्वयं ही कर लेना चाहिये । पीछे माँ अवश्य, अपना नाक रखने के लिए, पिता जी से आपके कारोबार के लिए धन दिलवा देगी ।"

महेश का मस्तिष्क इतने साहस की बात सुन घूमने लगा था। वह चुप रहा। दोनो 'फैलटीज होटेल' मे जा खाना खाने लगे। महेश अति गम्भीर हो अनिश्चित माधुर्य के पाने की आशा मे स्वप्न देखने लगा था। रेवा ने उसे गम्भीर देख पूछा, "आपको पसन्द नहीं आई मेरी योजना ?"

"भला इसमें न पसन्द करने की बात ही क्या है ? मगर मैं सोचता हूँ कि क्या इतनी मीठी और सुनहरी बात सत्य होगी ?"

"यत्न करना हमारा काम है।"

[८]

जीवनलाल ने देखा कि विवाह जैसी बात में भी चेतनानन्द उससे राय करने को तैयार नहीं। इससे उसके मन में यह बात बैठ गई कि उसकी स्त्री सुभद्रा और उसका लड़का तथा लड़की उसे मूर्ख समझते हैं। इससे उसने इन लोगों से पृथक् हो अपने काम-धन्धे और अपनी सम्पत्ति के प्रबन्ध की योजना बनानी आरम्भ कर दी।

दो दिन में उसकी योजना बन गई। उसने अपनी सम्पत्ति की सूची बना डाली और वसीहत लिखने का विचार स्थिर कर लिया।

उसका एक लंगोटिया मित्र पंडित अम्बिका प्रसाद था, जो हाई-कोर्ट का वकील रह चुका था। अब काम-धंधा छोड़ बानप्रस्थ लिए हुए था। फिर भी कभी-कभी किसी सिद्धान्तात्मक बात पर कोई मुकद्दमा आ खड़ा होता तो सिद्धान्त की प्रतिष्ठा स्थिर रखने के लिए निःशुल्क ही भिड़ जाता था।

अम्बिका प्रसाद आयु बड़ी हो जाने के कारण कुछ झिक्की अवश्य हो गया था, इस पर भी मस्तिष्क खूब चलता था। गम्भीर से गम्भीर कानूनी पेंचों का विश्लेषण इस प्रकार करता था कि न्यायाधीश दाँतों तले उँगली दबा लेते थे।

पंडित अम्बिका प्रसाद और जीवनलाल आर्य समाज के प्राचीन सदस्यों में थे। तब से दोनों में मित्रता थी। जीवनलाल का दूसरा

विवाह था। उसकी पहिली स्त्री दस वर्ष का निस्सन्तान विवाहित जीवन व्यतीत कर स्वर्गवास कर गई थी। उसका दूसरा विवाह राय साहब कमल नारायण की लड़की सुभद्रा से हुआ था।

जिस दिन चेतनानन्द ने अपने विवाह करने की सूचना दी उसके तीसरे दिन जीवनलाल ने प० अम्बिका प्रसाद को टेलीफून मे अपनी इच्छा प्रकट कर दी। उसने कहा, "मेरा विचार वसीहत लिखने का है और आप से उसमे सहायता चाहता हूँ।"

"ओह! बहुत रुपया इकट्ठा कर लिया प्रतीत होता है।" अम्बिका प्रसाद ने व्यग के भाव मे कहा।

"हाँ, आप जैसे मित्रो के आशीर्वाद से।"

"पर लाला जीवनलाल! एक ही तो लड़का है, फिर यह झगड़ा करने से क्या प्रयोजन है?"

"बात यह है कि पुत्र को शिक्षा-दीक्षा दे योग्य बना देना तो पिता का कर्त्तव्य है, पर उसकी सब बेहूदगियो के लिए उसे धन देना पिता के कर्त्तव्यों में नहीं आता। यह धन उनको मिलना चाहिये जो इसके अधिकारी हैं और जिन्होने इसके पैदा करने में सहायता दी है।"

"तो यह बात है।" अम्बिका प्रसाद ने हँसी में कहा, "परन्तु मित्र! यह धन उपार्जन करने मे कौन-कौन सहायक हुए हैं?"

"बहुत लोग हैं। शायद पूर्ण हिन्दू-समाज है। इतना तो निश्चय ही है कि मेरी स्त्री, मेरी लड़की और लड़का इसमे कोई भाग नहीं रखते।"

"अच्छी बात है।" वकील साहब ने कह दिया। "आप रविवार के दिन आ जाइए। मध्यान्ह का भोजन यहाँ ही करिएगा। पश्चात् आपका काम कर दूँगा।"

"भोजन को छोड़िये, आपका ...।"

"भाई! बहुत दिन के बाद ऐसा अवसर मिला है। ठीक है न हम .... ..।"

जीवन लाल ने कुछ विचारकर कहा, "अच्छी बात है, परन्तु ऐसा करिए। मै मध्यान्ह पश्चात् आऊँगा और रात के खाने तक ठहरूँगा।"

बात तय हो गई।

रविवार दो बजे चपरासी उन्हें अम्बिका प्रसाद के बैठक-खाने में ले गया। वकील साहब खाना खा आधा घंटा आराम कर चुके थे। जीवन लाल को एक कपड़े में, अपने कारोबार के रजिस्टर और लेखा-चोखा के अन्य कागजात, लपेटे हुए लिए, देख हँस पड़े। वे बोले, "तो यह पापों की गठरी यहाँ उठा लाए हैं, जीवनलाल!"

जीवनलाल ने अपना बस्ता मेज पर रखते हुए कहा, "भाई अम्बिका प्रसाद, यहाँ के हाईकोर्ट से तो कितने ही अपराधियो को छुड़ाया होगा। अब जरा हमारा मुकद्दमा बड़े न्यायालय मे कर मुक्त कराओ तो जानें।"

पंडित अम्बिका प्रसाद ने खिलखिलाकर हँसते हुए कहा, "वहाँ से छूटना सुगम है। यहाँ के न्यायाधीश तो केवल न्याय करना जानते हैं और भगवान तो दयानिधि भी हैं। प्रायश्चित्त करने पर मनुष्य दया का भागी बन जाता है।"

"प्रायश्चित्त के निमित्त ही तो यह वसीहत लिखाने आया हूँ। आप चेतनानन्द को तो जानते ही हैं। उसकी एक बहन भी है। उसका नाम रेवा है। दोनो को उनकी माँ ने बिगाड़ रखा है। एक तो विकृत राजनीति मे कूद पड़ा है, और दूसरी क्लब, डासिग और सिनेमा की शौकीन हो गई है।

"लड़का काग्रेस टिकट पर प्रान्तीय धारा-सभा में सदस्य बन भगवान ही बन बैठा है। मुझे उसकी बेहूदगियो पर आपत्ति न होती यदि वह पारिवारिक जीवन पर विश्वास रखता। मैने खून पसीना एक कर धन कमाया है और वह उस धन के बल-बूते पर परिवार की भावना को ही मिटाना चाहता है। मुझे यह सह्य नहीं है। एक दिन

एक लड़की को मेरे सामने खड़ा कर बोला, 'मैं इस रविवार इससे विवाह कर रहा हूँ। आप पधारिएगा।' बताइए एक पुत्र पिता को जब इस प्रकार अपने विवाह की सूचना देता है तो परिवार कहाँ गया और फिर पिता उस परिवार के लिए क्यों कुछ करे ?

"अब लड़की की बात भी सुन लीजिए। मुझको 'पापा' और माँ को 'मम्मी' कहती है। क्लब जाने के अतिरिक्त और कुछ काम नहीं। सिर के बाल कटवा लिए हैं और सज-धजकर शुतरबे मुहारो की भाँति घूमती-फिरती है।

"मैं समझता हूँ कि यह दोनों मेरी मेहनत के भागी नहीं हो सकते। इस कारण मैंने वसीहत लिख देनी उचित समझी है।

"मेरे पास सब सम्पत्ति तीस लाख रुपये से ऊपर है। अचल सम्पत्ति पंद्रह लाख की है और चल बैंकों तथा 'डिफेन्स-बाड्ज' अथवा शेयर्ज में दस लाख के लगभग है। पाँच लाख मेरा व्यापार में लगा हुआ है।

"इसको मैं इस प्रकार देना चाहता हूँ। मेरी सब अचल सम्पत्ति आर्य प्रतिनिधि सभा को वेद-प्रचार के लिए। मेरी चल सम्पत्ति की आय में से मेरी स्त्री को दो सौ रुपये मासिक उसके मरण पर्यन्त। मेरी लड़की के विवाह पर खर्चा के अतिरिक्त और कुछ नहीं। चेतनानन्द की स्त्री पार्वती को दो सौ रुपये मासिक आजीवन। पश्चात् यह धन भी आर्य प्रतिनिधि सभा को वेद-प्रचार के लिए मिल जाए। मेरा व्यापार में लगा धन, मेरे मरने के पश्चात् व्यापार में कार्य करने वाले कर्मचारियों में उस अनुपात में उन्हें जिसमें वेतन मिलता हो बाँट दिया जावे।

"मेरे रहने के मकान में, मेरी स्त्री, जब तक रहना चाहे, रह सके। पश्चात् यह भी वेद-प्रचार के लिए जावे।"

"इस सबका क्या मतलब है जीवनलाल ?"

"यह धन बहुत रुचि से एकत्रित किया था, परन्तु अब इसके

भोगने में रुचि नहीं रही। यह सब राय साहब की लाडली ने बिगाड़ दिया है। उसे मेरा सीधा-साधा पहरावा पसन्द नहीं, मेरी पंजाबी में बातें पसन्द नहीं, मेरा आर्य समाज में जाना और भगवान में निष्ठा पसन्द नहीं। मै व्यापार में लगा रहा हूँ और उसने लड़के लड़की को अपने ही साँचे में ढाल दिया है।

"मुझको ऐसा प्रतीत हो रहा है कि एक दिन माँ-बेटा मुझे सत्तर-बहत्तर गया घोषित कर मकान में बन्द कर देंगे और रोटी का टुकड़ा ऐसे डाल दिया करेंगे जैसे किसी जानवर को डाल दिया जाता है। जो मुझसे विवाह जैसे कार्य में राय लेना पसन्द नहीं करते, वे भला मेरे बुढ़ापे में मेरी क्या परवाह करेंगे?"

विवाह की चर्चा सुन पंडित अम्बिका प्रसाद गम्भीर हो पूछने लगा, "और तो सब ठीक है, परन्तु यह चेतनानन्द की बीवी का जन्म-भर का प्रबन्ध करने में क्या प्रयोजन है?"

"एक भले घर की भोली-भाली लड़की को बरगला कर विवाह कर यह उसे कष्ट देगा। ऐसी मेरी कल्पना है।"

"किसकी लड़की है वह?"

"आप जानते तो हैं उन्हें। पंडित श्रीधर जिन्होंने सांख्य-मीमांसा नामक पुस्तक लिखी है।"

"ओह! तो यह बात है। अब समझा हूँ। परन्तु...अच्छा ठहरो।"

पंडित अम्बिका प्रसाद ने मेज पर रक्खी घटी बजाई और चपरासी के आने पर बोले, "घर से मीरा देवी को बुला लाओ।"

जीवनलाल इस बात को समझ नहीं सका और विस्मय मे मित्र का मुख देखता रहा। पंडित अम्बिका प्रसाद मुस्करा रहा था।

मीरा आई तो उसे सम्मुख रक्खी कुर्सी पर बैठने को कह वकील साहब ने उसका परिचय जीवनलाल को करा दिया। "यह मेरी दूसरी लड़की है। विधवा है और सनातन धर्म कन्या विद्यालय में मुख्या-

ध्यापिका है। श्रीधर जी की लड़की पार्वती इन्हीं के विद्यालय में पढ़ाने का कार्य करती है।"

पश्चात् मीरा को जीवनलाल का परिचय करा दिया, "देखो बेटी मीरा, यह मेरे चिरकाल के मित्र लाला जीवनलाल हैं। कल जिस अध्यापिका की कथा तुम सुना रही थी वह इनके लड़के से विवाह करने वाली है। इन्होने उसके लिए अपनी वसीहत में दो सौ रुपये मासिक लिख दिये हैं। मैं समझता हूँ, मीरा, तुम उसे बता सकती हो जिससे उसे विवाह करने में संकोच न रहे।"

"परन्तु, पिता जी" मीरा ने आँखे नीचे किये हुए कहा, "पार्वती तो विवाह कराने जाने के स्थान यहाँ आ गई है और विवाह न कराने का निश्चय कर बैठी है।"

"विवाह नहीं करायेगी ?" लाला जीवनलाल ने अचम्भे में पूछा।

मीरा ने सिर हिला अपने कहने का समर्थन कर दिया।

"तो उसे दो सौ रुपये मासिक के स्थान पाँच सौ मासिक मिलने का विधान कर दीजिये।"

"वाह !" पंडित अम्बिका प्रसाद ने चकित हो कहा।

लाला जीवनलाल ने वैसे ही गम्भीर-भाव धारण रखते हुए कहा, "पंडित जी ! मेरा कहने का अभिप्राय यह है, कि लड़की को चेतनानन्द की बेहूदगी का ज्ञान हो गया है। उसने चेतनानन्द को शायद इसलिए वरने का विचार किया होगा कि वह एक धनी का पुत्र है और अब उसके वरने का विचार छोड़ भारी त्याग कर रही है। मै इस त्याग का फल उसे देना चाहता हूँ।"

पंडित अम्बिका प्रसाद ने मीरा से पूछा, "तुम तो कहती थी कि वह अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध विवाह के लिए जा रही है ?"

"जी। कल तक उसका यही विचार था। मैंने उसे यह सम्मति दी थी कि ऐसी अवस्था में उतावली करना उचित नहीं। विचार कर

और अपने आचरण से अपने बड़ों को अपने अनुकूल कर लेना चाहिए। वह इस बात को मानती थी, परन्तु कहती थी कि विवाह कर लेना भी तो आचरण है और इससे दोनों के माता-पिता शीघ्र उनके विचारों के अनुकूल हो जाएँगे। यद्यपि मैंने कहा था, कि यह तो उन्हें विवश कर बात मनाने का आयोजन है। जिस विषय में उन्हें अनुकूल बनाना है उसके करने के पीछे अनुकूल करने का यत्न तो उनका अपमान करना हो जावेगा। इस पर भी वह नहीं मानी थी।

"मुझे उसने अपने घर बारह बजे बुलाया था। मैंने वहाँ जाना उचित नहीं समझा और नौकर के हाथ कहला भेजा था, 'मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं।' वह नौकर के साथ ही यहाँ चली आई है। कहती है, कि उसे मेरे कहने में सार प्रतीत होता है। वह विवाह पर नहीं जावेगी।"

"तो वह अब यहाँ पर ही है?" जीवनलाल ने पूछा।

"जी हाँ।"

"उसे आप यहाँ बुला सकेंगी?"

"मैं कह नहीं सकती, कि वह यहाँ आना पसन्द करेगी या नहीं।"

"उसे कहो कि मैं बुलाता हूँ तो शायद आ जावेगी। मैं उसके इस निश्चय का कारण जानना चाहता हूँ।"

पार्वती आई तो पंडित अम्बिका प्रसाद ने उससे पूछना आरम्भ कर दिया। "तो आप विवाह पर नहीं जा रहीं।"

पार्वती आँखें नीचे किये बैठी थी। उसने उसी प्रकार बैठे हुए कह दिया, "जी हाँ।"

"क्या हम जान सकते हैं, क्यों?"

"लाला जी ने जो कहा था, कि उनके मूर्ख पुत्र को वर मैं मूर्खता कर रही हूँ।"

इस पर लाला जीवनलाल ने कहा, "पर यह तो कितने ही दिन की बात है। आजकल में कोई नई बात हुई है क्या?"

"जरा मोटी बुद्धि है, सोच धीरे-धीरे आती है।" पार्वती ने वैसे ही आँखें नीचे किये, मुस्कराते हुए कहा।

"तो तुम्हें अपनी भूल का ज्ञान हो गया है?"

"जी।"

"अपने आप या किसी के कहने पर।"

"तीन दिन हुए मैंने अपनी माता जी से पूछा था कि वे मेरे विवाह पर आवेंगी? तो उन्होंने उत्तर दिया कि वे पिता जी की स्वीकृति के बिना नहीं जावेंगी।

"मैंने पूछा, कि क्या उनको इतनी भी स्वतंत्रता नहीं कि वह अपनी लड़की के विवाह पर अपनी इच्छा से जा सकें। माता जी का कहना था कि मेरा विवाह परिवार का विषय है। एक बाहर के व्यक्ति को घर में ला बैठाने की बात है। इससे परिवार की स्वीकृति के बिना ऐसा काम नहीं किया जा सकता। उनका कहना था कि मैंने परिवार के पुरुषों की स्वीकृति बिना यह करने का यत्न किया है। इससे ठीक नहीं किया।

"यह बात थी जो कई दिन से मेरे मस्तिष्क में चक्कर काट रही थी। कल बहन मीरा जी ने वही बात एक दूसरे ढंग से कही। मैं रात-भर सोचती रही और एकाएक मेरे मन में यह आया कि विशेष रूप में हिन्दुओं में और साधारण रूप में भारतवासियों में विवाह एक पारिवारिक कार्य है। इससे परिवार की स्वीकृति आवश्यक है।

"यह सोच मैंने विवाह स्थगित करने का निश्चय कर लिया है इसी कारण मैं वहाँ नहीं जा रही।"

[६]

चेतनानन्द के कमरे का दरवाजा उसकी माँ ने रात के बारह बजे खटखटाया। वह घबराकर उठा, दरवाजा खोला और पूछने लगा, "क्या है माँ?"

"रेवा कहाँ है ?"

"अपने कमरे में सो रही होगी।"

"वहाँ नहीं है। कांग्रेस कार्यालय से आने के पश्चात् तो मैंने उसे देखा ही नहीं।"

"तो वह हवाई जहाज के दफ्तर से लौटी नहीं ?"

"वहाँ किस काम गई थी ?"

चेतनानन्द चुप कर गया। उसने उठ हवाई जहाज के कार्यालय में टेलीफून कर दिया। दफतर बन्द था। बहुत देर तक घंटी बजती रही, परन्तु कोई नहीं बोला। अंत में चिन्तातुर हो उसने माँ से कहा, "मैंने महेश को और उसे हवाई जहाज के कार्यालय में टिकट वापस करने भेजा था। ऐसा प्रतीत होता है कि वह दोनो बम्बई चले गये हैं। रेवा के पास कुछ रुपये थे क्या ?"

"होंगे क्यों नहीं ? घर का सब खर्चा तो उसी के पास रहता है।"

"तो चले गए, दोनों चले गए हैं।"

"तुम्हारे पिता जी को कहूँ ?"

"व्यर्थ है। मैं कल बम्बई जाऊँगा और उन्हें पकड़ लाऊँगा।"

प्रातःकाल महेश की माँ महेश का पता करने के लिए आई। उसे चेतनानन्द ने यह कह टाल दिया कि उसे विशेष काम से बम्बई भेजा गया है।

"हमें कहकर भी नहीं गया है।" महेश की माँ का कहना था।

"यह तो आपके घरवालों का स्वभाव है। पार्वती का पता मिला ?"

"अपनी एक सहेली के घर चली गई थी। उसका विचार विवाह स्थगित करने का हो गया था। महेश कब तक लौटेगा ?"

"तीन दिन में आ जावेगा।"

चेतनानन्द ने महेश के साथ रेवा के भाग जाने की बात उसकी

माँ को नहीं बताई। परन्तु लाला जीवनलाल से बात छुपी नहीं रह सकी।

वह जब स्नानादिक से छुट्टी पा प्रातः का अल्पाहार करने बैठा, तो उसने रेवा को, पूर्ववत्, आँखें मलते हुए बिस्तर से उठ आ चाय पीते नहीं देखा। जब उसके विषय में पूछा तो उसकी माँ ने बहाना लगा टाल दिया।

"तो उसे उठाओ, नौ बज रहे है।" इतना कहते हुए उसने नौकर को आवाज दे दी, "रामू!"

वह आया तो उसे आज्ञा दे दी, "रेवा बीबी का दरवाजा खट-खटाकर कहो, बाबू जी बुलाते हैं।"

"आ जाएगी। आखिर जल्दी किस बात की पड़ी है?"

जीवन लाल ने नौकर को डाँटकर कहा, "जाओ! दरवाजा खटखटा दो।"

नौकर गया तो आकर कहने लगा, "रेवा बीबी कमरे में नहीं हैं।"

"टट्टी पेशाब को गई होगी।" माँ ने कह दिया।

जीवनलाल को जल्दी थी। उसने छावनी जाना था और उसकी अपनी गाड़ी मरम्मत के लिए कम्पनी गई हुई थी। इस कारण वह रेवा की गाड़ी में जाना चाहता था। अल्पाहार समाप्त कर उठते हुए उसने रेवा की माँ से कहा, "जल्दी रेवा की गाड़ी की चाबी ला दो। मुझे उसकी गाड़ी छावनी जाने के लिए चाहिये।"

रेवा की माँ उसके कमरे में गई। यदि चाबी पड़ी मिल जाती तो बात बन जाती।

परन्तु चाबी तो रेवा के हैंड-बेग में बम्बई चली गई थी। लाला जी ने मकान के नीचे उतर, 'गैरेज' के बाहर खड़े हो, चाबी की प्रतीक्षा करनी आरम्भ कर दी। जब पन्द्रह मिनट तक चाबी नहीं आई तो उसने ड्राइवर को जो समीप खड़ा था, कहा, "जाओ भाई! चाबी ले आवो, देरी क्यों हो रही है?"

ड्राइवर गया तो वह भी नहीं लौटा। इस पर जीवनलाल स्वयं रेवा के कमरे में जा पहुँचा। वहाँ उसने रेवा की माँ को चीजों को उलट-पुलट करते और चाबी ढूँढते देखा। अब जीवनलाल ने सशंक हो पूछा, "तुम ढूँढ रही हो? रेवा कहाँ है?"

रेवा की माँ ढूँढना छोड़ चुपचाप खड़ी रह गई। इस से तो जीवनलाल का संदेह पक्का हो गया। उसने कहा, "क्या है, चुप क्यों हो, देवी जी?"

"नीचे अपने कमरे में चलिए, मैं चाबी लेकर आती हूँ।"

जीवनलाल ड्राइवर को वहाँ खड़ा देख समझ गया कि कोई गम्भीर बात है, जो उसके सामने नहीं बताई जा रही। वह नीचे बीच की मंजिल में चला गया और रेवा की माँ बिना ही चाबी के उसके कमरे में पहुँच दरवाजा भीतर से बंद कर बोली, "रेवा बम्बई गई है।"

"बम्बई, क्यों?"

"ऐसे ही, घूमने।"

"कब गई है?"

"रात हवाई जहाज से।"

"पर चेतनानन्द तो अभी यहाँ ही था। किसके साथ गई है?"

"म . ...महे......महेश के साथ।"

रेवा की माँ के मुख का रंग उड़ गया था। जीवनलाल ने त्योरी चढ़ाकर कहा, "मुझसे झूठ क्यों बोला था?"

वह चुप रही। जीवनलाल नीचे उतर, भाड़े की टैक्सी मँगवा, काम पर चला गया।

[१०]

चेतनानन्द जब रेवा को लेने बम्बई गया तो उसे उनको ढूँढ लेने में कठिनाई नहीं पड़ी, ताज होटल के रजिस्टर में 'चेतनानन्द विद वाईफ़' लिखा मिला। वह दिन भर वहाँ होटल में उनकी प्रतीक्षा

करता रहा। रात को खाने के समय दोनों आए तो चेतनानन्द को अपनी प्रतीक्षा करते देख उन्हें विस्मय नहीं हुआ। वह उसके अपने पीछे आने की आशा करते थे। चेतनानन्द उनके साथ ही ठहरा। रेवा ने उसे बता दिया कि उन्होंने विवाह कर लिया है।

"विवाह? भला यह कैसे?"

"प्रातःकाल उदय होते सूर्य को नमस्कार कर हमने परस्पर पति-पत्नी होने का वचन दे दिया।"

"बस?"

"और क्या?"

"इसकी भी क्या आवश्यकता थी," चेतनानन्द ने व्यंग में कहा।

"मै भी यही सोचती थी, पर ये माने ही नहीं।"

अगले दिन चेतनानन्द ने हवाई जहाज के दो टिकट खरीद रेवा से कहा, "चलो।"

"तो आप हमारे साथ नहीं जा रहे क्या?" रेवा ने चेतनानन्द से पूछा।

"चल तो रहा हूँ।"

"पर टिकट तो दो ही खरीदे हैं?"

"एक मेरा और एक तुम्हारा।"

"और ये?" महेश की ओर देखते हुए उसने पूछा।

"ये?" चेतनानन्द ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा, "ये जाएँगे जहन्नुम में।"

"पर भाई साहब," महेश ने गम्भीर हो कहा, "वहाँ भी तो टिकट के बिना नहीं जा सकते।"

"तो संखिया खाकर मर जाओ।"

"उसके लिए भी तो दाम नहीं हैं।"

"तो मैं क्या करूँ?" चेतनानन्द ने उसकी ओर पीठ करते हुए कहा।

उत्तर रेवा ने दिया, "भैया, तुम लाहौर जाओ। हम दोनों इकट्ठे ही जहन्नुम जावेंगे।"

"मैं इसे पुलिस के हवाले कर दूँगा।"

"क्यो ?"

"तुम नहीं जानती क्यों ? यह तुम्हें घर से भगा लाया है।"

"परन्तु बात इससे उलटी है," महेश ने रेवा की बातों से साहस पा कहा।

"चुप रहो," चेतनानन्द ने उसे डाँटकर कहा।

रेवा ने महेश की बाँह में बाँह डालकर कहा, "आज हमारा प्रोग्राम 'ऐलीफन्टा केव्ज़' देखने का है न ? चलो।" फिर चेतनानन्द की ओर घूमकर बोली, "चीयरो !"

चेतनानन्द उनका मार्ग रोक खड़ा हो गया और बोला, "देखो रेवा, बहुत हल्ला न करो। नहीं तो सबके सामने पीट दूँगा।"

"भैया ! तुम क्या करने को कहते हो ?"

"लाहौर वापस चलो।"

"बहुत अच्छा। सायं रेलगाड़ी से लौट चलेंगे।"

"हवाई जहाज से क्यों नहीं ?"

"उसके लिए दाम नहीं हैं।"

"दाम तो मै दे रहा हूँ।"

"हम दोनो का ?" रेवा ने प्रसन्न हो पूछा।

"नहीं ! केवल तुम्हारे टिकट का।"

"तो मैं नहीं जाऊँगी। हम दोनों इकट्ठे जाएँगे।"

रेवा के हठ से चेतनानन्द विवश हो गया। वह एक टिकट और ख़रीद लाया। तीनो हवाई जहाज में सवार हो लाहौर जा पहुँचे।

लाहौर 'एयरोड्रोम' पर से चेतनानन्द ने हाथ जोड़, मिन्नत कर महेश को अपने घर चले जाने को कहा। रेवा ने भी यही उचित

समझा और महेश से कहा, "मै पत्र लिखूँगी। उसकी प्रतीक्षा करना।"

घर पहुँच उसे माता के सामने उपस्थित होना पड़ा। माँ ने डाँट-कर कहा, "रेवा! एक लड़के के साथ अकेले जाते तुम्हें लज्जा नहीं लगी?"

"एक लड़का नहीं, 'मम्मी,' महेश जी थे। हमने विवाह कर लिया है।"

"झूठ है।"

"हाँ, सत्य कहती हूँ। जब हम बम्बई पहुँचे तो सीधे चौपाटी पर गये। वहाँ सागर की तरंगों पर कलोल करती सूर्य-किरणों को साक्षी कर हमने पति-पत्नी बने रहने का वचन ले लिया। पश्चात् हम एक दिन और एक रात पति-पत्नी रूप मे बम्बई में रहे भी हैं।"

"चुप," माता ने डाँटकर कहा। "क्या पागलो की सी बात करती हो। विवाह इस प्रकार थोड़े ही होता है?"

"मम्मी! मेरा विवाह महेश जी से हो गया है।"

"नहीं हुआ। तुम्हारा विवाह मै किसी बहुत धनी के लड़के से करूँगी।"

"तो महेश में कौन खराबी है?" जीवनलाल ने कमरे में प्रवेश करते हुए पूछा।

"आप भी विचित्र बात करते हैं? भला ऐसे लड़के से मैं लड़की का विवाह कैसे कर सकती हूँ?"

"कैसे लड़के से? वह अंधा है, लँगड़ा है, काना है, क्या खराबी है उसमें?"

"वह गरीब है।"

"तो मैं उसे अमीर कर दूँगा।"

"रेवा से दो वर्ष आयु में छोटा है।"

"यह कोई कारण नहीं।"

"पर आप उसमें कौन विशेषता देख रहे हैं?"

"विशेषता तो तुम्हारी लाडली ने देखी है। मैं तो कहता हूँ कि एक हिन्दू लड़की जब किसी की पत्नी हो गई तो जीवन-भर के लिए हो गई। इसे ही तो पतिव्रत-धर्म कहते हैं। यही एक हिन्दू स्त्री की विशेषता है।"

"मुझे आपकी बातें समझ में नहीं आ रही। एक बच्चा भूल कर बैठा, तो बस जन्म-भर के लिए फाँसी चढ़ गया।"

"श्रीमती जी! हिन्दुओं में तलाक का रिवाज अभी नहीं चला, जिससे भूल सुधार सकते!"

"पर मैं पूछती हूँ विवाह ही कहाँ हुआ है, जो तलाक की बात पैदा हो गई है?"

"वास्तविक विवाह, अर्थात् संभोग समागम, तो हो ही गया है। सस्कार ही नहीं हुआ न? सो हम एक आध-दिन में कर देंगे। इसे हमारे शास्त्र में गंधर्व-विवाह कहते हैं।"

"लोगों में हमारी भारी बदनामी हो जावेगी।"

"बदनामी तो हो चुकी है। अब तो बिखरे धान को बटोरने की बात रह गई है।"

परन्तु यह बात सुभद्रा की समझ में नहीं आई और वह रेवा के महेश से विवाह के लिये राजी नहीं हुई।

रेवा को आज विदित हुआ कि उसका पिता कितना विशाल हृदय रखता है। इससे पूर्व तो उसकी माँ ने उसके मस्तिष्क में यह बात बैठा रखी थी कि सोसायटी के विषय में उसके पिता को कुछ ज्ञान नहीं है। वे तो धन कमाने की मशीन हैं। न कभी क्लब में गये हैं और न ही पढ़े-लिखे सभ्य लोगों में कभी बैठे हैं। आज की बात से रेवा को समझ आया कि उसका पिता उसकी माँ से अधिक संसार का ज्ञान रखता है। उसकी सब बाते युक्तियुक्त थीं।

जब जीवनलाल की बात सुभद्रा ने नहीं मानी तो वह कमरे से

बाहर निकल आया, फिर कुछ सोचकर लौटा और रेवा से कहने लगा, "जब माँ की बात सुन लो तो मेरे कमरे में आना।"

इतना कह वह कार्यालय में चला गया। रेवा भी पिता के पीछे जाने लगी तो रेवा की माँ ने डाँटकर कहा, "देखो रेवा, महेश बहुत गरीब का लड़का है। अभी बी० ए० भी पास नहीं किया। तुम्हारा खर्चा वह सहन नही कर सकेगा और पूर्ण जीवन एक नरक-काड बन जावेगा।

"तुम्हारे पिता को कुछ भी ज्ञान नहीं। वे संसार की बातो से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। घास-फूस बेच धन बटोरने के सिवाय और कुछ भी नहीं जानते। मेरी बात याद रखो, यदि तुमने महेश से विवाह किया तो तुम मेरे लिए मर गई और मैं तुम्हारे लिए।"

रेवा बिना उत्तर दिये माँ के कमरे से बाहर निकल गई। वह पिता के कमरे में जाना चाहती थीं, कि चेतनानन्द मार्ग में मिला और पूछने लगा, "माँ क्या कहती हैं?"

"कहती हैं किसी और से विवाह हो?"

"पार्वती ने मुझे धोखा दिया है, रेवा!"

"तो बहन का पाप भाई पर लादना चाहते हैं?"

इतना कह वह पिता के कमरे में चली गई। पिता ने उसे सामने की कुर्सी पर बैठा कहना आरम्भ कर दिया, "सुनो रेवा। मैं हिन्दू हूँ, आर्यसमाजी हूँ। तुम्हारी माँ ने तुम लोगों को न तो हिन्दू जाति की न आर्यसमाज की महानता समझने का अवसर दिया है। इसी से तुम लोग मेरी आंतरिक भावना को समझ नहीं सके।

"यह तो ठीक़ ही है कि जीवन-नौका बहुत सोच समझकर चलानी चाहिए। इस पर भी जल्दी-जल्दी जीवन के परीक्षण बदलने से मनुष्य किसी परिणाम पर नहीं पहुँच सकता। विवाह भी जीवन की भावनाओं और शक्तियों के साथ एक प्रकार का परीक्षण ही है। यह परीक्षण जीवन में एक बार ही हो सकता है। एक बार वचन दिया तो फिर

सुख-दुख, अमीरी-गरीबी, रुग्ण अथवा निरोगावस्था, सब समय इस सम्बन्ध को स्थिर रखने में ही कल्याण है।

"यदि तुम मुझ से बम्बई जाने से पूर्व पूछती तो शायद मैं तुम्हारे महेश से विवाह को पसन्द न करता, परन्तु जब तुमने उनसे विवाह का वचन दे ही दिया है तो मैं तुम्हारे सम्बन्ध-विच्छेद को पसन्द नहीं करता।

"हम एक जन्म को अपने पूर्ण जीवन का एक बहुत छोटा भाग मानते हैं। अनेकों जन्म तथा मरण एकजीवन में होते हैं। पूर्ण जीवन के ध्येय को समझ एक आयु तो एक अति अल्प काल प्रतीत होने लगती है। इस अल्प काल के किंचित दुख के लिए वचन-भंग तो एक ऐसा कार्य है जो आत्मा को जन्म-जन्मांतर के लिए कलुषित करने की सामर्थ्य रखता है।

"इससे में कहता हूँ कि यदि तुमने महेश से विवाह सच्चे प्रेम-वश किया है तो हो गया। अब इसे निभाने का ढङ्ग सोचो।"

"पिता जी," रेवा की आँखों में आँसू छलकने लगे थे, "मुझे नहीं मालूम था कि आप इतने अच्छे और दयालु हैं।"

"तो सुनो, यदि महेश से तुम्हारा विवाह हो गया तो मैं उसे अपने कारोबार में साझीदार कर लूँगा। आशा करता हूँ कि तुम लोग अपना जीवन आनन्द से व्यतीत कर सकोगे। अब तुम जाओ और आराम करो। मुझे कुछ सोचने का अवसर दो।"

रेवा अपने कमरे में जाकर सोचने लगी। उसे आशा के विरुद्ध अपने पिता के व्यवहार में साक्षात् भगवान का हाथ दिखाई दिया। बम्बई में महेश ने कहा था कि सूर्य उसका इष्टदेव है और उसका नाम लेकर यदि विवाह करेंगे तो वह अवश्य उनकी सहायता करेगा। उस समय वह इस मानसिक भ्रम पर हँसी थी। आज पिता को अपनी बात और इच्छाओं में सहायक पा उसे जहाँ विस्मय हुआ वहाँ महेश के कहने पर विश्वास भी हुआ था।

अगले दिन उसने महेश को पत्र लिखा, "मेरे पिता जी ने मेरा आपसे विवाह स्वीकार कर लिया है। उन्होंने कहा है कि यदि विवाह हुआ तो वे आपको अपने कारोबार में साझीदार बना लेंगे। इसका अर्थ यह है कि आपको लगभग एक सहस्र रुपया मासिक तुरन्त मिलने लगेगा।

"मुझे कल सायंकाल गोल बाग में, लाला लाजपतराय की मूर्ति के समीप मिलना। घर पर नहीं आना। मेरी माता और भाई विवाह का विरोध कर रहें हैं।"

[११]

महेश बम्बई से लौटा तो चुपचाप घर पहुँच माँ के सामने जा खड़ा हुआ। माँ ने उसे देख पूछा, "कब आए हो बेटा? जिस काम गए थे कर आए हो न?"

महेश यह वाक्य सुन चकित रह गया। वह नहीं समझा कि किस काम के विषय में माँ पूछ रही है। फिर सब बात एकदम न बताने का निश्चय कर बोला, "हाँ माँ! पर अब बहुत थक गया हूँ। स्नान कर सोना चाहता हूँ। पिता जी कहाँ हैं?"

"अपने कमरे में आराम कर रहे हैं। उनकी चिन्ता न करो। मैं बता दूँगी।"

"बहन कहाँ है? स्कूल जाती है अभी?"

"हाँ क्यों? अच्छा, विवाह के विषय में पूछ रहे हो? विवाह नहीं हुआ और पारो नियमित रूप में स्कूल जा रही है।"

महेश सायंकाल उठा तो उसके पिता बैठक में बैठे मित्रों से बात-चीत कर रहे थे। महेश वहाँ पहुँच गया। पंडित जी ने उसे देख पूछा, "क्या काम था बम्बई में? जाने से पहले मिल तो जाते।"

महेश को अब फिर अचम्भा हुआ। उसने यहाँ फिर गोल-माल बात कर दी, "कांग्रेस कमेटी का कुछ काम था।"

"देखो महेश ! यह कांग्रेस के जाल में फँसकर अपनी शक्ति का अपव्यय न करो।"

महेश को तो यह आशा थी कि घर पहुँचते ही खूब पीटा जाएगा और बुरा-भला कहा जावेगा। अब बात इतनी सुगमता से टलते देख चुप कर रहा। कुछ काल तक वहाँ बैठ घूमने चला गया। रात को भोजन कर सो रहा।

तीसरे दिन उसे रेवा का पत्र मिला। पढ़कर चकित रह गया। सायं गोल बाग में जा लाला लाजपत राय की मूर्ति के नीचे खड़ा हो प्रतीक्षा करने लगा। दूर से रेवा को पैदल आते देख उससे मिलने के लिए मार्ग पर ही जा पहुँचा। दोनो ने घास पर एक ओर खड़े होकर अपने-अपने घर की बात बताई। महेश ने बताया कि उसके पिता जी को तो सन्देह भी नहीं हुआ कि वह किस कारण बम्बई गया था।

रेवा का कहना था, "उनसे भी तो स्वीकृति लेनी है ?"

"यही तो सोच रहा हूँ कि, कैसे बात करूँ ?"

"मै दो दिन से यही सोच रही हूँ। कई योजनाएँ बनाई हैं पर कोई भी ठीक नहीं जँची। एक बात है, जो कुछ ठीक प्रतीत होती है। आप मुझे एक पत्र लिखिए। उसमे मेरी अपने से विवाह की स्वीकृति माँगिए। इस पर मै आपकी माता जी को लिखूँगी।"

महेश को यह योजना पसन्द नहीं आई, इस पर भी उसने और कोई योजना न पा रेवा को पत्र लिखने का विचार पक्का कर लिया। घर पहुँच, पत्र लिखना आरम्भ किया। लिखकर जब पढ़ा तो पसंद नहीं आया। अतएव फाड़कर फेक दिया। फिर एक और लिखा। वह भी पसन्द नहीं आया। इसे भी फाड़कर फेंकनेवाला था कि पार्वती कमरे में आकर बोली, "महेश ! चलो पिता जी बुलाते हैं।"

महेश ने पत्र को समेटते हुए पूछा, "क्या है दीदी ?"

"तुम्हारे कान खैंचे जाएँगे। तुमने झूठ बोला है।"

महेश समझ गया कि दाल में कुछ काला है। बात भी कुछ ऐसी थी। बम्बई जाने का रहस्य खुल गया था। बैठक में उसके पिता और रेवा के पिता बैठे थे। महेश अपराधियों की भाँति उनके सम्मुख जा खड़ा हुआ। बात पंडित श्रीधर ने शुरू की। उसने कहा, "महेश! तुम्हें अपनी करतूतों पर लज्जा अनुभव करनी चाहिए। तुम्हारे जैसे पुत्र के होने से मुझसे आँखें ऊँची नहीं की जातीं। मैं नहीं समझ सका कि इनके परिवार को जो हानि तुमने पहुँचाई है, उसका मूल्य कैसे दूँ। मैंने तो अपना सिर नंगा कर इनके पाँव पर रख दिया है कि इस पर जूते लगाएँ जिससे तुम्हारे जैसे नीच पुत्र को जन्म देने का प्रायश्चित्त हो सके।"

महेश का मुख, पिता जी को ऐसी दीनता की बातें करते सुन, पीला पड़ गया। उसका हृदय धक-धक करने लगा और आँखें तरल हो उठीं।

श्रीधर ने फिर कहा, "क्षमा याचना करो इनसे। रखो इनके चरणों पर सिर। तुम्हारा अपराध क्षमा करने योग्य तो नहीं। शायद ये तुम पर दया कर दें।"

महेश भूमि पर बैठ गया और झुककर सिर भूमि के साथ लगा सिसकियाँ भर रोने लगा। जीवनलाल ने उसे हाथों से पकड़कर उठा लिया और अपने सामने कुर्सी पर बैठा लिया। पंडित श्रीधर ने गले में दुपट्टा डाल ला० जीवनलाल को कहा, "बाप-बेटा दोनों के आप मालिक हैं। जो दंड उचित समझें दें।"

जीवनलाल ने गम्भीर भाव में कहा, "मैं यही चाहता हूँ। महेश के काम का मूल्य माँगने ही तो आया हूँ।"

"क्या मूल्य मैं दे सकता हूँ?"

"इस अपराध का एक ही मूल्य है और वह है आपका लड़का। इसे मुझे दे दीजिए। इसे रेवा से विवाह करना होगा।"

महेश का मुख खिल उठा। श्रीधर लाला जीवनलाल का, रेवा

तथा महेश के बम्बई जाने की कथा सुनाते समय, क्रोध देख चुका था। अब इस समय विवाह के प्रस्ताव से चकित रह गया। जीवनलाल ने अपनी माँग की व्याख्या कर दी, "मैं समझता हूँ कि जब लड़के-लड़की में पति-पत्नी का सम्बन्ध बन जावे तो उसे विवाह कर पक्का कर देना चाहिये। लड़की के घरवालो का जो अपमान हुआ है उसका केवल यही एक प्रतिकार है।

"यदि तो इन दोनों की प्रकृति मिलती है तो ये सुखी रहेंगे और यदि इन्होंने केवल वासनावश यह खराबी की है तो जन्म-भर के लिए इनको परस्पर बाँधकर दड देने मे ही भलाई है।"

"बताओ महेश ?" उसके पिता ने पूछा।

महेश का मुख देदीप्यमान हो उठा, उसके लज्जा और दुख के आँसू सुख के आँसुओं में बदल गये। उसने केवल यह कहा, "जैसी आज्ञा हो।"

जीवनलाल ने मुस्कराते हुए कहा, "आज्ञा माँगते हो अब ?"

इसके पश्चात् जीवनलाल उठ खड़ा हुआ और पंडित श्रीधर से बोला, "महेश की माँ और बहन को कल मध्याह्न के पश्चात् हमारे घर पर भेज देना। विवाह की तिथि निश्चय कर बता दूँगा।"

अगले दिन जब महेश की माँ और पार्वती जीवनलाल के घर गईं, तो रेवा की माँ और चेतनानन्द गायब थे। चेतनानन्द को गुजराँवाला जाने का काम याद आ गया और रेवा की माँ ने तो स्पष्ट कह दिया कि वह अपनी लड़की का विवाह इन ब्राह्मणों के घर नहीं करना चाहती। यह कह वह अपने बाप के घर चली गई।

इस पर भी जीवनलाल ने महेश की माँ और पार्वती का स्वागत किया। उन्हें फल दिए, मिठाइयाँ दीं और साथ ही एक सहस्र रुपया नकद दिया।

विवाह के समय भी चेतनानन्द को आवश्यक कार्य से बम्बई जाना बन गया और रेवा की माँ के पेट में पीड़ा होने लगी। रेवा का विवाह उनकी अनुपस्थिति में ही हो गया।

[१२]

रेवा को अपनी ससुराल का वातावरण सर्वथा भिन्न प्रतीत हुआ। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि इस घर मे उसे अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त है। यद्यपि घरवाले उससे अपना आचार और व्यवहार ठीक रखने की आशा करते थे, तो भी कभी किसी ने उसे आज्ञा नहीं की थी। उसकी सास प्रत्येक कार्य स्वयं करती थी और उसे करते देख रेवा को भी वही करना ठीक प्रतीत होता था। उससे उलट करने में उसे लज्जा अनुभव होने लगी थी।

उसने देखा कि उसकी माँ की भाँति उसकी सास अपने पति की निन्दा नहीं करती। वह संतोष और प्रसन्नता से जीवन के सुख-दुख सहन करती है। एक दिन रेवा ने पूछ ही लिया, "पिता जी इतनी मेहनत करते हैं पर प्राप्ति बहुत कम होती है।"

"बेटी", सास ने उत्तर दिया, "वे मेहनत धन कमाने के लिये नहीं करते।"

"तो किस लिये करते हैं?"

"ऋषि-ऋण उतारने के लिये। हमारे पूर्वजों में जो विद्वान थे, उन्हें हम ऋषि कहते है। उन्होंने हमें वेद, शास्त्र, पुराण और अनेकानेक विद्याओं के ग्रन्थ वरासत में दिये हैं। उनकी देन को जीवित रखने के लिए प्रत्येक काल में कुछ लोग अपना सर्वस्व न्योछावर कर उनके बनाए ग्रन्थो को पढ़ते और पढ़ाते हैं और साथ ही उनसे कहे पथ पर चल उनसे दी विद्या मे उन्नति करते हैं। यदि किसी काल में ऐसा करनेवाला कोई न हो तो समाज उन ऋषियों के ऋण से मुक्त नहीं हो सकता। ऐसा ऋणी समाज ऋण के बोझे के नीचे पिसकर नष्ट हो जाता है।"

"तो समाज को, उन्हें खाने, पहरने और रहने को तो देना चाहिये?"

"देती तो है। अब देखो न तुम्हारे पिता जी ने ही उन्हें तुम जैसी लड़की दे डाली है।"

एक दिन रेवा महेश के साथ अपने माता-पिता के घर गई हुई थी। चेतनानन्द भी वहाँ आया हुआ था। चेतनानन्द को विदित हो चुका था कि उसके पिता ने वसीहत लिख दी है। वह चाहता था कि उसे पता चल जाए कि वसीहत में क्या है। इस कारण जब सब भोजन कर चुके तो वहीं, खाने की मेज पर बैठे-बैठे ही, वह पूछने लगा। "लाला जी, आपने वसीहत लिख दी है क्या?"

"हाँ चेतन! उसमें मैंने तुमको कुछ नहीं दिया।"

"कुछ नहीं?"

"तुमको पढ़ा-लिखाकर योग्य कर दिया है। क्या यह कम है?"

"और महेश को?"

"महेश को वसीहत से तो कुछ नहीं मिला। हाँ, यह मेरे व्यापार में चार आने का भागीदार बन गया है। इससे पढ़ना-लिखना छोड़ मेरे साथ काम करना आरम्भ कर दिया है।"

"और रेवा को?"

"कुछ नही दिया।"

"यह मकान?"

"मेरे मरने के पश्चात्, यदि तुम्हारी माँ जीती रही तो इस मकान में रह सकेगी।"

"बस?"

"उसे मरण-पर्यन्त दो सौ रुपया मासिक भी मिलेगा।"

"यह तो कुछ नहीं?"

"मैं समझता हूँ कि यह ठीक है।"

"और यह सब धन-वैभव किसको दिया है आपने?"

"आर्य समाज को, वेद-प्रचार के लिए।"

चेतनानन्द खिलखिलाकर हँस पड़ा। जीवनलाल ने मुस्कराते

हुए आगे कहा, "हाँ, एक बात और है। मैंने पार्वती को जीवन-काल के लिए पाँच सौ रुपया मासिक देने को लिख दिया है।"

"तो हमारा बिस्तर गोल है इस घर से?"

"मैंने यह नहीं कहा। व्यापार मे मेरा पाँच लाख लग रहा है। इसकी वार्षिक आय लगभग चालीस हजार होती है। मेरे बारह आने के हिस्से में मुझे तीस हजार मिलेगा। इसमें से मैं तुमको कुछ तो दे सकता हूँ। बताओ तुम क्या चाहते हो?"

"मैं कुछ नहीं चाहता।"

महेश यह सब कुछ सुन रहा था। उसने अपने मन में उठ रहे भावों को प्रकट करना उचित समझा, "पिता जी। एक बात कहूँ?"

"हाँ महेश! कहो, क्या कहते हो?"

"मै कुछ ऐसा समझ रहा हूँ कि मैंने भाई चेतनानन्द के स्थान पर अनाधिकार स्वत्व कर लिया है। इससे मै अपने-आप मे बहुत छोटा अनुभव कर रहा हूँ।"

"यह भ्रम है तुम्हारा, महेश। देखो मेरा व्यापार चेतनानन्द को और उसकी माँ को पसन्द नहीं है। मै अब बूढ़ा होता जा रहा हूँ और इस बने बनाए-काम को बिगड़ने से बचाने के लिए मुझे किसी सहायक की आवश्यकता थी। कोई भी सहायक होता तो मैं उसे अपना पीत्तदार बना लेता। अतएव मैंने तुम्हारे साथ कोई भी अनुचित रियायत नहीं की।"

"मैं अपने साथ रियायत की बात नहीं कर रहा, पिता जी। मेरा अभिप्राय तो यह है कि आपका प्रेम भाई साहब के लिए कम हो गया है।"

"यह बात भी नहीं।" जीवनलाल ने गम्भीर होकर कहना जारी रखा। "बात यह है कि मनुष्य अपने बच्चों से प्रेम करता है। वह इस कारण कि उसके भीतर पशुपन का अंश विराजमान है। ज्यों-ज्यों मनुष्य मननशील हो अपने में मानवता का विकास करता जाता है"

उसके प्रेम का क्षेत्र अपने परिवार की परिधि से बाहर निकल विस्तृत होता जाता है। मनुष्य के लिए आचार-विचार सिद्धांत और जीवन-लक्ष्य अधिक महत्ता वाले बनते जाते हैं।

"चेतनानान्द मेरा लड़का है अवश्य, परन्तु उसकी विचार-धारा अपने देश की नहीं है। मुझे भारतीयता पसन्द है। उसे भारत की बातें जंगलीपन प्रतीत होती हैं। अब विवाह की बात ही देख लो। तुम दोनों ने चेतनानन्द से अधिक अपराध किया था। इस पर भी अपराध की श्रेणी में अंतर था। तुमने वासनावश अपने कर्त्तव्य की अवहेलना की थी। वासना एक प्रबल शक्ति है और इसके वशीभूत हो कोई अनुचित कार्य कर डालना क्षम्य हो सकता है। तुमने विवाह कर उस अपराध का प्रायश्चित्त कर लिया है। परन्तु चेतनानन्द ने जो उच्छृंखलता की है वह किसी वासना जैसी विवशता के कारण नहीं की। प्रत्युत उसने सोच-विचारकर और सब कुछ जानकर परिवार-व्यवस्था पर लात मारी थी। विवाह से एक बाहर के व्यक्ति को परिवार में लाना होता है। इसने उसके लिये परिवार के लोगों से राय करनी उचित नहीं समझी। यदि इसने यह किया है तो फिर इसको परिवार से कुछ आशा नहीं करनी चाहिये।"

महेश चेतनानन्द के व्यवहार की यह विवेचना सुन चकित रह गया। उसने अपने पिता जी को परिवार की महत्ता पर कहते सुना था। आज अपने श्वसुर को भी उसी बात पर बल देते सुन उसके मन में गहरा प्रभाव पड़ा। एक संशय उसके मन में अभी भी था और उसका निवारण करना उचित समझ पूछने लगा। 'आपने कहा है कि भाई साहब की विचार-धारा भारतीय नहीं है। क्या परिवार-प्रथा भारतीय है और यह भारतीयता का प्रधान अंग है?"

"प्रधान लक्षण तो नहीं, परन्तु एक लक्षण अवश्य है। परिवार-प्रथा से एकाई एक व्यक्ति न रहकर एक परिवार हो जाता है। इससे एक व्यक्ति की श्रेष्ठता अथवा भ्रष्टाचार उसके परिवार का माना

जाता है। इस कारण एक परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के आचरण को ठीक रखना परिवार का कर्तव्य हो जाता है। इस प्रकार समाज में एकाकी भावना कम हो समष्टि की भावना उत्पन्न होती है। यह भारतीयता का एक आवश्यक अंग है।"

चेतनानन्द ने अपने स्थान से उठते हुए कहा "यह सब वागाडम्बर है। हिन्दू समाज में बनियापन बहुत बढ गया है और उसका परिणाम ही यह परिवार-प्रथा है। मै इसे एक व्यक्ति के व्यक्तित्व पर आघात मानता हूँ। में अपने व्यक्तित्व को आपके लाखो पर भी न्योछावर नही कर सकता।"

चेतनानन्द उठ घर से बाहर निकल गया।

स्वराज्य की आशा में

[१]

बम्बई की वुर्ली नाम की एक बस्ती में, एक खद्दरधारी युवक हाथ में उस दिन के 'बाम्बे क्रॉनिकल' की एक प्रति लिए, लम्बे-लम्बे पग उठाता हुआ मकानो के एक समूह (Block) की ओर जा रहा था। मकानो के कई समूह बने थे, जो प्रायः चार-चार छत के थे। प्रत्येक मकान-समूह के सामने दो या तीन नल पानी भरने के लिए और स्नानादि के लिए लगे हुए थे। स्त्रियाँ घरो की सफाई और चौका-बासन में लगी थीं और पुरुष कारखानो में काम पर गये हुए थे। प्रत्येक नल पर पानी भरनेवाली स्त्रियो की भीड़ लगी थी।

मकानो के समूह में कमरो की पंक्तियाँ थीं और आगे बरामदे थे, जिनमें रसोई के लिए चूल्हे-चौके बने थे। कई मकानो मे दो कमरे थे और कईयो में केवल एक ही था। कमरों के पिछली तरफ खिड़कियाँ और रोशनदान थे।

कमरे छोटे-छोटे थे। एक में दो चारपाई लग जाने पर कठिनाई से खड़े होने को स्थान बचता था। जब किसी मकान में दो कमरे होते, तो एक की बगल में दूसरा होता और एक से दूसरे मे जाने को मार्ग होता। पायखाने बरामदे के अंत में सब मकानों के साँझे थे।

वह युवक एक मकान-समूह के सामने से लाँघ दूसरे समूह में बीच की सीढ़ियों पर चढ़ दूसरी छत पर पहुँच गया। वहाँ एक सौ पचपन नम्बर के कमरे के सम्मुख बरामदे में जा खड़ा हुआ। बरामदे में एक ओर हदबन्दी बनी हुई थी। इसके बीच बने चौके में एक चौदह-पंद्रह वर्ष की लड़की बर्तन समेट रही थी। वह खद्दरधारी युवक को आया देख बोली, "नमस्कार दादा।"

"अभी काम से छुट्टी नहीं पाई, टुनिया ?"

"आज बाबा रोज से ज्यादा बीमार हैं। इससे काम समाप्त करने में देरी हो गई है।"

"तो फिर दौरा हो गया है क्या ?"

"बहुत जोर का। इस समय कुछ आराम हुआ है। वे सोये हैं तो काम करने बैठी हूँ।"

"अच्छी बात है। निपट कर जल्दी आओ।"

"अभी आई।"

टुनिया लड़की का नाम नहीं था। दुबली-पतली होने से बाबा ने प्रेम मे यह नाम दे रखा था। लड़की का असली नाम लक्ष्मी था।

लक्ष्मी का बाबा दम का बीमार था। पिछली रात-भर साँस का दौरा चलता रहा था और वह सो नहीं सका था। अब कुछ शान्ति हुई तो वह सो गया। सिर की ओर बड़े-बड़े तकिये रखकर उसका सिर ऊचा किया हुआ था। वह खद्दरधारी युवक आधा मिनट तक समीप खड़ा बूढ़े के क्षीण, पीत मुख को देखता रहा। पश्चात् वह बगल के कमरे में चला गया। इस कमरे में खाट नहीं थी। भूमि पर दरी बिछी थी और उस पर एक चादर थी जो अधमैली हो रही थी।

युवक चादर के ऊपर बैठ गया और हाथ में पकड़े समाचार-पत्र को पढ़ने लगा। लक्ष्मी ने चौका-बासन का काम समाप्त कर, एक गिलास में ऊष्ण दूध ले, कमरे में आ खाट के समीप तिपाई पर रख दिया। बाबा को कुछ समय तक सोते देख दूसरे कमरे में आ गई।

लड़की का रंग गँदमी, नख शिख सुन्दर और छोटा सा मुख जिसमें बड़ी-बड़ी आँखे थीं। माथा चौड़ा और बाल घुँघराले थे। उन्नाबी रंग की छींट की कुर्ती और उसी कपड़े का लहँगा पहने थी। सिर से नंगी और पाँव में चाँदी की दो बारीक कड़ियाँ थीं।

जब लड़की आई तो युवक ने मन भरकर उसको सिर से पाँव

तक देखा। जब लड़की से उसकी दृष्टि मिली तो लड़की ने आँखे भूमि की ओर कर लीं। उसने पूछा, "जल लाऊँ?"

युवक ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "नहीं, इधर मेरे समीप आकर बैठो।"

लड़की युवक के सम्मुख पलथी मारकर बैठ गई। युवक ने कहा, "देखो दुनिया! बाबा तुम्हारे अब बहुत दिन जी नहीं सकते। तुम्हारे भैया तो जैसे हैं, तुम जानती हो। तब तुम कहाँ जाओगी?"

दुनिया की आँखे तरल हो उठीं, "सच बाबा की अवस्था बहुत खराब है?"

"मै जानता हूँ। मैंने डाक्टरी पढ़ी है। इससे कहता हूँ, कि हमें बाबा के सम्मुख कुछ निश्चय कर लेना चाहिए।"

"क्या निश्चय कर लेना चाहिये?" लड़की ने आँखें नीचे किये हुए धीमी आवाज में पूछा।

"यही, कि तुम कहाँ रहोगी? भैया राने तो नित्य रात को शराब पीकर आवेगा और तुम्हारा यहाँ रहना कठिन हो जावेगा।"

"कठिन क्यों होगा?"

"तुमसे भैया राने का कोई शराबी मित्र विवाह कर लेगा।"

"मै विवाह नहीं करूँगी। इसी कारण तो आपसे पढ़ती हूँ।"

"ठीक! पर तुम्हें पढ़ने कौन देगा?"

"तो क्या करूँगी?"

"मेरे साथ मेरे घर पर चलकर रहना। मेरी पत्नी बनकर। बाबा से आज मै कह दूँगा और बात पक्की कर लूँगा।"

"पर मैंने तो पढ़ना है। क्या आप मुझे पढ़ाएँगे?"

"अरे बाबा, हाँ। अच्छा अब अपनी पुस्तक और कापी निकालो।"

लक्ष्मी उठी और दीवार में लगी अलमारी में से हिन्दी की पाँचवीं पुस्तक निकाल पढ़ने बैठ गई। युवक उसे बहुत ध्यान से पढ़ाता रहा।

अभी पढाई समाप्त नहीं हुई थी कि बाबा के खाँसने का शब्द हुआ। लक्ष्मी किताब वहीं छोड़ बाबा की चारपाई के समीप जा खड़ी हो, देखने लगी। बाबा ने आँख खोली और लक्ष्मी को सामने खड़ा देख पूछा। "सदाशिव आया है बेटी?"

"हाँ बाबा। दूध लाऊँ?"

"आज भूख नहीं मालूम हो रही। अच्छा देखो गरम है या ठंडा?"

लक्ष्मी ने तिपाई पर रखे ग्लास को हाथ लगाकर देखा और बोली, "अभी गरम किए देती हूँ।"

सदाशिव भी अब वहाँ आ गया था। लक्ष्मी दूध गरम करने बाहर चली गई। सदाशिव बाबा की चारपाई के बाजू पर बैठ गया। बूढ़े ने उसे देख कहा, "मुझे उठाओ, सदाशिव!"

उसने हाथ का आश्रय दे उसे सीधा कर दिया। थोड़ा खाँस और गले में अटकी बलगम निकाल, चारपाई के नीचे रखे टीन के डब्बे में थूक, बोला। "बेटा सदाशिव! अब मैं हार-गया हूँ। मुझसे और जीते नहीं बनता। मैं चाहता था कि लक्ष्मी का विवाह अपने हाथो करता, परन्तु भगवान को यह मंजूर नहीं है। मेरा शरीर ठंडा पड़ता जाता है।"

कुछ साँस ले और खखार निकाल बूढ़े ने कहा। "मै जीता रहता तो लक्ष्मी का विवाह तुमसे कर देता। वह दो मास में पन्द्रह वर्ष की हो जाती। परन्तु अब इतनी प्रतीक्षा करने का समय नहीं रहा। देखो तुम उसके पति हुए। बताओ मंजूर है?"

सदाशिव चुपचाप बैठा रहा। बूढ़े ने फिर कहा। "विवाह-संस्कार करने को अब समय नहीं है। वह तुम अवसर देख कर लेना।"

बूढ़े को खाँसी आने लगी थी। लक्ष्मी दूध गरम कर लाई। सदाशिव ने लक्ष्मी के हाथ से गिलास पकड़ बूढ़े के मुख से लगा दिया। उसने तीन चार घूँट पिये और दूध की गरमी से दो बड़े-बड़े खखार

निकाल कुछ शांति अनुभव करने लगा। बूढ़े ने लक्ष्मी को कहा, "बेटी इधर आओ। यहाँ बैठो।"

लक्ष्मी खाट पर सदाशिव के दूसरी ओर बैठ गई। बूढ़े ने लक्ष्मी का हाथ पकड़कर कहा, "बेटी, मुझे अपना अन्त समय आ गया प्रतीत होता है। इससे अपना एक शेष कर्तव्य पूरा कर देना चाहता हूँ। मैं तुम्हारा विवाह नहीं कर सका। सो वह अब सदाशिव से करता हूँ।"

इतना कह बूढे ने लक्ष्मी का हाथ सदाशिव की ओर बढ़ाया। सदाशिव ने हाथ बढ़ा उसे पकड़ लिया। अब बूढ़े ने कहा, "बेटी, आज से ये तुम्हारे पति हुए। तुमने इनके साथ पतिव्रता स्त्री बनकर रहना है। जन्मभर तुम इनको अपना देवता मान इनकी आज्ञानुसार चलना।"

इतने से बूढ़े को हँफनी चढ़ गई। उसने कुछ समय तक चुप रह हँफनी रोकी और फिर कहा, "तुम्हारा भाई राने आ जाता तो अच्छा था। मैं उसे भी कह देता......सदाशिव . ...किसी को भेज बुला लो......शायद......वह समय......पर......आ जावे।"

बूढ़े का साँस उखड़ने लगा था। सदाशिव ने लक्ष्मी से कहा, "मीना की माँ से कहो, कारखाने से बुला लावे। उसका घरवाला वहीं काम करता है।"

[२]

राने के आने से पूर्व बूढ़े ने साँस तोड़ दिया था।

राने ने पिता का संस्कार किया। चौथे दिवस का शोक समागम भी हो गया। इतने दिन तक सदाशिव राने के पास रहा और उसे सांत्वना देता रहा। पाँचवे दिन राने अपने काम पर जाने लगा तो सदाशिव भी जाने को तैयार हो गया। राने ने उसे जाते देख कहा। "लक्ष्मी को पढ़ाने के लिए आपके आने की आवश्यकता नहीं। सज्ञान लड़की के साथ अकेले में आपका मिलना ठीक नहीं।"

"पर," सदाशिव ने कहा, "बाबा की इच्छा थी कि लक्ष्मी का

विवाह मुझसे हो। उन्होंने मरते समय उसका हाथ मेरे हाथ में पकड़ा दिया था।"

"मुझे इसका विश्वास नहीं आता। मैं लक्ष्मी का विवाह कहाँ करूँगा, कह नहीं सकता। हाँ! मैं तुम्हें फिर कहता हूँ, अब हमारे घर में नहीं आना। नहीं तो ठीक नहीं होगा।"

सदाशिव ने कहा, "राने भैया! क्रोध करने की आवश्यकता नहीं। मैंने जो कुछ कहा है सत्य है। यदि यह सत्य न भी मानो तब भी मैं पढ़ा-लिखा और सब प्रकार से योग्य वर हूँ। मैं चाहता हूँ कि उसका विवाह शीघ्र कर दिया जावे।"

"अच्छा, अच्छा! अब तुम जाओ। मै तुम्हारे प्रस्ताव को उचित समझूँगा तो बुला लूँगा।"

विवश सदाशिव चला गया, इस पर भी वह आशा करता था कि लक्ष्मी के लिए वर उससे अच्छा और नहीं मिलेगा। और शीघ्र ही राने उसके पास आकर बात-चीत करेगा।

सदाशिव की आशा पूरी नहीं हुई। आशा के विपरीत उसे मीना के भाई ने सूचना दी की लक्ष्मी का विवाह मन्नू जमादार से होना निश्चय हुआ है। मीना के भाई का नाम गोविन्द था और उसके मात-पिता राने के साथ क्वार्टर में रहते थे। सदाशिव गोविन्द को जानता था, इससे उसे देख उसने पूछा, "गोविन्द! सुनाओ भाई, कैसे आये हो?"

"बाबू जी, एक बहुत जरूरी काम से आया हूँ।" गोविन्द का उत्तर था। "कई दिन से आपको ढूँढ रहा था। आज यहाँ की कांग्रेस कमेटी के मंत्री से पूछकर यहाँ पहुँचा हूँ।"

सदाशिव एक मन्दिर के पुजारी का लड़का था और उसी मन्दिर के पिछवाड़े में अपने पिता के साथ रहता था। १९४२ में एम० बी० बी० एस० पास किया तो 'क्विट इंडिया' आन्दोलन के भँवर में फँस गया। १९४५ में छूटा तो उसमें लोक-सेवा की भावना जाग उठी।

वह कारखानों के कर्मचारियो के बच्चों को लिखना-पढ़ना सिखाने लगा। उसकी सेवाएँ निःशुल्क थीं। इससे वह कुछ काल में ही एक विख्यात सार्वजनिक कार्य-कर्ता हो गया। १६४६ में वह कांग्रेस के टिकट पर बम्बई धारा-सभा का सदस्य निर्वाचित हो गया। इस निर्वाचन में।कामगार यूनियन ने उसका विरोध किया था। इस पर निर्वाचन में सफल होने पर यूनियन के लोग उसके विरोधी हो गए। राने यूनियन का एक प्रमुख कार्यकर्ता था। उसने सदाशिव की निन्दा करनी आरम्भ कर दी। सब कामगार यूनियन के सदस्यों ने अपने बच्चे उसकी पाठशाला से उठा लिए और फिर एक दिन उसकी पाठशाला के सामान को लूट उसे ताला लगा दिया।

राने के पिता को यूनियन के लोगों का यह काम अच्छा नहीं लगा। उसकी लड़की लक्ष्मी भी उस पाठशाला में पढ़ने जाती थी। इससे लक्ष्मी की शिक्षा जारी रखने के लिए सदाशिव को अपने घर ले आया। जब उसे पता लगा कि घर आकर पढ़ाने का भी वह कुछ नहीं लेगा तो वह उसे देवता समझने लगा।

लक्ष्मी को घर पर पढ़ाते हुए दो मास के लगभग हो चुके थे कि राने के बाप का देहांत हो गया। यह मार्च १६४६ की बात थी।

गोविन्द ने जब कहा कि वह एक आवश्यक काम से आया है, तो सदाशिव को समझ आ गई कि लक्ष्मी के विषय में बातचीत करने आया है। इससे वह उसे एक ओर पृथक् ले जाकर पूछने लगा, "हाँ, क्या बात है?"

"बाबू जी, लक्ष्मी का विवाह होनेवाला है।"

"किससे?"

"मन्नू जमादार से। वह राने की मील में फोरमैन है।"

सदाशिव के मुख का रंग उड़ गया। अपने मन के भावों को छुपाते हुए उसने पूछा, "तुमको किसने बताया है?"

"लक्ष्मी ने स्वयं कहा है। उसने मुझको कहा है कि आपको ढूँढ-

कर बता दूँ। वह माँ के सामने कहती थी कि उसके बाबा न उसका विवाह आपसे कर दिया था।"

सदाशिव गंभीर हो खड़ा रहा। गोविन्द ने अपना कहना जारी रखा, "लक्ष्मी कहती थी कि आप आकर उसे ले जावें। मन्नू मुसलमान है और वह उसकी बीवी बनना नहीं चाहती।"

सदाशिव ने गोविन्द को यह कहकर लौटा दिया कि वह आवेगा। इस पर भी वह दिन-भर सोचता रहा कि क्या करे। वह सोचता था कि राने और कारखाने के अन्य कर्मचारी उसको चलने नहीं देंगे।

उसने उस इलाके के कांग्रेस के मंत्री को बुलाकर उससे राय ली। मंत्री, मौलाना अब्दुल हलीम रिजवी ने सदाशिव की कहानी सुनी और तहकीकात करने का वचन दे सदाशिव को राने के घर जाने से रोक दिया।

[३]

लक्ष्मी को जब पता चला कि उसका विवाह किसी और से होनेवाला है तो उसने अपने भाई से पूछा, "भैया। मेरा विवाह किससे कर रहे हो?"

"चुप रहो! तुम्हें यह पूछते लज्जा नहीं लगती?"

"पर बात यह है कि मेरा विवाह बाबा ने..... ।"

राने ने एक चपत उसके मुख पर लगाकर कहा, "चुप रहो, उसका नाम नहीं लेना।"

लक्ष्मी चुप रही और रात-भर सोचती रही कि क्या करे। उसने अपने बाबा से सुन रखा था कि हिन्दुओं में जब एक बार विवाह हो जावे तो फिर टूट नहीं सकता और वह अपने को विवाहिता समझती थी।

अगले दिन जब उसका भाई मील में काम करने चला गया तो वह अपने पड़ोस में मीना की माँ के पास गई और पूछने लगी, "चाची! मुझे एक बात बताओगी?"

"हाँ, बेटी! कहो क्या बात है?"

"बाबा जब मरने लगे थे तो मेरा विवाह मास्टर साहब से कर गये थे।"

"कैसे?"

"उन्होंने मेरा हाथ पकड़ उनके हाथ में पकड़ाते हुए कहा था कि मैं उनकी धर्मपत्नी हो गई। मुझे जन्म-भर उनकी पतिव्रता स्त्री बनकर रहना चाहिये।"

"तब तो दुनिया तुम भाग्यवान हो। मास्टर बहुत अच्छे आदमी हैं। पढ़े-लिखे हैं, और पुजारी के लड़के हैं।"

"पर चाची! भैया राने मेरा विवाह किसी और से करना चाहते हैं। मै चाहती हूँ कि मास्टर जी को सूचना भेजी जावे और बुलाया जावे।"

मीना की माँ ने मीना के पिता को राने के पास भेज पता किया कि लक्ष्मी का विवाह किससे होनेवाला है। जब पता लगा कि लक्ष्मी का विवाह मन्नू जमादार से होनेवाला है तो सदाशिव को ढूँढने और बुलाने के लिये गोविन्द को भेजा गया।

सदाशिव का समाचार मिला कि वह आ रहा है। परन्तु वह नहीं आया। इसके विपरीत विवाह की तैयारियाँ खूब धूम-धाम से होने लगीं। उसी गृह-समूह में कुछ मुसलमान रहते थे। वे भी इस विवाह में रुचि दिखाने लगे।

मीना के पिता ने पुनः गोविन्द को सदाशिव के पास भेजा। इस बार उसने यह संदेसा भेजा कि वह सरकार में कार्यवाही कर रहा है। इस संदेस को पहुँचे भी बहुत दिन हो गये। लक्ष्मी रो-रोकर दिन गुजार रही थी। मीना की माँ से उसका रोना नहीं देखा जाता था। इससे एक रात उसने अपने पति से कहा, "धिक्कार है तुम लोगों के हिन्दू होने पर। एक हिन्दू लड़की का जबरदस्ती मुसलमान से विवाह किया जा रहा है और तुम लोगो के कान पर जूँ तक नहीं रेंगती।"

"मैं क्या करूं ? मुझे कुछ समझ में नहीं आता।"

"उस बेचारी बच्ची को बचाओ। जैसे भी हो बचाओ। बेचारी मलेच्छ के घर जावेगी तो अनर्थ हो जावेगा।"

मीना का बाप समझता था कि यह ठीक नहीं हो रहा, पर वह सोचता था कि जब लड़की का बड़ा भाई उसका विवाह कर रहा है तो वह किस प्रकार रोक सकता है। इस पर भी अपनी स्त्री से डाँटे-फटकारे जाने पर अपने मित्रों से बात करने पर तैयार हो गया। सबने मिलकर यह निश्चय किया कि इलाका कांग्रेस कमेटी के मंत्री के पास जाकर सहायता माँगी जावे। मौलाना रिजवी के पास ये लोग पहुँचे तो उसने पूछा, "आप लोगों को इस मामले में क्यों दिलचस्पी है ?"

मीना के बाप ने उत्तर दिया, "हम लोग राने के पड़ोसी हैं।"

"मगर पड़ोसी होने से उसकी बहन के विवाह में दखल देने का हक कैसे हो गया ?"

"शादी तो साहब हो चुकी है।"

"क्या भँवर चढ़ गये हैं ?"

"भँवर तो नहीं चढ़े, पर जब लड़की का हाथ पकड़ा दिया गया तो भँवर चढ़ने के बराबर ही हो जाता है।"

"भाई ! कानून इसको ऐसा नहीं मानता। देखो, मेरी राय मानो। अपना काम सँभालो। कहीं ऐसा न हो कि हिन्दू-मुसलमान फसाद हो जावे। इससे कांग्रेसी सरकार बदनाम हो जावेगी।"

"पर मौलाना साहब। लड़की एक मुसलमान से विवाह करना नहीं चाहती।"

"यही तो मैं कह रहा हूँ। लड़की नाबालिग है। उसका विवाह करना उसके भाई का हक है और अगर तुम लोगों ने इसमें दखल दिया तो झगड़ा हो जाने का इमकान है। स्वराज्य, जो अब मिलने ही वाला है, दूर हट जावेगा।"

मीना का पिता और उसके साथी कांग्रेस कार्यालय से बाहर

निकल आए। इस समय उनकी दृष्टि सदाशिव पर पड़ी। वह भी कांग्रेस कमेटी के कार्यालय में आ रहा था। वह तो बिना उनकी ओर ध्यान दिए कार्यालय में चला जाता, परन्तु मीना के पिता ने उसे रोककर कहा, "मास्टर जी! लक्ष्मी आपकी प्रतीक्षा कर रही है। आपने आने को कहा था पर आए नहीं।"

सदाशिव खड़ा हो एक क्षण तक उन लोगों का मुख देखता रहा। पश्चात् सोचकर बोला, "भाई! मैं विवश हूँ। देश का हित मेरी इच्छा के विरुद्ध बैठता है।"

मीना के पिता ने कहा, "यही मौलाना साहब कह रहे थे। परन्तु हमको तो समझ नहीं आता कि अन्याय के आधार पर स्वराज्य कैसे मिलेगा?"

सदाशिव ने मुस्कराकर कहा, "यह बात तुम लोगों के समझने की नहीं है। इस समय हिन्दू-मुसलमानों में झगड़ा नहीं होना चाहिये। इसके लिए जो भी कुर्बानी की जावे कम है।"

यह कह सदाशिव कांग्रेस कार्यालय में चला गया। मीना का पिता और उसके साथी विस्मय में एक दूसरे का मुख देखते रह गए।

मीना के पिता ने कहा, "भाई, मुझसे मीना का रोना नहीं देखा जाता। पर हम कर ही क्या सकते हैं?"

इस पर उनमें से एक बोला, "अभी एक उपाय और है। लड़की मुसलमान से विवाही जा रही है, इससे कोई मुसलमान हमारी सहायता नहीं करेगा। एक आदमी बम्बई मे है जो दुःखी हिन्दुओं की सुननेवाला है। मैं उसके पास जाता हूँ।"

"कौन है वह?"

"हमारी मील में एक हिन्दू औरत काम करती थी। उसे एक दिन कुछ मुसलमान गुण्डे उठाकर ले गए। रास्ते में वह औरत शोर मचाती जाती थी। एक साहब मोटर में जाते-जाते रुक गए और उन्होने पिस्तौल दिखा उस औरत को छुड़ा दिया। औरत को उठा ले जाने-

वालों को पकड़वाया, मुकद्दमा कर दंड दिलवाया। यही नहीं, उस औरत और उसके घरवाले को मील के बाहर नौकरी दिलवा दी। मै उस आदमी के घर का पता जानता हूँ। मै उसको सूचना देना चाहता हूँ।"

सब उसका मुख देखते रहे और वह ट्राम-गाड़ी में सवार हो कालबा देवी रोड की ओर चला गया।

[४]

सदाशिव मन में यह सोच रहा था कि एक लड़की मुसलमान के घर जाती है या हिन्दू के, इसकी हिन्दुस्तान को स्वराज्य मिलने से कोई तुलना नही। एक बार स्वराज्य मिल गया तो सहस्रो स्त्रियाँ-पुरुष सुख-शान्ति और स्वतंत्रता का जीवन व्यतीत करने लगेंगे। देश धनवान होगा। सबको खाने, पहरने और रहने को साधन प्राप्त होंगे।

वह दुनिया से प्रेम करता था। पर उसका प्रेम अंधा नहीं था। वह अपने देश की स्वतंत्रता से दुनिया से कहीं अधिक प्रेम करता था। अतएव वह अपने मन में दुनिया को देश की स्वतंत्रता की वेदी पर स्वाहा कर चुका था। उसने निश्चय कर लिया था कि वह राने से मिलने नहीं जावेगा।

वह सत्यनारायण के मन्दिर में बैठा चरखा कात रहा था कि एक आदमी पतलून और 'बुश शर्ट' पहिने मोटर मे उससे मिलने आया। सदाशिव ने मन्दिर के बाहर मोटर का शब्द सुना और फिर एक हृष्ट-पुष्ट पंजाबी को अपने सामने आ यह प्रश्न करते सुना। "क्या मैं सदाशिव जी से बात कर रहा हूँ?"

"जी हाँ, आइये! बैठिए।" सदाशिव ने चटाई पर, जिस पर वह स्वयं बैठा था, बैठने को स्थान देकर कहा।

नवागन्तुक चटाई पर बैठ गया। वह बूट पहिने था। इससे उसने

टाँगें चटाई के नीचे रखीं। सदाशिव ने चर्खा चलाते हुए पूछा, "आज्ञा करिए?"

"मेरा नाम खुशीराम है। मैं 'लॉ-जर्नल प्रेस' का मैनेजर हूँ। कुछ सार्वजनिक कामों में रुचि रखता हूँ। इससे लोग मेरी सहायता के लिए आया करते हैं। मेरे पास एक प्रार्थना आई है कि बुर्ली ब्लाक नम्बर दो, टेनेमैन्ट नम्बर १५५ में, एक लड़की लक्ष्मी देवी का विवाह आपसे होने का वचन हो चुका है। अब उसका भाई लड़की की इच्छा के विरुद्ध एक मुसलमान से उसका विवाह करना चाहता है। क्या यह ठीक है?"

"विवाह का वचन तो हुआ है, पर इसे विवाह नहीं कह सकते। कानून मेरे हक में नहीं है।"

"मैं समझता हूँ कि तुम लड़की के बालिग होने तक विवाह पर 'इंजंक्शन' जारी करवा सकते हो।"

"इससे हिन्दू-मुसलमानों में झगड़ा हो जाने की सम्भावना है।"

खुशीराम की हँसी निकल गई। उसने कहा, "किसी को झगड़े से डरकर अपनी बीवी छोड़ते मैंने पहले कभी नहीं देखा।"

सदाशिव को इससे लज्जा अनुभव हुई। परन्तु खुशीराम को एक व्यापारी समझ और उसे देश की परिस्थिति से अनभिज्ञ मान अपने मन के भावों को बता नहीं सका। उसने केवल यह कहा, "आपको वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान नहीं है।"

"क्या आप उसका ज्ञान करा देंगे?"

सदाशिव ने चरखे से ध्यान ऊपर उठाकर कहा, "क्या करियेगा जानकर?"

"ज्ञान-प्राप्ति से लोग क्या करते हैं? आप तो बहुत पढ़े-लिखे युवक प्रतीत होते हैं। ज्ञान-प्राप्ति आचरण सुधारने के काम मे आती है। क्या मैं भूल कर रहा हूँ?"

सदाशिव ने चरखे पर तार निकालने का यत्न किया पर तार

टूट गई। इससे पूनी को एक ओर रख, चरखे से मुख मोड़ खुशीराम की ओर देखते हुए कहने लगा, "मेरा अभिप्राय यह है कि यह आपका काम नहीं है। आप इसमें हस्तक्षेप कर, क्या करेंगे?"

"ठीक! आपको उस लड़की से विवाह करने पर मैं विवश नहीं कर सकता, परन्तु एक हिन्दू लड़की का एक मुसलमान से विवाह किया जाना एक भिन्न बात है। इसमें हस्तक्षेप ऐसे ही है, जैसे आप लोगों का, मेरा मतलब कांग्रेस का, विदेशी कपड़ों की दुकानो पर धरणा देना था।"

"वह तो एक जातीय प्रश्न था। जाति का धन विदेश में जाने से रोकना हमारा अधिकार था।"

"भाई सदाशिव! यही कारण है मेरे इस बात में हस्तक्षेप करने का। स्त्री, जाति का एक अत्यावश्यक अंग है। इसे कोई दूसरा ले जावे तो जाति की हानि होगी। जाति को इस हानि से बचाना हम सब का कर्त्तव्य नहीं है क्या? यदि तुम लक्ष्मी से विवाह नहीं करोगे तो मैं उसका विवाह किसी अन्य हिन्दू से करने का यत्न करूँगा।"

"तो मुसलमानो को आप अपने में नहीं समझते? उनको कोई और जाति समझते हो?"

"मेरे समझने अथवा न समझने का तो प्रश्न ही नहीं रह गया। मुसलमान स्वयं अपने को हमसे पृथक् जाति मानते हैं। आपने पिछले निर्वाचनों के परिणामों को तो अवश्य पढ़ा होगा?"

"यह तो मुसलिम लीग के भ्रमजनक प्रचार का परिणाम हुआ है।"

"मैं भी यही मानता हूँ। साथ ही यह भी मानता हूँ कि मुसलिम लीग से पहिले, ऐसे ही भ्रमजनक प्रचार के करनेवाले, सर सैयद अहमद हुए थे और उससे भी पहिले समय-समय पर, हमें काफिर कहनेवाले और बहुत हो चुके हैं। जब तक इस प्रकार का भ्रममूलक प्रचार करनेवालो का असर मुसलमानों पर है तब तक तो हम अपनी लड़कियों को उपहार के रूप में उनको नहीं दे सकते।"

"आप जो इच्छा हो करें।" सदाशिव ने वाद-विवाद बंद करते हुए कहा, "मैं इस झगड़े में पड़ना नहीं चाहता। आपके मस्तिष्क में साम्प्रदायिकता इतनी भरी हुई है कि आप देश का सत्यानाश करके छोड़ेंगे। मुझे आपकी युक्तियाँ ठीक प्रतीत नहीं होतीं।"

इतना कह सदाशिव अपना चर्खा कातने लगा।

[५]

लक्ष्मी सर्वथा निराश हो गई थी। मीना की माँ ने भी कह दिया था कि सदाशिव इस विषय में कुछ नहीं कर सकता। वह सोचती थी कि शायद वह स्वप्न था और उसमें सत्यता नहीं थी। उसके अपने मन में एक मुसलमान की स्त्री बनने के चित्र खिंचने लगे। इससे उसके मन में एक प्रकार की ग्लानि उत्पन्न होने लगी थी।

एक दिन उसने भीतर के कमरे में बैठे-बैठे सुना कि मन्नू जमादार, जिससे उसका विवाह होने वाला था, बाहर के कमरे में बैठा, उसके भाई से विवाह की बातें कर रहा है। बाहर के कमरे से भीतर के कमरे में आने का द्वार बंद था। वह अनिच्छा रहते हुए भी उठी और द्वार की दराड़ में देखने और सुनने लगी।

मन्नू प्रौढ़ावस्था का पुरुष था। घनी मूछें और डाढ़ी रखता था। देखने में सदाशिव से अधिक शक्तिशाली परन्तु गंदा और मैला प्रतीत होता था। सदाशिव के मुख पर सौम्यता और आकर्षण था और मन्नू के मुख पर क्रूड़ता थी।

राने कह रहा था, "भाई मन्नू! विवाह तो मैजिस्ट्रेट बुलाकर हो जावेगा परन्तु सब खर्चा तुम्हें करना पड़ेगा। मेरे पास खर्च करने को कुछ नहीं। बाबा के मरने और बीमारी पर सब खर्च हो चुका है।"

"मैजिस्ट्रेट के बुलाने पर पच्चीस रुपये फीस लग जावेगी। इससे मेरी राय है कि हम सब लोग कचहरी चले जावें। वहाँ पर सब

कुछ हो जावेगा। केवल एक स्टाम्प-पेपर पर प्रार्थना-पत्र देना होगा। फिर घर पर मुल्ला बुलाकर निकाह पढ़ाने में भी तो खर्चा होगा।

"इसकी क्या जरूरत है?" राने का प्रश्न था।

"मेरी रुह नहीं मानती न।"

इस पर मन्नू के साथ आए लोग राने अपने को साथ बाहर ले गये। बाहर बरामदे में जाकर वे कुछ बात-चीत करने लगे। तदनन्तर मन्नू भी उनमें जा सम्मिलित हुआ। जब वे सब लोग चले गये तो राने भीतर आया। बाहर का दरवाजा बद कर हाथ में पकड़े नोटो की थई गिनने लगा। लक्ष्मी यह सब कुछ दरवाजे की झीथ मे से देख रही थी। उसने राने को यह कहते सुना था कि उसके पास खर्च करने को रुपया नहीं है। अब उसने देखा कि दस-दस रुपये के कितने ही नोट उसके पास थे। वह समझ नहीं सकी कि ये सब रुपये उसके पास कहाँ से आए।

इस समय लक्ष्मी ने दरवाजा खोल दिया। राने ने लक्ष्मी को दरवाजे के भीतर खड़े देख प्रसन्नता से फूलते हुए कहा, "देखो दुनिया! तुम्हारे लिए बढ़िया कपड़े और भूषण खरीदने को इतने रुपये लाया हूँ।"

"भैया! कहाँ से लाए हो ये रुपये?"

"कहीं से भी हुए, पर हैं ये सब तुम्हारे लिए।"

लक्ष्मी इसका यह उत्तर देना चाहती थी कि उसे इनकी आवश्यकता नहीं, परन्तु उसे भय था कि ऐसा कहने पर पीटी जावेगी। इससे चुप रही।

अगले दिन वह मीना के घर गई हुई थी कि एक स्त्री उससे मिलने आई। वह लक्ष्मी का घर बंद देख पड़ोस में मीना की माँ का दरवाजा खटखटाने लगी। जब मीना ने दरवाजा खोला तो उस स्त्री ने पूछा, "नम्बर १५५ मे जो लक्ष्मी देवी रहती हैं, वह कहाँ गई हैं?"

"क्यों? क्या काम है?"

"उनसे मिलना है।"

मीना ने लक्ष्मी की ओर देखकर कहा, "वह बैठी हैं।"

इस पर वह स्त्री मकान के भीतर हो गई और पूछने लगी "तुम लक्ष्मी हो?"

"हाँ। क्यों?" लक्ष्मी ने पूछा।

"मै तुमसे मिलने आई हूँ। अपने घर नहीं चलोगी?"

"आप कौन हैं? यहीं बैठ जाइये। यह," उसने मीना की माँ की ओर देखकर कहा—"चाची हैं।"

"अच्छी बात है?"

इस समय मीना की माँ ने एक चटाई निकाल बिछा दी और आई हुई स्त्री से बैठने को कहा, "आप बैठिये।"

उस स्त्री ने कहा "मै इस लड़की के विवाह के विषय में बात-चीत करने आई हूँ।"

सब चटाई पर बैठ गईं। उस स्त्री ने अपना परिचय देते हुए कहा, "यहाँ के एक रहनेवाले ने एक प्रार्थना-पत्र दिया है कि एक हिन्दू नाबालिग लड़की का विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध एक मुसल-मान से किया जा रहा है। मैं यह जानने आई हूँ कि इसमें कितनी सच्चाई है!"

उत्तर मीना की माँ ने दिया। "बात तो आपकी सत्य है, पर आप क्या कर सकती हैं, और आप कौन हैं?"

उस औरत ने कहा, "यदि लक्ष्मी यह कहे कि वह उससे विवाह नहीं करना चाहती, तो मै उसकी सहायता कर सकती हूँ।"

मीना की माँ ने पूछा, "कैसे?"

"मैं विवाह रुकाने का यत्न करूँगी।"

"परन्तु मीना के पिता तो कहते थे कि जब लक्ष्मी का भाई उसका विवाह करने के लिए राजी है तो इसको कोई भी रोक नही सकता।"

"यह बात नहीं। यदि यह मैजिस्ट्रेट के सामने कह दे कि यह

मन्नू से विवाह नहीं करना चाहती और अपने इस कहने पर डटी रहे तो इसके भाई की इच्छा नहीं चल सकती।"

"सत्य?" लक्ष्मी ने प्रसन्नता से उबलते हुए कहा। परन्तु तुरन्त ही उसका मुख मलिन पड़ गया। उसने कुछ सोचकर कहा, "एक सदाशिव मास्टर जी हैं। बाबा ने उनको मेरे साथ विवाह कर लेने को कहा था। चाचा जी उनके पास गये थे, परन्तु उन्होंने कहा है कि यदि इस विवाह को रोकने का यत्न किया गया तो हिन्दू-मुसलमानों मे झगड़ा हो जावेगा। उनका कहना है कि झगड़े में खून की नदियाँ बह जाने की सम्भावना है।"

उस औरत ने हँसते हुए कहा, "शायद सदाशिव तुम से विवाह करना नहीं चाहता है। इसी से यह बहाना लगा रहा है। देखो लक्ष्मी! सदाशिव तुमसे विवाह करता है या नहीं, मै नहीं जानती। हाँ, हिन्दू मुसलमान के झगड़े से डरकर तुम्हें एक मुसलमान से विवाह करने की आवश्यकता नहीं। तुमने सीता और राम की कथा सुनी है क्या? रावण सीता से बलपूर्वक विवाह करना चाहता था। इसलिए राम ने लंका को फूँक डाला, रावण के परिवार के लोगों को मार डाला। लंका के युद्ध मे सहस्रों मारे गए पर सीता को छुड़ा लिया गया! स्त्रियों की मान-प्रतिष्ठा स्थिर रखने के लिए युद्ध हो जाते हैं। इससे तुम्हें डरना नहीं चाहिये। एक पद्मिनि के हरने के लिए एक सम्राट् ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया था। उसकी रक्षा के लिए चित्तौड़ के वीर सहस्रों की संख्या में युद्ध करते हुए मारे गए थे और जब वे लड़कर भी उसकी रक्षा नहीं कर सके तो पद्मिनि ने जलती चिता में बैठ अपने प्राणान्त कर दिये थे। अपनी इच्छा के विरुद्ध किसी दूसरे की बीवी बनना उसे स्वीकार नहीं हुआ।"

इन कथाओं को सुन उसके मन में छुपी हुई ग्लानि उभर उठी उसने आवेश में आ पूछा, "तो मैं क्या करूँ?"

"कल सरकारी अफसर यहाँ आवेंगे और तुमसे पूछेंगे। तुम उनको

अपना निश्चय बताना। तुम यदि यह बात दृढ़ता से कह सकोगी तो वे तुम्हारा विवाह मन्नू से रोक देंगे और फिर तुम्हारी रक्षा का प्रबन्ध कर देंगे।"

"अच्छी बात है। जब वे आवेंगे तो मैं कह दूँगी, परन्तु विवाह के दिन समीप आते जाते हैं।"

"तुम डरो नहीं। मैं उनके साथ आऊँगी, और हाँ, आज मेरे आने की बात और कल किसी सरकारी अफसर के आने की बात किसी से नहीं कहना।"

अगला दिन रविवार का था। मील बन्द था। राने शनिवार रात को पेट-भर शराब पीकर आया था और रात-भर लकड़ी के लट्ठे की भाँति सोया रहा। रविवार के दिन वह ग्यारह बजे दोपहर के समय उठा और चाय पी शौचादि में लग गया। अभी स्नान कर घर में आया ही था कि मैजिस्ट्रेट दो कान्सटेबलों को साथ ले वहाँ आ पहुँचा। उनके पहुँचने के साथ ही वह स्त्री जो पिछले दिन लक्ष्मी से बात कर गई थी, दो अन्य स्त्रियों और एक वकील को साथ लिए हुए वहाँ पहुँच गई।

राने उन सबको वहाँ अपने मकान के सामने खड़ा देख विस्मय करने लगा। लक्ष्मी चौके में बैठी रसोई कर रही थी। वह उस स्त्री को आया देख सब समझ गई और चौके से उठ भीतर के कमरे में चली गई।

एक कान्सटेबल ने मकान का नम्बर पढ़ राने से पूछा, "यहाँ कौन रहता है?"

"मैं रहता हूँ। क्या बात है?"

"तुम्हारा नाम?"

"राने।"

"लक्ष्मी तुम्हारी बहन है?"

"हाँ।"

"तो ठीक है। यहाँ बाहर बरामदे मे चारपाई और कुर्सियाँ लगा दो।"

राने एक कुर्सी अपने घर में से और दो कुर्सियाँ अपने पड़ोसियों के घर से ले आया। मैजिस्ट्रेट वकील और पहिले दिन वाली स्त्री कुर्सियो पर बैठ गई। दो अन्य स्त्रियाँ खाट पर बैठ गई और कान्सटेबल खड़े रहे।

मैजिस्ट्रेट ने राने से कहा, "लक्ष्मी को बुलाओ।"

लक्ष्मी किवाड़ के पीछे खड़ी सब कुछ सुन रही थी। अतएव मैजिस्ट्रेट के कहते ही बाहर आकर खड़ी हो गई।

मैजिस्ट्रेट ने अपनी कलम निकाली और इस मुकद्दमे की फाईल चमड़े के अपने 'पोर्टमेन्टू' से निकाली। इस फाईल में रखे प्रार्थना-पत्र को निकाल और उसका कुछ काल तक अध्ययन कर लिखने को तैयार हो पूछने लगा।

"तुम्हारा क्या नाम है?"

"लक्ष्मी।"

"बाप का क्या नाम है?"

"कान्हा।"

"राने तुम्हारा क्या लगता है?"

"सगा भाई है।"

"कान्हा जीता है?"

"मर गए हैं। एक मास से ऊपर हो गया है।"

"तुम्हारी आयु कितनी है?"

"अभी पन्द्रह की नहीं हुई।"

"तुम्हारा विवाह होनेवाला है?"

"भैया कहते हैं दो सप्ताह में होगा। तब तक मैं पन्द्रह वर्ष की हो जाऊँगी।"

"विवाह किससे होनेवाला है?"

"भैया के अफसर हैं। नाम मन्नू जमादार है।"

"वे कौन जाति हैं?"

"मुसलमान है। मै उससे विवाह करना नहीं चाहती।"

"क्यों?"

"वह मुसलमान है और शराब पीता है।"

इतना लिख मैजिस्ट्रेट ने लक्ष्मी के हस्ताक्षर करवा लिए। पश्चात् राने के बयान हुए।

"नाम?"

"राने।"

"क्या काम करते हो?"

"कपड़ा मील में बुनाई का काम करता हूँ।"

"मन्नू को जानते हो?"

"जानता हूँ।"

"उससे लक्ष्मी का विवाह करना चाहते हो?"

"हाँ।"

"वह शराब पीता है क्या?"

"पीता होगा। मै नहीं जानता।"

"तुम शराब पीते हो?"

"हाँ, कभी-कभी।"

"बस ठीक है। हस्ताक्षर कर दो।"

इसके पश्चात् दो पड़ोसियों के बयान हुए। उन्होंने बताया कि मन्नू शराब पीता है और जब लक्ष्मी उससे विवाह करने से मना करती है तो राने उसे पीटता है।

अन्त में मैजिस्ट्रेट ने यह आज्ञा लिख दी कि "लक्ष्मी को आर्य समाज कन्या पाठशाला में रखा जावे और वहाँ की मुख्याधिष्ठात्री से इसकी रसीद ले ली जावे। लक्ष्मी जब तक बालिग न हो जावे, उसका विवाह न किया जावे।

"राने की पाँच सौ की जमानत और पाँच सौ का मुचलका ले लिया जावे, जिससे वह कोई अनियमित बात न कर सके।"

यह सब कार्यवाही खुशीराम के प्रयत्न से हुई थी। शनिवार को आनेवाली स्त्री खुशीराम की धर्मपत्नी राधा थी। वह रविवार को भी आई थी और उसके साथ आनेवाली स्त्री आर्य समाज कन्या पाठशाला की मुख्याधिष्ठात्री थी। लक्ष्मी उसके साथ चली गई।

[६]

रविवार के दिन कर्मचारी यूनियन की कार्यकारिणी की बैठक थी। मन्नू जमादार इसका एक सदस्य था। कार्यवाही समाप्त हुई तो किसी ने जमादार के विवाह की बात चला दी।

"कहाँ ?" सबके मुख से निकल गया।

"यहीं। इनकी मील में राने नाम का हमारा सदस्य है। उसकी बहन लक्ष्मी से।"

"तो बहुत मुबारिक हो मन्नू भाई।" यूनियन के प्रधान ने मन्नू से हाथ मिलाते हुए कहा।

इस प्रकार हर्ष की बातें हो रही थीं कि राने आया और मन्नू को एक ओर ले जाकर उसने मकान में जो कुछ घर पर हुआ था बता दिया। मन्नू यह सुन पागल हो उठा और राने को साथ ले कार्यकारिणी के सदस्यों के समक्ष आ उसने सब बात बता दी। सब ने बात सुनी तो क्रोध और विस्मय में बैठे रह गये। यूनियन के प्रधान ने पूछा, "तुमने कहा नहीं कि तुम उसके भाई हो और उसके कुदरती 'गार्जियन' हो ?"

"सब कुछ कहा था। मेरे पड़ोसियों ने मेरे विरुद्ध साक्षी दी। लक्ष्मी ने भी यह कहा कि वह मन्नू से विवाह करना नहीं चाहती क्योंकि वह मुसलमान है।"

यूनियन के प्रधान ने दाँत पीसते हुए कहा, "यह हिन्दू इतनी

बदकार कौम है कि देश में से साम्प्रदायिकता की आग बुझने नहीं देती। हम तो यह समझते हैं कि यह सरमायादारों का षड़यन्त्र है। हमारी हर कोशिश यह होनी चाहिये कि लोगों का ध्यान मज़हब से हटाकर दुनियादारी की ओर लगावे।"

मन्नू ने कहा, "भाई जान। यह सरमायादारों की बात नहीं। यह तो काग्रेसी लोगो की शरारत मालूम होती है। सदाशिव एक काग्रेसी नेता है। लक्ष्मी उससे प्रेम करती है। उसने ही अफसरों से मिल-जुलकर यह सब कुछ किया मालूम होता है।"

प्रधान ने सभा विसर्जित कर दी और मन्नू को पीछे रोक लिया। जब दोनो अकेले रह गए तो उसने मन्नू से कहा, "देखो मन्नू भाई, हमारा उसूल (सिद्धान्त) यह है कि मकसद के हासिल करने (लक्ष्य प्राप्ति) के लिए हरएक तरीका इस्तेमाल हो सकता है। इसलिए मेरा यह कहना है कि तुम इसे हिन्दू-मुसलमान सवाल बनाकर मुसलमानो से मदद ले सकते हो। जब झगड़ा होगा तो हमारी यूनियन के मुसलमान सदस्य तुम्हारी मदद करेंगे।"

"पर यूनियन में फूट पड़ जावेगी?"

"इसकी चिन्ता न करो। हमारे लोग डिसिप्लिन में ऐसे बँधे हुए हैं कि वे हमारे कामों को नीति मान लेते हैं। हमारे सब लोग समझते हैं कि (End justifies the means) उपायो की श्रेष्ठता का अनुमान उद्देश्यों की श्रेष्ठता से लगता है।"

मन्नू को लक्ष्मी की सूरत बहुत भाती थी। इससे वह विवाह के लिए बहुत लालायित हो रहा था। अपनी संस्था के प्रधान से मार्ग-प्रदर्शन किए जाने पर, वह मुसलिम लीग के कार्यालय में जा पहुँचा। वहाँ उसकी 'नेशनल मुसलिम गार्ड' के कप्तान से मुलाकात हुई। उसने इसकी कथा सुनी और सोचकर कहा। "भाई, तुम पता करो कि लड़की कहाँ रखी है। हमें कायदे आज़म की खुफिया हिदायत (आज्ञा) मिली है कि हम बम्बई में 'डायरेक्ट ऐक्शन' की तैयारी करें।

उसमें हम तुम्हें कुछ गार्ड दे देंगे। तुम उनको साथ लेकर और अपनी यूनियन के मुसलमान सदस्यों को साथ लेकर उस लड़कियो की पाठशाला पर धावा बोल देना। फिर एक लड़की क्या, सब तुम्हारे अधिकार में होगी।"

मन्नू आशा बाँध वहाँ से लौटा और अपनी मील मे मुसलमान कर्मचारियों को संगठित करने लगा। राने तथा अन्य हिन्दू कर्मचारियो को बताया जाता था कि मजदूरो का राज्य स्थापित करने के लिए तैयारी की जा रही है। मील के समय के पश्चात्, लाठी चलाना, कुश्ती करना, गदका इत्यादि खेल होते थे। जब प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त हो जाती तो दरगाह शाह मुराद में छुरा चलाना, बन्दूक चलानी, आर लड़ाई के दूसरे ढङ्ग सीखने के लिए वहाँ जाना होता था। बम्बई की प्रत्येक मसजिद मे यह तैयारी हो रही थी। कर्मचारी यूनियन के सदस्यो को यह आज्ञा हो गई थी कि वे नित्य मसजिदो मे जाया करे। कभी कोई इमानदार सदस्य पूछ लेता कि इससे तो साम्प्रदायिकता बढ़ेगी तो प्रधान यूनियन आँख झपककर कह देता, "चुपचाप करते जावो।"

मन्नू जमादार सप्ताह में एक-दो बार मुसलिम लीग के कार्यालय में जाया करता था और अपने कार्य की प्रगति वर्णन कर आया करता था। वहाँ नेशनल मुसलिम गार्ड के कप्तान से उसे प्रोत्साहन मिला करता था।

एक दिन कप्तान ने पूछा, "जमादार कितने आदमी तैयार हैं?"

"तीन सौ से ऊपर हैं?"

"उनमें कितने छुरा चलाना जानते हैं?"

"पचास से ऊपर हैं।"

यह सब कप्तान ने अपनी किताब में लिख लिया।

मन्नू ने पूछा, "क्यो साहब हमारी कब जरूरत होगी?"

"अभी तैयारी काफी नहीं। कोशिश करते जावो।"

[७]

'मौन्ट प्लैजेन्ट' मालाबार हिल्ज, बँगला नम्बर १० पर एक दिन भारी चहल-पहल थी। मिस्टर मुहम्मद अली जिन्ना, प्रेजिडेन्ट मुसलिम लीग, दिल्ली से लौट आए थे और उनके अपने घर में मुसलिम लीग की कार्यकारिणी की बैठक हो रही थी। समाचार-पत्रों के संवाद-दाताओं की भीड़ बाहर लान में लगी थी। कोठी के बाहर मुसलिम नेशनल गार्ड के वालेन्टीयर खड़े पहरा दे रहे थे।

भीतर एक कमरे में एक दर्जन से अधिक लोग बैठे कायदे-आजम की प्रतीक्षा कर रहे थे। कायदे-आजम, मिस्टर जिन्ना, एक दूसरे कमरे में नेशनल मुसलिम गार्ड के भिन्न-भिन्न स्थानो के कप्तानो से मिल रहे थे। कप्तान अपने-अपने स्थान की तैयारी का वृत्तान्त सुना रहे थे। कितने वालेन्टियर भर्ती हुए थे और कितने क्या-क्या जानते हैं? आग लगाने के कितने बम्ब बने, इत्यादि सूचनाएँ दी जा रही थीं।

अंत मे कायदे-आजम ने मुसलिम गार्डों के कप्तानो को कार्यक्रम समझाया। "हम लोगो ने मुसलमानों के लिए हिन्दुस्तान का एक हिस्सा पाने की माँग की हुई है। अब इँगलैंड मे मजदूर सरकार बन चुकी है। यह सरकार टोरी सरकार से ज्यादा इमान्दार है। सरकार हमारी माँग के पीछे ताकत देखना चाहती है। कैबिनेट मिशन से वार्तालाप करते हुए, कई बार मुझसे पूछा गया कि कांग्रेस के पीछे तो पूर्ण देश है। सन् १९४२ के उपद्रवों मे भी बीस हजार से ऊपर लोग कैद हो गये थे जिन्होने मुआफी नहीं माँगी थी। मुसलिम लीग के पास ऐसी कोई ताकत नहीं है और यदि मुल्क के एक हिस्से का राज्य मुसलिम लीग को दे दिया गया तो वे कैसे उसमें हकूमत कायम करने में कामयाब हो सकेंगे। मुसीबत यह है कि जहाँ पाकिस्तान बनना है वहाँ ही हमारी ताकत कम है। सूबा सरहद्दी, पंजाब, बंगाल और मालाबार इन सब जगहों पर न तो काबिले जिकर कोई लीडर

है, न ही कोई लड़ने-मरनेवाला जांबाज। हैदराबाद हमारा गढ़ जरूर है, परन्तु वहाँ जनता हिन्दू है।

"अब यह काम मैंने तुम लोगो को दिया है कि एक तो अपने में इतना डिसिप्लिन पैदा करो कि बिना हुक्म तुमने कुछ नहीं करना, चाहे दूसरी ओर से तुम पर गोली चले। दूसरे जब आज्ञा मिले तो हिन्दुओ से दोस्ती, हमसायापन अथवा रहम नहीं दिखाना। आपने तो अपना फर्ज बजा लाना है।

"मखसद एक है। कम से कम उन इलाको को जहाँ पाकिस्तान बनना है हिन्दुओ से खाली कराना है। या तो उनको डरा धमका-कर वहाँ से भगा देना है, या उन सबको मुसलमान बना लेना है। पाकिस्तान के लिए दो शहर बहुत जरूरी हैं। एक कलकत्ता और दूसरा लाहौर। दोनो को हिन्दुओ से खाली करना है। वहाँ से इनको भगा दो, मुसलमान बना लो नहीं तो मौत के घाट उतार दो।

"अब आप लोग जाओ और हुक्म का इन्तजार करो।"

इसके पश्चात् कायदे-आजम मुसलिम लीग की वर्किंग कमेटी की मीटिंग में जा पहुँचे। वहाँ 'डायरेक्ट ऐक्शन' को आरम्भ करने के स्थान, ढंग और समय पर विचार हो रहा था। इस कार्य को आरम्भ करने के लिए तीन स्थान विचाराधीन थे। एक बम्बई, दूसरा लाहौर और तीसरा कलकत्ता।

जब कायदे-आजम को बातचीत के विषय का पता चला तो उसने कहा, "मैंने अभी नेशनल गार्ड के कप्तानों से बात-चीत की है। उन लोगो से जो सूचना मिली है उस पर मेरा यह विचार बना है। बम्बई में नेशनल गार्ड की सख्या बहुत कम है। यहाँ मरहट्ठे और विशेष रूप में भट्टी लोग लड़ाके हैं और भारी संख्या में मौजूद हैं। यहाँ सरकार काग्रेसी है मगर महात्मा गांधी की अहिंसात्मक नीति के माननेवालो की तादाद बहुत कम है। यहाँ हिन्दू-महासभा का जोर भी काफी है। इन तमाम वजूहात से डायरेक्ट ऐक्शन शुरू करने

के लिए बम्बई अच्छी जगह नहीं है। मैं शुरू-शुरू में नाकामयाबी देखना नहीं चाहता।

"लाहौर में यूनियनिस्ट पार्टी का सिक्खों और कांग्रेसियों से समझौता हो जाने से, सरकार हमारे हाथ में नहीं आ सकी। वहाँ आर्यसमाज का जोर है और हिन्दू तुलेबा बहुत ज्यादा तादाद में रहते हैं। इसलिये मैं इस काम को शुरू करने के लिये लाहौर को भी ठीक जगह नहीं समझता।

"इस लड़ाई का शुरू ऐसी जगह से होना चाहिये जहाँ हमें पूरी कामयाबी हासिल हो सके। जब कोई काम अच्छे तरीके से शुरू हो जावे तो उसे आधे से ज्यादा कामयाब हो गया समझ लेना चाहिये।

"इसलिए मैंने फैसला कर लिया है कि यह काम कलकत्ता में शुरू किया जावे। वहाँ हिन्दुओं की आबादी ज्यादा तो है पर यह आबादी उन लोगों की है जो या तो धोतीपोश बाबू हैं या बलदार पगड़ी पहनने वाले मारवाड़ी। न वहाँ आर्य समाज का प्रचार न हिन्दू-महा-सभा का। कलकत्ता क्लर्कों का नगर है। वहाँ मुसलमानी सरकार है। वहाँ के प्रीमियर हमारी वर्किंग कमेटी के मेम्बर हैं और वहाँ के गवर्नर हिन्दुओं के विरोधी हैं। कलकत्ता पुलिस में ज्यादा मुसलमान हैं।

"मैं चाहता हूँ कि पहिले दिन ही इतना खौफ पैदा कर दिया जावे कि बङ्गाली और मारवाड़ी एक दूसरे पर गिरते-पड़ते ऐसे भागें कि कलकत्ता से जानेवाली सड़कों पर स्थान न रहे। इस डायरेक्ट ऐक्शन का यह असर होना चाहिये कि कलकत्ता की हिन्दुओं की साठ प्रति-शत आबादी तीन दिन मे कम होकर चालीस प्रतिशत रह जावे।"

[८]

बाहर घास के मैदान में समाचार-पत्रों के संवाददाता बैठे-बैठे थक गये तो छोटी-छोटी टोलियों में बैठ या तो ताश खेलने लगे या हँसी-ठट्ठे की बाते करने लगे। इनमें एक मिस कर्टिस 'न्यूयार्क टाईम्ज'

की संवाददात्री थी। वह तीस-बत्तीस वर्ष की अमेरिकन युवती, दुबली-पतली परन्तु चंचल और चमकदार आँखोवाली थी। वह संवाद-दाताओं की टोलियों में इधर-उधर घूम रही थी। हिन्दुस्तानी पत्रो के प्रतिनिधि उसका, स्त्री होने के नाते, आदर करते थे और उसे देख हँसी की बातें बन्द कर लेते थे। इससे मिस कर्टिस यह समझती थी कि वे लोग उससे कोई समाचार छुपा कर रख रहे हैं। यह बात उसकी बेचैनी बढ़ा रही थी।

उत्तरी भारत के रहनेवाले कुछ संवाददाता एक पृथक् मंडली बनाए घास पर बैठे थे। पंजाबियों के विशेष हास्यप्रद गुणों का उल्लेख हो रहा था। सीधे, सरल, हँसोड़ मुख और मोटी बुद्धि के पंजाबियों की बाते हो रही थीं। एक सुना रहा था, "पंजाब के एक मंत्री एक सायं, सर खिजर के यहाँ खाना खा रहे थे। खाना बहुत स्वादिष्ट था और कई कोर्सिज थे। खाने के साथ बढ़िया स्काच-ह्विस्की का भी प्रबन्ध था।

"इस प्रकार खाते-खाते बहुत देर हो गई और मंत्री-महोदय कुछ अधिक पी जाने के कारण अपनी कोठी को जाना कठिन अनुभव कर रहे थे। सर खिजर ने कह दिया, कि श्रीमान, रात को उनकी कोठी पर ही रह जावे तो ठीक है।

"'धन्यवाद।'

"मंत्री महोदय के लिए एक कमरे में बिस्तर लगवा दिया गया और वे सोने की पोशाक पहन बिस्तर पर लेट गए। एकाएक वे उठे और उन्हीं कपड़ों में अपनी मोटर में, जो कोठी के पिछवारे में खड़ी थी, जाकर उसे स्टार्ट करने लगे। सर खिजर कोठी के बरामदे में खड़े एक और मेहमान को बिदा कर रहे थे। उनकी दृष्टि उन मोटर स्टार्ट करते हुए मंत्री महोदय की ओर चली गई। उन्होंने समीप जा पूछा, 'ऑनरेबल मंत्री किधर जा रहे हैं?'

"'मैं समझता हूँ कि 'मिसेज' को बता आऊँ कि मैं रात यहाँ से आ नहीं सकता ।'"

सब खिलखिलाकर हँस पड़े । इस हँसी की ध्वनि सुन मिस कर्टिस इस मंडली की ओर आ पूछने लगी, "वट प्लेजेन्ट न्यूज़ हैव यू गाट?" कौन-सा आनन्दप्रद समाचार आपको मिला है)

"आईये ! आईये !! बहुत समाचार हैं", ट्रिब्यून दैनिक के संवाददाता ने उससे कहा । अन्य सब लोग चुप कर गये । वह उसके पास आकर बैठ गई । ट्रिब्यून दैनिक के संवाददाता ने उसका अपने साथियो से परिचय कराया, "यह मिस कर्टिस आफ 'न्यूयार्क टाईमज' हैं । मुझे आपके दर्शन का सौभाग्य १६४४ में गांधी-जिन्ना वार्तालाप के समय हुआ था ।"

"हाँ, मुझे याद है," मिस कर्टिस ने कहा, "आपने मुझसे शर्त लगाई थी कि मिस्टर जिन्ना संवाददाताओ को पानी भी नहीं पूछेगा । मैंने कहा था कि अँगरेजी पढ़ा-लिखा आदमी इतना तो सभ्य होगा ही कि घर आए हुए लोगों को सायं समय चाय तो पूछ ले । वह शर्त आप जीते थे और मुझे आपको उस रात ताज में डिनर खिलाना पड़ा था ।"

"आपकी स्मरण-शक्ति बहुत अच्छी है । मिस कर्टिस ! आज का 'स्कूप' यह है कि वर्किंग कमेटी की बैठक के पश्चात् मिस्टर जिन्ना कोठी के बाहर भी नहीं आयेंगे और चपरासी के हाथ संवाददाताओ को कहला भेजेंगे कि देने को कोई समाचार नहीं है । बताओ शर्त लगती है ?"

मिस कर्टिस ने कहा, "मै समझती हूँ कि आप 'स्कूप' लगाने में बहुत चतुर हैं । इस कारण शर्त नहीं लगाती । परन्तु इतना बता देना चाहती हूँ कि मुझसे विशेष भेंट होगी ।"

एक भद्दी काय वाले दिल्ली के एक पत्र के प्रतिनिधि ने कहा, "यह तो आपकी सुन्दर चमकदार आँखों के देखने के लिए हो सकता है । इसमें, यदि ये शर्त लगावेंगे तो निश्चय हार जावेंगे ।"

"आपकी प्रशंसा के लिए धन्यवाद ।" मिस कर्टिस ने कहा ।

मिस्टर सिंह ने कहा, "यदि मिस कर्टिस शर्त लगाएँ तो मैं हारने के लिए भी तैयार हूँ । इनके साथ 'डिनर' खाने के आनन्द के लिए हार भी पसन्द है ।"

"शर्त मंजूर है ।" मिस कर्टिस ने कहा ।

इस समय सांयकाल के पाँच बज रहे थे । भीतर से चपरासी आया और समीप आकर पूछने लगा, "मिस कर्टिस कौन हैं ?"

मिस कर्टिस ने पूछा, "क्या है ?"

"आपको साहब भीतर बुलाते हैं ।"

मिस्टर सिंह के एक साथी ने कहा, "आप हार गये, खाना खिलाना होगा ?"

"उनसे खाना-खाने का आनन्द प्राप्त करने योग्य है । यह हार नहीं ।"

इस समय मुसलिम लीग के मंत्री महोदय बाहर आए और बोले, "कायदे-आजम साहब का कहना है कि उनके पास आपको देने लायक कोई समाचार नहीं । आप लोग जा सकते हैं ।"

सब संवाददाता मिस्टर सिंह का मुख देखने लगे । वे हैरान थे कि उसे यह सब कैसे सूझी थी । मिस्टर सिंह ने सबसे आगे हो मंत्री से पूछा, "पर साहब इतना तो आप भी बता सकते हैं कि 'वर्किंग कमेटी' की बैठक समाप्त हो गई है या नहीं ? क्या ये कल भी जारी रहेगी ?"

मंत्री ने बता दिया, "खतम हो गई ।"

"क्या यह सत्य नहीं कि वर्किंग कमेटी के मेम्बरों को कायदे-आजम ने डाँटा है ?"

मंत्री हँस पड़ा और बोला, "मिस्टर सिंह ! तुम इतने पुराने काम करनेवाले होते हुए यह भी नहीं जानते कि कोई भी डाँट खानेवाला इसे स्वीकार नहीं करेगा ।"

सब हँस पड़े !

मिस्टर सिंह ने शिकायत के रूप में कह दिया, "जनाब, मुसलिम लीग के प्रधान ने एक औरत को विशेष मुलाकात अनायत कर मुझे शर्त में हरा दिया है। मैने शर्त लगाई थी की अन्य संवाददाताओ से उसे तरजीह नहीं दी जावेगी।"

एक और ने पूछ लिया, "डायरेक्ट ऐकशन का फैसला हो गया है क्या?"

मंत्री ने मुस्कराते हुए कहा, "जो कुछ फैसला हुआ है या होगा सब आप लोगों के सामने अमली सूरत में आ जावेगा। खुदा हाफिज।"

इतना कह मंत्री कोठी के भीतर चला गया। संवाददाता एक दूसरे का मुख देखते रह गए। किसी ने मिस्टर सिंह से कहा, 'आओ चलें।"

"भाई! मुझे मिस कर्टिस की प्रतीक्षा करनी है। उसके साथ 'डिनर' खाना है।"

मिस्टर सिंह अकेला कोठी के बाहर खड़ा रहा। मिस कर्टिस एक घंटा-भर कायदे-आजम के साथ बाते करती रही। जब वह बाहर निकली तो अँधेरा हो चुका था। अन्य सब सवाददाता जा चुके थे। उसने मिस्टर सिंह को खड़ा देख पूछा। "आप अभी हैं?"

"हाँ आपको 'डिनर' पर ले जाना है। आज शर्त मैं हारा हूँ।"

मिस कर्टिस ने हँसते हुए कहा, "मुझे मालूम था कि मिस्टर जिन्ना अमेरिकन पत्रों में कुछ छपवाना चाहेंगे और इसलिए मुझसे भेट करेंगे। मेरा अनुमान ठीक निकला है।"

दोनो टैक्सी-स्टैंड की ओर चल पड़े। साथ चलते-चलते मिस्टर सिंह ने कहा, "मिस कर्टिस! मैं आपको एक और 'स्कूप' देता हूँ, मिस्टर जिन्ना ने अमेरिकनज़ को यह सूचना दी है कि अँगरेजी मजदूर सरकार और हिन्दू कागरेसी मिलकर मुसलमानों के विरुद्ध षडयंत्र कर रहे हैं। मुसलिम लीग ने इस षडयंत्र का विरोध करने का निश्चय

कर लिया है। वे इस अपवित्र मेल को तोड़ने का भरसक यत्न करेंगे। उसे अमेरिका को यह बताना है कि हिन्दूस्तान के मुसलमानों के साथ दुनिया भर के मुसलमानों की हमदर्दी है। यदि उनसे अच्छा व्यवहार नहीं हुआ तो मुसलिम देशों का समूह अमेरिका तथा इँगलैंड का विरोधी दल बन जावगा।"

मिस कर्टिस खिलखिलाकर हँस पड़ी और चुप रही। मिस्टर सिंह ने कहना जारी रखा, "रात को 'मानचैस्टर-गार्जियन' के संवाददाता से वह मिल रहा है।"

मिस कर्टिस ने अचम्भा प्रगट करते हुए पूछा, "आपको किसने कहा है यह?"

मिस्टर सिंह हँस पड़ा और अपनी बात कहता गया, "ब्रिटेन के समाचार-पत्रो से वह यह कहना चाहता है कि हिन्दुओं की संख्या हिन्दुस्तान में अधिक है, जिससे वह धींगामस्ती कर मुसलमानो को गुलाम बनाना चाहते हैं। जब एक बार देश का विभाजन मान लिया गया तो फिर उनको इकट्ठे बाँधकर रखना हिन्दुओं की जबरदस्ती है।"

इस समय वे टैक्सी-स्टैंड पर पहुँच गये। वहाँ से वे टैक्सी में बैठ 'ताज' की ओर चल पड़े। मार्ग में मिस कर्टिस ने पूछा, "मिस्टर सिंह! तुम हिन्दू हो?"

"मै संवाददाता हूँ।"

मिस कर्टिस ने मुस्कराकर कहा, "मेरे पूछने का अभिप्राय यह है कि क्या तुम पाकिस्तान बनना पसन्द करते हो?"

"नहीं।"

"क्यों?"

"यह प्रश्न एब्राहम लिन्कन से पूछा जाना चाहिये था।"

"हमें 'युनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका' को एक रखने के लिए भयंकर युद्ध करना पड़ा था, परन्तु मै देखती हूँ कि यहाँ के नेता युद्ध

लड़ने से घबराते हैं। मेरा मतलब यह है कि कांग्रेसी नेता डर-पोक हैं।"

"डरपोक नहीं कहा जा सकता। वे अपने निश्चय पर दृढ़ हैं। केवल युद्ध करने को ठीक तरीका नहीं समझते।"

"तो क्या उन्होंने युद्ध से कोई अच्छा तरीका मालूम कर लिया है?"

"हाँ! महात्मा गांधी का अहिंसात्मक सत्याग्रह। इस ढंग से हमने ब्रिटिश जैसी शक्तिशाली जाति को हिला दिया है।"

मिस कर्टिस खिलखिलाकर हँस पड़ीं। "देखो मिस्टर सिंह," उसने कहा, "महात्मा गांधी का तरीका न केवल असफल रहा है प्रत्युत हानिकर भी सिद्ध हुआ है। उन्होंने दक्षिणी अफ्रीका में सत्या-ग्रह किया था। उसका परिणाम यह हुआ है कि वहाँ के अफसर हिन्दुस्तानियों के अधिक विरोधी हो गए हैं और हिन्दुस्तानी, अफ्रीका के असली रहनेवालों से दूर हो गए हैं। मैं यह भविष्यवाणी करती हूँ कि दक्षिणी अफ्रीका की समस्या बिना युद्ध के नहीं सुलझेगी। जो कौम उसके लिए तैयारी नहीं करती वह पिस जाएगी और मर जाएगी।

"फिर देखो महात्मा जी ने खलाफत के लिए सत्याग्रह किया था। उसका परिणाम क्या हुआ है। खलाफत का नामोनिशान नहीं रहा। यदि यह माने कि महात्मा जी ने खलाफत का प्रश्न मुसलमानों को खुश करने के लिए किया था, तो वह भी सफल नहीं हुआ। वे खुश नहीं हुए, प्रत्युत यह बात संशयरहित है कि पिछले तीस वर्षों में हिन्दु-स्तान के मुसलमान हिन्दुओं से दूर हुए हैं।

"यह बात भी गलत है कि 'क्विट इंडिया' आन्दोलन के प्रभाव से हिन्दुस्तान को कुछ मिला है या मिलनेवाला है। इस आन्दोलन का यदि कुछ प्रभाव अंग्रेजों पर या हम लोगों पर हुआ है, तो हमारा हिन्दुओं पर भरोसा कम करनेवाला हुआ है। अँग्रेज अब बिना

पाकिस्तान बनाए और हिन्दुस्तान को, इस प्रकार बिना कमजोर किए यहाँ स्वराज्य नहीं देंगे।

"अँग्रेज कौम में विकास हो रहा है। उनकी राजनीतिक संस्थाओ में भी विकास हो रहा है। इस विकास को दोनो महायुद्धों ने सहायता दी है। फिर बाबू सुभाष चन्द्र बोस ने भी अँग्रेजी कौम के दिमाग में विकास की गति को तीव्र किया है।

"सब से बड़ा कारण अँग्रेजो के मानसिक विकास के तेज होने का, रूस में सोविएट सरकार का बनना और उसकी उन्नति करना, है। प्रजातंत्रवादियों को भावी युद्ध में हिन्दुस्तानी फौजी शक्ति की आवश्यकता हिन्दुस्तान को स्वराज्य दिलाने में कारण बन गई है।"

"पर हम लोग समझते हैं," मिस्टर सिंह ने कहा, "कि महात्मा जी के आन्दोलन ने संसार पर यह सिद्ध कर दिया है कि हम इमानदार लोग हैं। हम किसी से लड़ना नहीं चाहते और किसी को हम से डरना नहीं है। इन्हीं कारणो से अँग्रेज हमको स्वराज्य देने पर विवश हो गए हैं।"

"यदि मैं एक बात कहूँ तो नाराज़ तो न होगे?"

"अजी नहीं! आप की बातों में मज़ा आता है।"

"तब सुनो। महात्मा जी को जब क्रिप्स योजना दी जा चुकी थी तब भी उन्होंने सैबोटेज करनेवाला आन्दोलन चलाने में संकोच नहीं किया। इससे हम महात्मा जी को किंचित् भर भी विश्वास के योग्य नहीं मानते। हम मिस्टर जिन्ना को अधिक विश्वासयोग्य समझते हैं। अब भी यदि कैबिनेट मिशन के साथ कोई समझौता हुआ है तो वह मौलाना आजाद और खान अब्दुल गफार खाँ के प्रयत्नों से हुआ है। महात्मा गांधी तो मानते ही नहीं थे।"

"मेरा विचार है कि आप लोग हमको समझ ही नहीं सकते।" मिस्टर सिंह ने निरुत्तर हो कहा।

"हाँ। आप, अर्थात् मिस्टर सिंह को समझना कठिन है। परन्तु

महात्मा गांधी को हम भली भाँति समझते हैं। वे न तो इतिहास जानते हैं न ही मनोविज्ञान को। उनका राजनीति का ज्ञान सर्वथा प्रारम्भिक है।"

"आप ऐसा कहकर उन सब लोगो को मूर्ख बना रही हैं जो महात्मा जी को भगवान का अवतार समझते हैं।"

"मैने उनके भगवान का अवतार होने में संदेह नहीं किया, परन्तु भगवान कभी-कभी दुष्टो को दंड देने के लिए भी तो अवतार लेते हैं। महात्मा गाधी हिन्दुस्तानियों को, विशेष रूप से हिन्दुओं को, उनके पापों का फल देने में लगे हुए हैं। वे इन लोगो को दुनियाँ के पर्दे से मिटा देना चाहते हैं।"

इस समय वे होटल 'ताज' के सामने आ पहुँचे थे। मिस्टर सिंह ने कहा, "लो हम आ गए। आओ। इस धिक-राजनीति को छोड़ आपके प्रसन्नता से रौशन मुख को देखने का आनन्द पाऊँ।"

मिस कर्टिस ने मुस्कराते हुए और तिरछी दृष्टि से देखते हुए कहा, "मै आपको इतना 'गैलेन्ट' नहीं समझती थी।"

दोनों होटल में घुस गए।

[६]

सदाशिव को जब मालूम हुआ कि लक्ष्मी को राने से पृथक् कर आर्य कन्या पाठशाला के बोर्डिंग हौस में रख दिया गया है तो उसके मन में बहुत प्रसन्नता हुई। इसके पश्चात् जब उसने देखा कि किसी प्रकार का हिन्दू-मुसलिम फसाद नहीं हुआ तो वह अपनी आत्मा की दुर्बलता पर लज्जित हुआ।

उसके मन में लक्ष्मी के लिए अनुराग था, परन्तु झगड़े से डर-कर ही वह अपने मन के भावो को दबाए हुए था। जब उसने देखा कि लक्ष्मी के आर्य कन्या पाठशाला में ले जाए जाने पर भी किसी प्रकार का झगड़ा नहीं हुआ, तो उसके मन में पुनः उससे सम्बन्ध

उत्पन्न करने की इच्छा होने लगी। इस इच्छा की पूर्ति के लिए, एक दिन वह कन्या पाठशाला की मुख्याधिष्ठात्री के पास जा पहुँचा। वह उसे नहीं जानती थी। इस कारण उसने सदाशिव को राधा देवी की ओर भेज दिया। राधा देवी उस कन्या पाठशाला की मैनेजर थीं।

सदाशिव जब राधा देवी से मिलने गया तो वह खुशीराम तथा अपने बच्चों के साथ सायंकाल का अल्पाहार कर रही थीं। नौकर ने सदाशिव का कार्ड राधा देवी के सामने रखा तो उसकी हँसी निकल गई। खुशीराम ने अचम्भे में उनकी ओर देखा तो उसने बताया कि, "श्रीमान् सदाशिव जी आये हैं।"

"क्या काम हो सकता है उसका तुम्हारे साथ?"

"लक्ष्मी के सम्बन्ध की बात ही होगी। उसका मुझसे और क्या प्रयोजन हो सकता है?"

"अब लक्ष्मी से उसका क्या सम्बन्ध है? विवाह तो उससे हो नहीं सकता।"

"मैं समझती हूँ कि बुला लूँ।"

उसने नौकर को कहा, "उनको ले आओ।"

सदाशिव आया तो उसको चाय का निमंत्रण दे दिया गया। एक-आध बार न करने पर उसने चाय स्वीकार कर ली। इस समय उसने खुशीराम को पहिचान लिया। खुशीराम ने सदाशिव को नमस्ते कह-कर पूछा, "आपने मुझ को पहिचाना है या नहीं?"

"आप मुझसे मन्दिर में मिलने आये थे न?"

"आपकी स्मरणशक्ति बहुत अच्छी है। उस समय आपने मेरा कहना नहीं माना था।"

"मै समझता हूँ कि उस समय मेरे न करने से कुछ हानि नहीं हुई। मैं कांग्रेस असेम्बली पार्टी का सदस्य होने से, यदि इसमें हस्ताक्षेप करता तो बहुत हल्ला-गुल्ला हो जाता। आपका काम भी दुस्तर हो जाता।"

"हानि तो हुई है और आपको। आप उस लड़की की नज़रों मे गिर गए हैं। वह आपसे घृणा करने लगी है। हमारी दृष्टि मे तो कांग्रेस और भी पतित हो गई है।"

"इसमे कांग्रेस का क्या सम्बन्ध है? जो कुछ मैने किया था और जो कुछ मै अब कर रहा हूॅ वह सब अपने आप कर रहा हूॅ।"

राधा इस पर मुस्कराई और कहने लगी, "अभी तो आप कह रहे थे कि कांग्रेस असेम्बली पार्टी का सदस्य होने से आपका इस बात में हस्ताक्षेप न करना ठीक रहा।"

इससे सदाशिव कुछ लज्जित हुआ परन्तु शीघ्र ही अपने को सम्हाल कहने लगा, "वह बात दूसरी है। उसका कांग्रेस के सिद्धान्तों से कोई सम्बन्ध नहीं। वह तो मैंने एक नीति की बात कही है।"

"यही तो हम सोच रहे हैं कि क्या कांग्रेस की नीति और उसके नेताओ की नीति में कुछ अंतर है, या नहीं?" खुशीराम ने कहा। "आप उस लड़की को, जिसको अपनी स्त्री बनाना चाहते थे, इस लिए छोड़ बैठे थे कि ऐसा करने से हिन्दू-मुसलिम फसाद होने की सम्भावना थी। यह व्यवहार आप जैसे कांग्रेसी नेता से कांग्रेस के मन्तव्यों के कारण कहें अथवा आपकी मानसिक दुर्बलता के, आप ही बता सकते हैं।"

"मैं अब सोचता हूँ कि वह व्यवहार मेरे मन की दुर्बलता के कारण ही कहना चाहिये।"

"तो ठीक है। इस पर तो मेरा यह विश्वास ठीक ही निकला है कि लक्ष्मी पर हमने दुगनी भलाई की है। एक उसको मुसलमान बन जाने से बचाया है और दूसरे उसको एक दुर्बलात्मा की बीवी बनने से।"

"पर मैं तो उसको मिलने की स्वीकृति माँगने आया हूॅ।"

"किस लिए, क्या काम है?" राधा देवी ने पूछा।

"आप जानती हैं कि मेरा उससे सम्बन्ध रहा है।"

"मै समझती हूॅ कि वह सम्बन्ध टूट चुका है। आपने अपने

विचार से तो उसको एक ऐसे आदमी के हाथ सौंप दिया था जिसके पास जाने से वह घृणा करती थी। अब आपका उससे मिलने का क्या अधिकार हो सकता है?"

"मैं अपने उस समय के व्यवहार से लज्जित हूँ। उसके लिए आप से और उससे क्षमा चाहता हूँ। इसी लिए मै उससे मिलना चाहता हूँ। मैं यत्न करना चाहता हूँ कि उससे अपना पुराना सम्पर्क उत्पन्न करूँ।" सदाशिव ने आँखे नीचे किए हुए कहा।

"तो यदि, अब भी उससे विवाह करने पर हिन्दू-मुसलिम झगड़ा होने की सम्भावना हो गई तो क्या करियेगा?"

"यह मैं इस समय क्या बता सकता हूँ? इस समय तो किसी झगड़े की सम्भावना प्रतीत नहीं होती।"

इस पर खुशीराम ने बात टोककर कहा, "देखिये पंडित सदाशिव। आपको भली भाँति समझ लेना चाहिए कि इस लड़की पर एक मुसलमान की नज़र है। यदि तो आप उससे इस लड़की की रक्षा कर सकते हैं, या कम से कम उसकी रक्षा के लिए जी-जान की बाजी लगा सकते हैं तब तो उसके पीछे-पीछे भागने की जरूरत है। नहीं तो विवाह का कहीं और प्रबन्ध कर लीजिये।"

"जब मेरा उससे विवाह हो जावेगा तब मैं इस विषय पर सोच लूँगा।"

"क्या सोच लीजियेगा? आप तो उस दिन कहते थे कि हिन्दू-मुसलिम फसाद हो जाने पर स्वराज्य मिलने से रह जावेगा। मेरा प्रश्न तो यह है कि क्या अब भी आप अपनी बीवी को प्रत्याशित स्वराज्य पर न्योछावर कर देंगे?"

"स्वराज्य बीवी से कहीं अधिक प्रिय है।"

"मैं समझता हूँ कि आपका विवाह इस लड़की से होना उचित नहीं।"

"इससे ही क्यों?"

"तुम उसके अधिकारी नहीं हो।"

"अधिकार पाने के लिए क्या करना चाहिए।"

"उसके प्रति अपना कर्तव्य-पालन करना होगा ?"

"कर्तव्य कर्तव्य में विरोध हो जावे तो किस का पालन करना होगा ?"

"कर्तव्य कर्तव्य मे विरोध नहीं होता। सत्य एक है। मिथ्या और सत्य का विरोध तो होता है, सत्य सत्य में विरोध नहीं हो सकता। बुद्धि में भ्रम हो जाने से मिथ्या वस्तु सत्य दिखाई देने लगती है। इसी से विरोधाभास होता है।"

"मुझे उसके पाने का यत्न तो करने दीजिये।"

"वह आप जैसे विचार के आदमी से विवाह पसन्द नहीं करेगी।"

"आप अपने-आप ही उसकी बात न कह दीजिये। उसे स्वयं कहने दीजिये। मै समझता हूँ कि मुझको उससे मिलने की स्वीकृति दे दीजिये। मै विद्यालय की मुख्याधिष्ठात्री जी से मिलने गया था। उसने लक्ष्मी से मिलने की स्वीकृति के लिए आपके पास भेजा है।"

"यह तो ठीक है कि उससे मिलने के लिए मैं स्वीकृति दे सकती हूँ, परन्तु मै सोचती हूँ कि यह क्यो दूँ।"

"देखिये राधा देवी जी, मैं चाहता हूँ कि मुझको उससे मेल-जोल उत्पन्न करने का अवसर दीजिये। अभी उसके बालिग़ होने मे तीन वर्ष हैं, तब तक स्वराज्य मिलने का फैसला भी हो जावेगा। यदि उसकी इच्छा हुई तो मै उससे मिलता रहा करूँगा और समय आने पर विवाह हो सकेगा।"

"यद्यपि मुझको आपका कहना ठीक प्रतीत नहीं होता, इस पर भी मैं आपको जवाब देना लक्ष्मी का ही काम समझ, आपको उससे मिलने की चिट्ठी दे देती हूँ। हाँ अगर वह पसन्द नहीं करेगी तो आपको मिलने की स्वीकृति वापस ले ली जावेगी।"

"मुझको मंजूर है।"

[१०]

जब मन्नू को यह पता लग गया कि बम्बई में डायरैक्ट ऐक्शन नहीं चलेगा, तो वह बहुत निराश हुआ। इस समय एक घटना घटी और वह लक्ष्मी को पा गया।

मन्नू जमादार के कारखाने के लोग छुरे और बन्दूक चलाने का अभ्यास करने दरगाह शाह मुराद में जाया करते थे। मन्नू भी उनके साथ जाया करता था। शाह मुराद का वली, मन्नू को उन सब लोगों का अफसर जान उससे भारी मेल-जोल रखने लगा था। उसे अपने रहने के मकान पर ले जाया करता और उसको खिलाया-पिलाया करता था। धीरे-धीरे दोनों में भारी हेल-मेल उत्पन्न हो गया था।

एक दिन दरगाह के वली, शाह इब्राहीम ने उसको एक ओर ले जाकर कहा, "जमादार, एक खुफिया काम है। कर सकते हो?"

"हाँ हज़रत, जान तक हाज़िर है। बताइये क्या काम है?"

"मील एरिया में, सत्यनारायण के मन्दिर में एक पंडित सदाशिव रहते हैं। मैं चाहता हूँ कि उसको बाँधकर आज रात को यहाँ ले आवो।"

"मैं उसको जानता हूँ। वह तो बम्बई कौंसिल का मेम्बर है।"

"मैं सब कुछ जानता हूँ। उसकी सख्त ज़रूरत है। बताओ उसे ला सकोगे?"

"क्यों नहीं।"

बात तय हो गई। यह वही रात थी जिस शाम को सदाशिव लक्ष्मी से मिलने की स्वीकृति राधा से लेकर आया था। अगले दिन उसको लक्ष्मी से मिलने जाना था और स्वीकृति की चिट्ठी उसकी जेब में थी। लक्ष्मी से मिलकर अपनी सफाई की योजना बनाता हुआ वह खाट पर लेटा ही था कि किसी ने उसके कमरे का दरवाजा धीरे से खटखटाया। उसका पिता दूसरे कमरे में सो रहा था। सदाशिव ने दरवाजा खोला तो दो आदमियों ने उसके हाथ पकड़ लिये और एक

ने उसके मुख पर हाथ रख उसे बोलने से रोक दिया। चौथे ने अपनी जेब से रूमाल निकाल उसके मुख में ठूँस दिया और फिर एक रस्सी से उसके हाथ-पाँव बाँध दिये।

इसके पश्चात् उस आदमी ने सदाशिव के जेब और सन्दूक की तलाशी ली। उन लोगों का इससे नकदी ढूँढ़ने का प्रयोजन था, परन्तु मिलीं चिट्ठियाँ और कागज। एक चिट्ठी बहुत बढ़िया लिफाफे मे थी और मन्नू के साथी ने उसे खोल डाला और पढ़ा। लिखा था, "सदाशिव जी को लक्ष्मी से मिलने दिया जावे। मिलने के पश्चात् लक्ष्मी को मेरे पास भेज देना " मन्नू ने चिट्ठी सुनी, तो कुछ सोच, प्रसन्न हो, चिट्ठी को अपनी जेब में रख ली। उसने अपने साथियों से कहा, "बड़े काम की चीज मिली है।"

सदाशिव को दरगाह में पहुँचा, मन्नू दरगाह के वली से मिलकर उस चिट्ठी का प्रयोग करने की योजना बनाने लगा।

अगले दिन आर्य समाज कन्या पाठशाला के फाटक पर कुछ लोग जो पोशाक से हिन्दू मालूम होते थे, एक मोटर टैक्सी में और मोटर साइकिलो पर पहुँचे। उनमें से एक भीतर गया और राधा देवी की चिट्ठी मुख्याधिष्ठात्री के पास ले गया। उसने स्कूल की एक नौकरानी के साथ लक्ष्मी को प्रतीक्षा करने के कमरे मे भेज दिया। लक्ष्मी सदाशिव से मिलना नहीं चाहती थी, परन्तु राधा देवी की चिट्ठी देख बाहर कमरे में आ गई। वहाँ एक अपरिचित आदमी को बैठे देख विस्मय में खड़ी रह गई। उस आदमी ने कहा, "सदाशिव जी ने मोटर भेजी है। वे चाहते हैं कि पन्द्रह मिनट के लिए तुम उनसे मिल आओ।"

"मै उनसे मिलना नहीं चाहती।" लक्ष्मी का उत्तर था।

अभी लक्ष्मी के मुख से बात पूरी निकलने भी नहीं पाई थी कि पाँच छः आदमी नंगे छुरे लिए हुए भीतर घुस आए और चपरासी

और लक्ष्मी के साथ आई नौकरानी को भयभीत कर लक्ष्मी को उठा, मोटर में लाद, भाग गये।

यह सब इतनी जल्दी हुआ कि किसी को शोर मचाने का समय ही नहीं मिला। जब तक स्कूल में शोर मचता, मोटर और साइकिलो मे सवार लोग मीलों दूर निकल गये थे।

पुलिस और राधा देवी को सूचना भेज दी गई। सूचना पाते ही खुशीराम, राधा देवी और पुलिस सार्जेंट वहाँ आ उपस्थित हुए। जब पूर्ण घटना सुनी गई तो सदाशिव को अपराधी समझ लेना स्वभाविक ही था। सदाशिव के घर पर धावा बोला गया। उसे घर से पहिली रात को ही चला गया सुन सब की यह धारणा पक्की हो गई कि वही लक्ष्मी को ले भागा है। सदाशिव का पिता ही केवल ऐसा आदमी था जो अपने पुत्र को ऐसा घृणित काम करनेवाला नहीं मानता था। उसने बलपूर्वक कहा कि उसका पुत्र ऐसा नहीं है। परन्तु पूर्ण घटना-चक्र सदाशिव के विरुद्ध था और उसके पिता के कहने पर किसी को विश्वास नहीं आया।

पुलिस ने रिपोर्ट सदाशिव के विरुद्ध लिख ली। रात को सदाशिव का पिता, एकनाथ, खुशीराम के घर आया और फिर अपना विचार बताने लगा। उसने कहा, "बाबू जी, वह लड़का ऐसा नहीं जैसा आप समझ रहे हैं। मैं उसे जानता हूँ। उसमें इस प्रकार की नीचता करने का साहस नहीं हो सकता।"

एकाएक राधा को एक बात सूझी। उसने कहा, "मन्नू का पता करना चाहिए। हो सकता है कि सदाशिव ने मन्नू को लक्ष्मी को भगा ले जाने की योजना में सहायता दी हो और हमारी चिट्ठी उसे दे देने पर कुछ दिन के लिए बम्बई से गायब हो गया हो।"

"यह बात तो लक्ष्मी को स्वयं ले जाने से भी अधिक घृणित है।"

"काम की अच्छाई-बुराई का विचार पीछे करेंगे। पहले मन्नू की तलाश होनी चाहिए।"

खुशीराम ने अपनी मोटर निकलवाई और पुलिस-स्टेशन जा पहुँचा। वहाँ सुपरिंटेंडेंट से मिल अपना संदेह वर्णन कर दिया। पुलिस अफसर यह विचार सुन हँस पड़ा और संदेह मे सिर हिलाने लगा।

खुशीराम ने अपने विचार की पुष्टि में बताया, "हम सदाशिव से एक-दो बार पहले भी मिले हैं और हमारा अनुमान है कि इतने साहस का काम वह नहीं कर सकता। साथ ही मन्नू एक गुंडा है। उससे सब कुछ संभव है।"

पुलिस अफसर ने गंभीर हो पूछा, "यह विचार परिवर्तन एक हिन्दू के स्थान एक मुसलमान को फँसाने के लिए तो उत्पन्न नहीं हुआ? देखिये खुशीराम! आपके खिलाफ हमारे रिकार्ड मे बहुत बाते हैं। एक तो यह कि आप लाहौर से एक मुसलमान लड़की को भगाकर यहाँ लाए हुए हैं। दूसरा आप यहाँ हिन्दू-मुसलमान झगड़ा उत्पन्न करने का यत्न करते रहते हैं। तीसरे आपने जो यतीमखाना खोल रखा है वह मुसलमान बच्चो को हिन्दू बनाने के लिए है। ऐसी अवस्था में आपका किसी मुसलमान के विरुद्ध कुछ भी कहना माननीय नहीं हो सकता।"

खुशीराम यह सुन अवाक् मुख रह गया। अपने को सँभाल उसने कहा, "मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि ये सब रिपोर्ट निराधार हैं।"

"आपका रिकार्ड ठीक करना मेरा काम नहीं है। यह तो खुफिया पुलिस का काम है। फिर भी मैं पूछता हूँ कि क्या यह ठीक नहीं कि आपकी बीवी एक मुसलमान की लड़की है?"

"ठीक है। और मेरा विवाह आज से पन्द्रह वर्ष पूर्व मुसलमानी तरीके से हुआ था। मेरी बीवी का नाम रहीमन था। मेरा उससे प्रेम हो गया तो उसके संरक्षको ने हठकर मुझे मुसलमान हो जाने पर विवश कर दिया। इस प्रकार मुसलमान बना लिए जाने पर मेरे विचार तो बदले नहीं प्रत्युत रहीमन के विचारों में परिवर्तन हो गया।

धीरे-धीरे उसके विचार हिन्दुओ के से होते गए और उसने स्वयं अपना नाम रहीमन से बदल राधा रख लिया। अब तो वह हिन्दू-संगठन कार्य मे मेरी सहायता करती है। यह वही है जो दिन के समय मेरे साथ आई थी।

"लाहौर में जब मुसलमानों को पता लगा कि न तो मैं मुसलमान हुआ और न ही रहीमन मुसलमान रही तो वे मेरी जान लेने पर तैयार हो गए। इससे मैंने लाहौर छोड़ बम्बई नौकरी कर ली। अब बतलाइये मैंने कौन पाप किया है?"

"तो आपने हिन्दू तरीके से विवाह नहीं किया?"

"जी नहीं।"

"तो आपके बच्चे क्या होगे? हिन्दू या मुसलमान?"

"जो उनकी इच्छा होगी हो जावेंगे। वे अभी बालिग़ नहीं हैं।"

"परन्तु यहाँ आकर आप मुसलमान बच्चों को हिन्दू जो बना रहे हैं।"

"यह बात भी मिथ्या है। यतीमखाना निरीक्षण के लिए सदैव खुला है। आप या कोई भी पुलिस अफसर जाकर देख सकता है।"

"इस पर भी मै मन्नू के विषय में जाँच नहीं कर सकता। मै आपकी सूचना खुफिया पुलिस में भेज दूँगा, परन्तु वे इसमें जाँच-पड़ताल करेंगे या नहीं, मै नहीं जानता।"

[११]

एकनाथ, सदाशिव के पिता, को लड़के के लापता हो जाने का भारी शोक था। वह स्वयं भी पुलिस, इलाका कांग्रेस कमेटी के मंत्री, और फिर प्रान्त के प्रधान-मंत्री के पास गया और सब स्थानो से उसे लौटना पड़ा। वह कहता, "श्रीमान जी! मेरा लड़का ऐसा नहीं है। उसने किसी लड़की का हरण नहीं किया। उस पर झूठा लाँछन लगाया जा रहा है।"

इसके उत्तर में सब लोग उसे यह कहते, "पंडित जी ! आप ठीक कहते हैं, परन्तु हम क्या कर सकते हैं ? प्रमाण उसके विरुद्ध जा रहे हैं।"

केवल खुशीराम और राधा ही, पंडित एकनाथ की बात पर विश्वास करते थे। परन्तु जब तक कोई सुराग न मिले तब तक क्या कर सकते थे ? यही कारण था कि सदाशिव का पिता उनसे प्रायः मिलने आ जाया करता था।

एक दिन अँग्रेजी में एक टाईप की हुई चिट्ठी पंडित एकनाथ को मिली और वह उसे पढ़वाने के लिए खुशीराम के पास ले आया। खुशीराम ने वह चिट्ठी पढ़कर सुनाई। लिखा था। "यह सूचना पुजारी एकनाथ के लिए है। उसे यह बताया जाता है कि उसका लड़का सदाशिव सही-सलामत है। उसके लिए कुछ दिन तक छुपकर रहना अच्छा समझा गया है। आप इसकी चिन्ता न करें। सब काम समय पर ठीक हो जावेगा।"

इस समय तक बम्बई-भर में सदाशिव के एक लड़की को लेकर भाग जाने की बात फैल चुकी थी। उसके बम्बई की धारा-सभा के सदस्य होने से उसकी बदनामी और भी अधिक हुई थी। खुशीराम इस चिट्ठी से संतुष्ट नहीं हुआ। जहाँ इससे उस पर लगे आरोप की सफाई किंचित्-मात्र भी नहीं हो रही थी वहाँ इससे उसके मार दिए जाने की संभावना अधिक प्रतीत होने लगी थी। यदि वह जीवित होता तो वह स्वयं चिट्ठी लिखता। इस पर भी खुशीराम ने एकनाथ को सांत्वना दे दी। "आप चिन्ता नहीं करें। हमें आशा करनी चाहिये कि शीघ्र ही उसके अपने हाथ की लिखी चिट्ठी भी आ जावेगी।"

एकनाथ के चले जाने के बाद खुशीराम ने इस मामले में स्वयं ही कुछ करने का निश्चय कर लिया। उसने महावीर-दल के दलपति से इस विषय मे बात की और इसका परिणाम यह हुआ कि दो स्वयं-

सेवक मन्नू का पता करने पर लगा दिये गये। वे नित्य रात को अपनी खोज का परिणाम खुशीराम को बताने आने लगे। पहिले ही दिन उसे यह बताया गया कि मन्नू जमादार ने मील से नौकरी छोड़ दी है। अगले दिन पता मिला कि उसने मकान बदल लिया है। इनसे यह बात तो पक्की हो गई कि लक्ष्मी के लापता होने में उसका हाथ हो सकता है। यह पता किया गया कि मन्नू किस तारीख से मील से अनुपस्थित है। उसके मील से ग़ैरहाज़िर होने की तारीख और लक्ष्मी के अपहरण की तारीख का एक ही होना एक भारी प्रमाण था, जिसके पुलिस को बताने से पुलिस भी मन्नू की तलाश में लग गई।

इस समय एकनाथ को सदाशिव के अपने हाथ का लिखा एक पत्र मिला। इस पत्र ने जहाँ खुशीराम के भय का निवारण किया, वहाँ पुलिस और महावीर-दल के स्वयं-सेवकों की यह धारणा बन गई कि मन्नू के लोगों ने ही सदाशिव को कैद कर रखा है। इससे मन्नू की तलाश जोरों से होने लगी।

मन्नू के असली निवास-स्थान का पता किया गया। वह यू० पी० के जिला बुलन्दशहर का रहने वाला था। खोज उसके घर पर भेजी गई। वहाँ से पता चला कि जब से उसकी बीवी का देहान्त हुआ है तब से वह घर नहीं आया। समय बीतने के साथ पुलिस की ओर से खोज का काम ढीला पड़ गया, परन्तु महावीर-सघ की ओर से खोज जारी रही।

इसके उपरान्त एक पत्र रियासत हैदराबाद के भटिया नाम एक गाँव से आया। 'यह भी सदाशिव के अपने हाथ का लिखा हुआ था। इस पत्र ने एक नई परिस्थिति उत्पन्न कर दी। स्वयं-सेवकों की खोज भटिया में जा पहुँची। इस जाँच के परिणाम के आने से पूर्व ही सदाशिव बम्बई में आ प्रकट हुआ। लक्ष्मी उसके साथ नहीं थी।

[१२]

बम्बई मतुंगा मे एक बहुत बड़ा अहाता है जिसके चारो ओर बीस फुट ऊँची दिवार से हदबदी बनी हुई है। इस अहाते में जाने को केवल-मात्र एक दरवाजा है और यहाँ पर दो वृद्ध चौकीदार हाथ में तसबीह लिए दिन-रात पहरा देते हैं।

दरवाजे का बड़ा फाटक तो सप्ताह में केवल एक दिन, अर्थात् जुम्मे के दिन खुलता है। इस दिन लोग सहस्रो की संख्या में नमाज पढ़ने आते हैं। सप्ताह के शेष छः दिन फाटक तो बंद रहता है पर उसमें की खिड़की प्रातः छः बजे से लेकर रात के दस बजे तक खुली रहती है। वर्ष मे एक दिन और भी फाटक खुलता है। रमज़ान के महीने की प्रथम जुमेरात और जुम्मे को, चौबीस घंटे फाटक खुला रहता है। इस दिन इस अहाते में शाह मुराद के मकबरे पर उर्स होता है। दूर-दूर से शायर, कव्वाल, रागी और नाचनेवाली रकासा आती हैं। इस दिन शाह मुराद के मक़बरे की जियारत होती है।

अहाते मे एक बहुत खुला मैदान है। मैदान के एक ओर शाह मुराद का मक़बरा है। एक विशाल गुम्बद के नीचे कब्र बनी है, जिस पर हरे रंग का रेशमी कपड़ा बिछा रहता है।

इस मक़बरे में गुम्बद के नीचे कब्र के चारों ओर गाने-बजानेवाले बैठ जाते हैं और अपने-अपने दिल के भावो को शायरी अथवा कव्वाली और गीतों में सुना अपने मन को ठंडा करते हैं।

बाहर के लोग भी सुनने आते हैं, मगर वे प्रायः रात होने से पूर्व ही चले जाते हैं। जो शायर, गाने और नाचनेवाले आते हैं उन्हें प्रातःकाल सूर्य निकलने से पूर्व खाना दिया जाता है। इन लोगों ने अगले दिन, अर्थात् जुम्मे के दिन रोज़ा (व्रत) रखना होता है। सूर्यास्त तक कुछ भी खाना नहीं होता। इस कारण अच्छा पौष्टक खाना बनवाया और खिलाया जाता है।

दरगाह के एक वली हैं। ये प्रायः पूर्व वली के जानशीन (उत्तराधिकारी) उसके मरने पर बनाए जाते हैं। वर्तमान काल के वली पीर इब्राहीम एक दूध समान श्वेत सिर के बालो और डाढ़ी वाले, वृद्ध हैं। वे काला चोग़ा और उसके नीचे काले रग की तहमत पहना करते हैं। रमज़ान मे उर्स के दिन वे शायरों, कव्वालो और नाचने-गानेवालियो की मजलिस में सदैव शामिल होते हैं।

इस वर्ष विशेष समारोह था। जुमेरात की शाम को दरवाजा खुला तो गाने-बजानेवाले आने आरम्भ हो गए। रात के दस बजते-बजते लगभग तीन सौ गाने-बजानेवाले अपनी सारंगी, ढमकीरी लिए एकत्रित हो गए।

रात के बारह बजे तक इक्के-दुक्के गानेवाले गाते-बजाते रहे। पश्चात् मकबरे के बिलकुल सामने, मैदान के दूसरे कोने में लोग, जो नींद अनुभव कर रहे थे, जाकर सो गए। पीर साहब भी अब उठे और मैदान के उत्तरी कोने में एक मकान में, जो उनकी आरामगाह (निवास-स्थान) कही जाती थी, चले गए। इस समय तक दर्शक प्रायः लौट गये थे।

भोजन बनानेवाले रात-भर खाना बनाते रहे। ठीक चार बजे मुल्ला ने आजान दी अर्थात् मोमिनों को खुदा की इबादत के लिए आह्वान किया। सब लोग उठे और मैदान के बीचोबीच, स्वच्छ जल के एक तालाब के किनारे वुजू करने (हाथ-मुँह धोने) एकत्रित हो गए।

इस प्रकार शौचादि से निवृत्त हो सब लोग मक़बरे में एकत्रित हुए। वहाँ नमाज पढ़ी गई। नमाज पढ़ने के पश्चात् सदैव की भाँति वली इब्राहीम साहब का वाज हुआ। उन्होंने कहा, "हाज़रीन ! इन्सानी फितरत का यह तकाज़ा है (मनुष्य प्रकृति की यह माँग है) कि वह किसी की सरपरस्ती में काम करे। खुदा ने इसीलिए वक्त वक्त पर, पैगम्बर भेज गुमराहों को राह पर लाने का बन्दोबस्त किया। इस

सिलसिले में आखीरी पैगम्बर आलि हज़रत, वली-उल-इसलाम आए और हम उन्हीं के जाहो-जल्लाल से पुरे पैगाम को फैलाने की कोशिश में हैं।

"हजरत मुराद, जिनकी पाक दरगाह में हम हर साल इकट्ठे होते हैं, उनकी जिन्दगी इसी काम में गुजरी, और यही वजह है, कि हम उनकी याद हर साल मनाते हैं। आज ज़माना तेज़ी से बदल रहा है और हमें भी अपना काम तेजी से करना है। आज दुनिया मे जमहूरियत का जमाना है और हिन्दुस्तान मे भी इसकी कायमी हो रही है। जमहूरियत में लोगो की गिनती का सवाल है। जिस कौम की गिनती ज्यादा होगी उसी की हकूमत कायम हो जावेगी। हमने हिन्दुस्तान में सात सौ साल तक हकूमत की, मगर अफसोस है कि हम यहाँ पच्चीस फी सदी से ज्यादा लोगो को मुसलमान नहीं बना सके। हमें जल्दी से जल्दी अपनी तादाद पचास फी सदी से ज़्यादा करनी है।

"इस काम मे आप लोग बहुत कुछ कर सकते हैं। जो तो आप में से आदमी हैं उनको अपने ताल्लुकात गैर-मुसलिम औरतों से पैदा करनी चाहिये और औरतों को गैरमुसलिम मरदो से। इलम मासूकी इसमें आपकी बहुत ज्यादा मदद कर सकता है।

"पेशावर औरतो से मेरा यह कहना है कि उनके पेशे का गुनाह काबिले-मुआफी हो जावेगा, अगर वे इसे खुदा के नाम पर खुदा की मिल्लत बढ़ाने में सर्फ करेंगी। गुनाह और सवाब में तमीज (पाप पुण्य मे भेद) मकसद की बिना पर होती है। इससे अगर वे अपने पेशे में यह कोशिश करती रहेंगी कि उन्होंने गैर मुसलमानों को मुसलमान बनाना है तो खुदा अपनी रहमत से उनके सब गुनाहो को बख्श देगा।

"हिन्दुस्तान में हिन्दू एक निहायत ही नामुराद चीज बना है। जहाँ दूसरे मुमालिक मे इसलाम का नूर चन्द ही सालो में फैल गया

वहाँ इस बदनसीब मुल्क में एक हजार साल में भी सिरफ पच्चीस फी सदी इसलाम फैल सका है। हमने तलवार का जोर दिखाया, तो बच्चे, जवान, बूढ़े, मरद, औरत सब मरने को तैयार हो गए पर मुसलमान नहीं हुए। हमने औरतो का लालच दिया तो इनके साधु-संत महात्मा, लोगों को ब्रह्मचर्य की तालीम देने लगे। हमने मरदों को मार औरतों को बेवा किया तो वे सती होने लगीं। हमने इनकी छोटी जात के लोगो को भड़काना शुरू किया तो इन्होने अछूतोद्धार शुरू कर दिया। गर्जे कि हमारी सब कोशिशे बेकार गई हैं। इससे हमें दुगने जोश से काम करना है। मैं आपको अपने पचास साल का तजरुबा बताता हूँ। हमारी सब कोशिशो से ज्यादा पुर असर तरीका औरतो के प्रेम का तरीका रहा है। इससे मेरा आपसे यह कहना है कि अमीर, बारसूख, और ऊँचे दर्जे के लोगों में घुस जाओ और उनके जवान लड़को को अपने इशक में मुबतला करो। उन्हें मुसलमान बनाकर सवाब हासिल करो।

"मेरी खुदा से दुआ है कि आप लोग इस गुमराह कौम के जवान औरतो और मरदो में पहुँच उनके दिलो से तारीकी दूर कर उनको नजात की राह पर ला सको।"

इसके बाद खाना खाया गया और रोज़ा आरम्भ हुआ। बाद दोपहर शहरी लोग आने शुरू हो गए। इस समय फिर गज़लें, कव्वालियाँ, नाच और गाने आरम्भ हो गए। शाम को रोज़ा तोड़ने के वक्त ज़कात बाँटी गई। और उर्स रात के बारह बजे खतम हुआ। गाने-बजानेवाले लोग भी विदा हो गए।

[१३]

इस उर्स के दो दिन पीछे की बात है। कुछ लोग एक खद्दरधारी युवक को, हाथ-मुँह पर पट्टी बाँधे, मोटर पर लादे हुए दरगाह के दरवाजे पर लाये। फाटक खटखटाया गया। एक बूढ़े चौकीदार ने

खिड़की खोली तो उसमें से उसे दरगाह के भीतर ले गए। यह सदाशिव था। सदाशिव को पीर साहब की आरामगाह में ले जाया गया। वहाँ उसे एक हट्टे-कट्टे पंजाबी मुसलमान दारोगा के हवाले कर दिया गया। दारोगा सदाशिव को एक कमरे में ले गया। वहाँ उसके मुख से पट्टी खोल उसने कहा, "अभी यहाँ आराम करिए। सुबह मालिक आपसे बात करेंगे।"

सदाशिव बहुत दुख अनुभव कर रहा था। उसने माथे पर त्योरी चढ़ाकर पूछा, "तुम कौन हो?"

"इस आरामगाह का दारोगा हूँ।"

"मैं इस आरामगाह में रहना नहीं चाहता।"

"सब काम इन्सान की अपनी मरजी के मुताबिक नहीं होते।"

"पर मैं पूछता हूँ, कि मुझे यहाँ क्यों लाया गया है?"

"मैं आपको यहाँ नहीं लाया। इसलिए बता नहीं सकता कि क्यों आप यहाँ लाए गए हैं।"

"तो कौन मुझे यहाँ लाया है? किस के हुक्म से तुम मेरी खातिर कर रहे हो?"

"अब रात बहुत हो चुकी है। यह देखिए आपके लिए पलंग लगा है। कल सुबह यहाँ के मालिक आपसे मिलेंगे। यह सब वही बता सकेंगे।"

सदाशिव बहुत छटपटाया, परन्तु परिणाम कुछ नहीं निकला। उसने पलंग की ओर देखा जो उसके लिए लगाया गया कहा गया था। दूध समान श्वेत चादर और ऊपर ओढ़ने को रेशमी दुहर तथा रेशमी फूलदार तकिए लगे थे। पलंग के सिरहाने के समीप एक तिपाई रखी थी। उस पर एक पीतल के लोटे में पानी था। लोटा ऊपर से ढँपा हुआ था। दारोगे ने कहा, "जरूरत हो तो यह पानी ले सकते हैं।" इतना कह दारोगा चला गया।

कोमल बिस्तर पर सोने का अवसर सदाशिव को जीवन में पहिली-

वार मिला था। साथ ही आधी रात तक पकड़-धकड़ में व्यतीत हो गई थी। इस भाग-दौड़ की थकावट से जब वह बिस्तर पर लेटा तो गहरी नीद सो गया। बहुत दिन चढने पर उसको जगाया गया। जगानेवाली एक औरत थी। सदाशिव को किसी स्त्री के कोमल स्वर, प्रातः उठते ही सुनने का, मृदु-अनुभव, जीवन में पहिली ही बार मिला था। उसकी माँ का देहात तो उसके होश सँभालने के पहिले ही हो चुका था। उसके पिता का स्वर बहुत कर्कश था। आज एक स्त्री को अपने सिरहाने खड़े सिर मे हाथ फेरते हुए यह कहते सुन, "उठो बेटा। दिन बहुत निकल आया है" उसका पूर्ण शरीर पुलकित हो उठा।

सदाशिव ने आँख खोल देखा। तीस-पैंतीस वर्ष की एक स्त्री साफ रेशमी कपड़े पहिने झुक, उसके मुख पर देख रही थी और कह रही थी। "उठकर तैयार हो जाइये। मालिक आ रहे हैं।"

कुछ काल तक तो उसे समझ ही नहीं आया कि वह स्वप्न देख रहा है या वास्तव में ऐसी मधुर अवस्था में वह है।

जब उसे सब स्मरण हो आया तो एक क्षण के लिए उसके माथे पर त्योरी चढ़ गई। फिर तुरन्त ही उसे बिस्तर की कोमलता, उस स्त्री का कोमल स्पर्श, मृदु मुस्कान और स्नेह-भरी दृष्टि का ज्ञान हुआ। वह इनसे सुख अनुभव करने लगा, उसने पूछा, "क्या समय होगा ?"

"साढ़े नौ। अब उठिए। हजरत आ रहे हैं। वे आपसे कुछ बात-चीत करना चाहते हैं।

"कौन हजरत ?"

"पीर इब्राहीम साहब वली दरगाह शाह मुराद। आप उनकी आरामगाह में हैं। उनकी आप पर खास रहमत (दयादृष्टि) है।

"और आप कौन हैं ?"

"मै उनकी खादिमा (दासी) हूँ।"

"आप नौकरानी मालूम नहीं होतीं।" यह कहते हुए सदाशिव उठकर खाट पर बैठ गया।

वह स्त्री खाट के समीप खड़ी-खड़ी ही कहती गई, "आपका ख्याल दुरुस्त है, मगर हम सब लोग हज़रत के मुरीद हैं। हमारा एतकाद शाह मुराद पर मुस्तकिल (पक्का) है। इससे हम इस दरगाह और इसके वली हजरत की खिदमत के लिए चौबीस घटे मुस्तैद रहते हैं। देखिए। इस खूँटी पर आपके पहनने के कपड़े टँगे हैं। यह साथ में गुसलखाना है। गुसल कर, साफ कपड़े पहिन तैयार हो जाइये। आधे घटे में हज़रत तशरीफ़ लावेंगे।"

इतना कह वह औरत सलाम कर चली गई। सदाशिव इस सबका कारण जानने का यत्न करता हुआ उठा और स्नानादि के लिए साथ के कमरे में चला गया।

स्नानादि से छुट्टी पा, कपड़े पहिन, कमरे मे रखी कुर्सी पर बैठा ही था कि वली अपने साधारण पहरावे मे, हाथ में याकूत के पत्थर की तसबीह (माला) लिए और उसे फेरता हुआ आ खड़ा हुआ। सदाशिव एक वयोवृद्ध, परन्तु अति सुन्दर, सौम्य और सभ्य मूर्ति को अपने सम्मुख खड़ा देख, उसका आदर करने के लिए अनायास ही खड़ा हो गया। वली मुस्कराया और अति प्रेम से उसकी ओर देखने लगा। सदाशिव इन बातों से इतना प्रभावित हुआ कि मुख से कुछ कह नहीं सका। वली एक कुर्सी पर बैठ गया और सदाशिव को हाथ के संकेत से बैठने को कह पूछने लगा। "बताओ सदाशिव। रात को कुछ तकलीफ तो नहीं हुई?"

अब सदाशिव को वली के सम्मोहिनी प्रभाव से चेतना हुई और उसने कहा। "जी, कष्ट तो कुछ नहीं हुआ, परन्तु मुझे क्यों लाया गया है और मुझे क्यों घर नहीं जाने दिया जाता?"

"तुम्हारी भलाई के लिए। अल्लाह परवरदिगार के हुक्म से ही मैंने तुम्हें यहाँ लाकर रखा है। उसकी ही रहमत से मुझे यह

हिदायत (आज्ञा) हुई है कि मैं तुम्हारे मुस्तकबिल को रोशन कर दूँ। उसके नूर से तुम्हारी जिन्दगी को मुनव्वर कर दूँ। ऐसा मालूम होता है कि तुम्हारे नेक कामों की गूँज ने बहिश्त में परवरदिगार के अर्ष (सिंहासन) को जुम्बिश दी है। इससे उनके फरिश्ते ने मुझे तुम्हारी मदद के लिए कहा है।"

"पर हज़रत! मेरे पिता तो रो-रोकर पागल हो रहे होंगे।"

"उनको खबर भेज दी गई है। वह खुश हैं। खुदा ने उनके रुह को तसकीन (शान्ति) बख्शी है।"

"पर मुझे कैसे पता चले?"

"वक्त पर सब पता चल जावेगा। देखो सदाशिव। मुझे अपना दोस्त और हमदर्द समझो। जो कुछ भी तुम्हें तकलीफ हो मुझसे कहो। उस रहीम अपने मालिक की मेहरबानी से मै तुम्हारे सब शकूक रफा कर सकूँगा।"

"एक गुज़ारिश और है। मुझे आर्य कन्या पाठशाला में एक लड़की से मिलने जाना है। उसे मिलकर मै लौट आऊँगा।"

"वह लड़की तुम्हें नहीं चाहती। उसको मिलकर दिल को दुखी करने की जरूरत नहीं। खुदा का हुक्म है कि मैं तुम्हारे लिए ऐसा बन्दोबस्त करूँ कि तुम उसके खास बन्दों में एक हो जावो। अब तुम अपना दिल बहलाओ। अभी तुम्हारे पास सूत कातने को चर्खा और पढ़ने को किताबे आ जावेंगी। मेरी आरामगाह के पीछे एक बहुत बड़ा मैदान है। उसमें रंग-रंग के फूल लगे हैं। तुम वहाँ टहलने को जा सकते हो। शाम के वक्त तुम्हारे घूमने को मोटर मिलेगी।"

इतना कह वली वहाँ से उठा और हाथ उसके सिर से छः इञ्च ऊपर रख, दुआ दे, चला गया।

सदाशिव विस्मय में डूबा हुआ वहीं बैठा रह गया। वह अपने मन में इस सब का अर्थ लगा नहीं सका था। उस जैसे मामूली

हैसियत के आदमी को इतना बढ़ा-चढ़ाकर रखने का अभिप्राय, उसे समझ नहीं आया।

यदि तो उसे पकड़कर समुद्र में फेंक दिया होता तो वह समझता कि किसी ने द्वेष-भाव से उसके साथ यह सब कुछ किया है, परन्तु उसकी ख़ातिर-तवाज़ा (सेवा-सुश्रुषा) इतनी हुई थी कि इसे वह किसी निकृष्ट उद्देश्य से होती समझ नहीं सका। आख़िर कोई उसकी सेवा-सुश्रुषा क्यों करेगा? वह कुछ भी जान नहीं सका।

वह अभी इन विचारों में लीन बैठा था कि वही औरत जो उसे सोये से जगाने आई थी आ गई। वह उसे इस प्रकार बैठे देख पूछने लगी, "आप तो ब्राह्मण के हाथ का बना खाते होंगे?"

"जेल में तो मैं सबके साथ मिलकर खाता रहा हूँ। जेल में हमारे मुसलमान साथी खाना बनाते थे और हम सब मिलकर खाते थे।"

"यह बात हज़रत को मालूम थी मगर उन्होंने फरमाया है कि यह जेल नहीं है। यहाँ आप अपनी मर्ज़ी से जो और जैसा खाना चाहें खा सकते हैं।"

"मुझे मुसलमानों के साथ खाने में कोई परहेज़ नहीं है।"

"ला हौल विला कूवत इल्ला व इल्लाह। भला खुदा के सिवा और कौन अच्छा है। इस दुनिया में हम सब उसके बन्दे हैं। तो आइये।"

उस कमरे के पीछे एक साफ-सुथरे स्थान पर चाँदी के थाल और कटोरियों में भोजन परस एक लकड़ी के पटरे पर रखा था। चौकी के सामने एक और चौकी सदाशिव के बैठने के लिए लगी थी। पटरे के दूसरी ओर एक आसन बिछा था। वह औरत सदाशिव को वहाँ ले आई और नल में हाथ धुला, चौकी पर बैठा, स्वयं आसन पर बैठते हुए कहने लगी, "अगर आपको परहेज नहीं तो क्या मैं, यहाँ बैठ सकती हूँ?"

"हाँ। बिना तकल्लुफ के।"

सदाशिव ने खाना आरम्भ कर दिया। भोजन बहुत ही स्वादु था। ज़ाफरानी चावल का पलाओ, जिसमें बादाम, पिस्ता और भाँति-भाँति के मेवे पड़े थे; कई प्रकार के व्यंजन थे, सबजियाँ थी और कई तरह के चटनी, अचार इत्यादि थे। जब सदाशिव खा रहा था वह औरत कह रही थी। "आपकी फ़राख़ दिली से तो हमारा काम हल्का हो गया। आपके लिए शहर से ब्राह्मण रसोइया मँगवाया गया है, मगर अब तो इस ख़ादिमा और इसकी लड़की को खिदमत करने का अवसर मिलेगा।"

"अच्छा तो आपकी लड़की भी यहाँ हैं?"

"सब हज़रत की मेहरबानी है।"

सदाशिव स्वादिष्ट भोजन का स्वाद ले रहा था; उसने उस औरत की ओर देखकर पूछा, "मुझे अभी तक यह समझ नहीं आया कि मेरी इतनी सेवा-सुश्रुषा क्यों की जा रही है।"

"हज़रत जिस पर मेहरबान होते हैं, उसके साथ ऐसा ही होता है। वे कहा करते हैं, कि रात को अबादत करते-करते खुदा उनको बताया करता है कि वे किसको क्या दें।"

"वे खुद भी यही कहते थे।"

"तो आपने कोई भारी सवाब (पुण्य) का काम किया है जिससे खुदा की यह हिदायत उनको हुई है।"

"अपनी जानकारी में तो मैंने कोई ऐसी बात नहीं की।"

"खुदा आपकी बाबत आपसे भी ज़्यादा जानता है। आप जिसे मामूली बात समझते हैं वह उसकी नज़र में बहुत बड़ी बात भी हो सकती है।"

इस युक्ति का कोई जवाब नहीं था। इस पर वह अपने जीवन के कामों का अवलोकन करने लगा। वह इस प्रकार छोटी-छोटी घटनाओं को बढ़ा-चढ़ाकर देखने लगा। कभी सोचता कि छोटे-ोटे बच्चों को निःशुल्क पढ़ाना शायद ऐसा पुण्य काम है। कभी

हिन्दू मुसलमान एकता के उत्पन्न करने में अपनी मँगेतर को भी दे देना, वह ऐसा पुण्य का काम समझता था।

भोजन समाप्त हुआ। उसने हाथ धोये। इस समय उस औरत ने आवाज दी "ख़नीज़ा। पान लाना।"

आवाज सुन एक लड़की गंगा-यमुनी तश्तरी में पान के पत्ते, चूना, कत्था लगे हुए, साथ सुपारी, सौंफ, इलायची रखे हुए, लेकर आ गई।

सदाशिव लड़की को देख चकित रह गया। वह अति सुन्दर थी। कोमल, गौर-वर्णीय और पंद्रह-सोलह वर्ष की दिखाई देती थी। सदाशिव कभी पान नहीं खाता था, परन्तु इस लड़की के हाथ से पान खाने को सौभाग्य मान, पान उठा और उसमें सुपारी, इलायची रख, लपेट, खाने को तैयार हो गया। सदाशिव ने पूछा, "तो यह आपकी लड़की है?"

लड़की लज्जा से भूमि की ओर देख रही थी। उस औरत ने उत्तर दिया। "खुदा का फ़ज़ल है।"

पान चबाते हुए सदाशिव ने कहा, "मै नहीं जानता कि किस पुण्य के प्रताप से मुझे यह सब कुछ प्राप्त हो रहा है।"

[१४]

सदाशिव को वली का मेहमान बने एक सप्ताह से ऊपर हो गया था। ख़नीज़ा और उसकी माँ दोनों उसकी सेवा में थीं। लड़की उसके साथ आरामगाह के पिछवारे के बाग़ में टहलती और मोटर में उसके साथ बाहर घूमने भी जाती थी। वह उसे खाना खिलाती, पान लगा देती और फिर घंटों ही बैठ उससे बातें करती। माँ का काम था सदाशिव के कपड़े तैयार करना, उसका बिस्तर लगाना और उसके खाने का प्रबन्ध करना।

एक दो दिन तक तो सदाशिव को लक्ष्मी और अपने पिता का ध्यान आता रहा, पश्चात् ख़नीज़ा के प्रेम के नशे में वह सब कुछ

भूल गया। उसने अब वली से, जिससे वह नित्य मिलता था, उनके विषय में पूछना भी छोड़ दिया। उसे अब बाहर जाने की लालसा भी नहीं रही थी।

एक सप्ताह सुख-स्वप्न की भाँति व्यतीत हो गया। सदा की भाँति मध्यान्ह के भोजन के उपरान्त ख़नीज़ा और वह, दोनों वली के सामने उपस्थित हुए। उसने इनसे मिलने का यह समय नियत कर रखा था। दोनो को अपने सम्मुख बैठा उसने पूछा। "सदाशिव बताओ! कुछ कष्ट तो नहीं?"

"हुज़ूर, बहुत आनन्द में हूँ।"

"तुम्हारे पिता का समाचार मिला है।"

"कैसे हैं वे?"

"ठीक हैं। लोग उनके पास पहुँचकर कह रहे हैं कि तुम जीवित नहीं हो। इससे कुछ फिकरमन्द हैं। मै समझता हूँ एक चिट्ठी लिख दो। इतने से काम चल जावेगा। लिखो कि तुम सब तरह से ठीक हो। अभी काम से फ़ुरसत नहीं। जल्दी आ जावोगे।"

सदाशिव ने पिता को हिन्दी में पत्र लिख दिया। पत्र वली साहब ने लेकर अपने पास रख लिया और कहा, "इससे कैसी पट रही है? कुछ दिक तो नहीं करती?"

"हज़रत! यह तो कहती है, कि मै इनसे विवाह कर लूँ।"

"और तुम क्या कहते हो?"

"मैं। मै तो इसका बेदाम का गुलाम हूँ। दिन-रात ये मेरे दिलो-दिमाग पर हकूमत करती हैं। दिन को तो ये हरदम मेरे साथ रहती हैं और रात को मेरे स्वप्नों मे मौजूद होती हैं।"

"तो तुम दोनो की शादी कर दी जावे?'

सदाशिव ने ख़नीज़ा की ओर घूमकर देखा। वह फर्श पर लकीरें खींच रही थी। सदाशिव ने घूमकर वली साहब की ओर देखा और

कुछ सोचकर कहा, "यदि पिता जी को यहाँ बुला सकता तो अच्छा होता।"

वली खिल-खिलाकर हँस पड़ा। उसने कहा, "वे तुम्हारे और ख़नीज़ा के विवाह को पसन्द नही करेंगे। वे हिन्दू पुजारी हैं।"

"तो मैं उनके बिना ही विवाह करूँगा।"

"हाँ। मै भी यही ठीक समझता हूँ। मैं उस रहीम करीम, रब्बुल आलमीन से इसकी बाबत हिदायत की इन्तजार में हूँ। आज रात उसके मिलने की उम्मीद है। इसके मुतल्लिक मै आपको कल बताऊँगा। सबर और उम्मीद के साथ इस खुदाई फरमान की इन्तज़ार करो।"

अगले दिन वली साहब ने खुदा का पैगाम अपने नाम सुना दिया। "वहाँ से खबर आई है कि सदाशिव का ख़नीज़ा के साथ विवाह कर दिया जावे और इनके लिए बम्बई में एक आलीशान मकान और अच्छी आमदनी का ज़रिया बना दिया जावे।"

सदाशिव ये सुन चकाचौंध रह गया। वह इन सब आनन्द और सुख की बातो को अभी समझ ही रहा था कि वली ने और कहा। "तुम लोगो की शादी परसो जुम्मे की नमाज के बाद कर दी जावेगी और उसके बाद तुम लोगो के लिए एक महीना भर बम्बई से बाहर रहने का बन्दोबस्त कर दिया जावेगा। तब तक बम्बई में तुम्हारे काम का इन्तजाम भी हो जावेगा।"

इस शुभ घड़ी को अब इतनी नजदीक पा दोनो आनन्द से पुलकित हो उठे और एक दूसरे की ओर देखने में इतने लीन हो गए थे कि उन्हें वली के वहाँ से उठ चले जाने की सुध नहीं रही। कितनी ही देर वे वहाँ बैठे रहे। फिर एकाएक दोनो चुम्बक और लोहे की भाँति आकर्षित हो एक दूसरे से चिपट गये। मन भरकर आलिंगन कर ख़नीज़ा ने सदाशिव की बाहों से अपने को छुड़ाते हुए कहा, "मैं बहुत खुश हूँ।"

"तभी छूटकर एक तरफ हो गई हो।"

"परसो तक इन्तजार करिए।"

"इन्तजार की घड़ियाँ बहुत लम्बी होती जाती हैं।"

"मगर कितनी मीठी है ये।".

"आज रात मै सो नहीं सकूँगा।"

"मतलब यह कि इन पुर लुत्फ लहमो का मजा लेते रहेंगे।"

"कितना अच्छा मालूम हो रहा है।"

"खुदा की महर है। मै तो यह कहती हूँ कि क्या शादी के पहले का यह वक्त ज्यादा पुर लुत्फ है या बाद का।"

सदाशिव ने उसे पुनः अपनी ओर खींच गले लगाना चाहा, परन्तु ख़नीज़ा चतुराई से दो कदम पीछे हटकर बोली, "अभी सब्र करिए।"

"बहुत मुश्किल हो रहा है।" इतना कह सदाशिव ने उसे पकड़ने को कदम बढ़ाया मगर वह भाग कमरे से बाहर हो गई।

नियत दिन नकाह पढ़ा दिया गया। और नकाह के बाद वली साहब ने सदाशिव को नोटो से भरा हुआ एक बटुआ और हवाई जहाज के दो टिकट दिये। फिर दोनो को आशीर्वाद देते हुए कहा, "मैंने तुम्हारे लिए हैदराबाद रियासत में भटिया गाँव मे रहने का इन्तज़ाम कर दिया है। ये टिकट तुम्हे सिकन्दराबाद पहुँचा देगे। वहाँ ख़नीज़ा की माँ गई हुई है। वे तुम्हें एयरोड्रोम पर लेने आएगी। एक महीना वहाँ ठहरने के बाद तुम बम्बई वापस आ सकोगे। तब तक तुम्हारा यहाँ सुख से रहने का बन्दोबस्त हो जावेगा।"

उसी सायं सदाशिव और ख़नीज़ा हैदराबाद पहुँच गये। एयरोड्रोम पर ख़नीज़ा की माँ और उसके साथ कुछ और लोग उनके स्वागत के लिए आए हुए थे। लोगों ने उनको फूलों की मालाएँ पहिनाईं। एयरोड्रोम के बाहर सात सीट की विलीज़ नाईट मोटर गाड़ी खड़ी थी। ख़नीज़ा की माँ ने अपनी लड़की और दामाद का

परिचय मोटर में ड्राइवर के स्थान पर बैठे आदमी से करा दिया और फिर मोटर में बैठे आदमी का परिचय कराया। "आप हैं भटिया के जमीन्दार के प्राइवेट सेक्रेटरी मिस्टर यार जंग एम० ए०।"

सदाशिव और ख़नीज़ा मोटर की पिछली सीट पर बैठ गए। खनीजा की माँ भी उनके पास बैठ गई। जमीन्दार के प्राइवेट सैक्रेटरी मोटर चलाकर भटिया ले गये। यह मोटर से हैदराबाद से तीन घंटे के फासले पर था। वहाँ उनकी बहुत आवभगत की गई।

खनीज़ा बहुत प्यारी लड़की थी और बहुत ही प्रिय बीवी सिद्ध हुई। दिन-रात प्रेम और भोग-विलास में व्यतीत होने लगे। ख़नीज़ा की माँ उनसे पृथक् रहती थी। वह उन्हें अधिक से अधिक समय परस्पर मेल-मुलाकात का देना चाहती थी। उसकी योजना सफल हो रही थी और वह इससे अति प्रसन्न थी।

भटिया के जमीन्दार दो सौ गाँवो के मालिक थे और उनके घर में रुपया पानी की तरह बरसता था। प्रतिदिन सायंकाल जमीन्दार अपनी बैठक में आता और अपनी प्रजा से भेंट करता और उसकी कठिनाइयों को सुनता। प्रति सायं जो भी वहाँ आ जाता उसके लिए खाने की मेज़ पर स्थान होता। उसकी अपनी प्रजा में से और बाहर से लोग निस्संकोच आते और जमीन्दार के साथ बैठ खाना खाते। कभी-कभी तो खाना खानेवाले सौ से भी ऊपर हो जाते, परन्तु कभी किसी को न नहीं की गई थी। सदाशिव नित्य जमीन्दार की बगल में बैठकर भोजन करता था। ख़नीज़ा उस समय औरतो में बैठकर खाती थी।

जमी दार वली इब्राहीम का एक मौतकिद मुरीद था। वह उसे औलिया समझता था। इससे उसकी आज्ञाओं को पा वह सदाशिव और ख़नीज़ा की सेवा-सुश्रुषा कर रहा था। इसके अतिरिक्त उसके घर में मेहमानो का बहुत आदर-सत्कार होता था।

सदाशिव को आस-पास के सब खूबसूरत स्थान दिखाए गये।

जंगल में शिकार खेलने ले जाया गया। वहाँ के खेल-तमाशे और देहाती नाच-रंग तो हर रोज रात को होते थे।

एक रात जब सदाशिव खनीजा को छाती से लगाए हुए उसकी सुन्दर आँखो को देख आनन्द-विभोर हो रहा था तो उसने पूछ "तुम्हे मै कैसा लगता हूँ प्रिये?"

"आप मेरे जिस्म की रुह हैं। मेरे पीर, मुरशिद, खुदा, क्या कहूँ, कुछ समझ नहीं आता, सब कुछ हैं।"

उसने खनीजा का मुख चूमकर कहा, "जानती हो, जब तुम यह सब कुछ कहती हो तो मेरे दिल की क्या हालत होती है?"

"क्या होती है?"

"तुम जैसी खूबसूरत नाजनीन को अपनी समझ, मेरा मन आनन्द से इतना भर जाता है कि इसमें मैं पागल हो जाता हूँ। मैं ऐसा अनुभव करने लगता हूँ कि मैं आसमान में उड़ रहा हूँ और मै कोई बहिश्त में रहनेवाला फरिश्ता हूँ। जब मुझे होश आती है तो मैं सोचने लगता हूँ कि क्यों मुझे यह सब कुछ नसीब हो रहा है। मैंने कौन-सा अच्छा काम किया है जो यह सब कुछ मुझे अनायास ही मिल रहा है।"

"हकीकत में यह मेरी खुशनसीबी है, जिससे हम दोनों की शादी हुई है। यह क्यों हुआ और कैसे हुआ एक अजीब कहानी है। जब मुझे बताया गया कि बली साहब ने मेरे लिए एक खाविन्द ढूँढ़ा है तो मैं समझी थी कि कोई मुल्ला-मौलाना कहीं से बुलाया गया है, मगर जब मैंने आपको देखा तो दंग रह गई।"

"यही तो हैरानी की बात है कि इतनी बड़ी दुनिया को छोड़कर मुझ गरीब को क्यो ढूँढ़ निकाला गया?"

"हजरत की मेहरबानी ही समझनी चाहिये। उन्होने ही आपको चुना है।"

"मै हैरान तो इस बात से हूँ कि तुम सी बहिश्त की हूर के लिए एक हिन्दू को क्यों चुना गया ?"

"इसमें राज है, मेरी अम्मी ।"

"अम्मी ? भला यह क्यों कर ?" सदाशिव ने खनीजा की आँखो में देखते हुए पूछा ।

खनीज़ा ने तिरछी नज़र देखते हुए कहा, "यह एक राज़ है ।"

"मेरे से भी खुफिया ?" सदाशिव ने उसे अपने और समीप खींचते हुए पूछा ।

"आप मे और मेरे में कोई छुपी बात नहीं है, मगर यह तो मेरी बात नही है ।"

"पर मेरी जान ! जो कुछ तुम्हारे मन में है वह मुझे बताने मे क्या हर्ज है । तुम और मै तो अब एक जान दो कालिब हैं न ?" इतना कह सदाशिव ने उससे गाढ़ आलिगंन किया और अति प्रम-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा ।

खनीज़ा ने विवश हो कहा, "यदि बता दूँ तो किसी से कहियेगा तो नहीं ?"

"मुझे तुम इतना बेवफा समझती हो क्या ?"

"और मुझ से मुहब्बत कम तो नहीं कर दोगे ?"

"मै तुम्हें बहुत प्यार करता हूँ खनीज़ा ! यह मुहब्बत छोटी-मोटी बातों के मातहत नहीं है । तुम मेरे लिए एक स्वर्गीय वस्तु हो । दुनियादारी की बातें हमारे सम्बन्ध को अब बिगाड़ नहीं सकतीं ।"

खनीज़ा ने एक बार और बात को टालने का यत्न करते हुए फिर कहा, "अच्छा, कभी फिर बताऊँगी ।"

"और जानती हो उतनी देर तक मेरे साथ क्या होगा ?"

"क्या होगा ?"

"मै नरक की आग मे जलता रहूँगा । सब समय मेरे मन में

यह ख्याल आता रहेगा कि मेरी बीवी के मन में कोई बात है जो वह मुझसे छुपा कर रखे हुए है।"

ख़नीजा ने कुछ सोचकर कहा, "बात तो मामूली है मगर कुछ लोग इसे बहुत तूल देते हैं। लीजिए बताती हूँ। हकीकत में हमारी शादी में, मेरी अम्मी ही वजह हैं। उनकी बात हज़रत टाल नहीं सकते और उन्हीं का यह राज़ है। मुझे जन्म देनेवाली वह हैं। मेरे इस खूब-सूरत जिस्म और दिलोदिमाग को तरबीयत देने वाली वह हैं और जो कुछ हजरत आपके लिए कर रहे हैं उसको करवानेवाली भी वही हैं।"

"सत्य ? तब तो मैं तुम्हारी माँ का बहुत आभारी हूँ।"

"और यह राज उन्हीं का है। वे बम्बई की एक मशहूर रक्कासा थीं। मैं अभी पाँच साल की बच्ची थी कि एक दिन मेरी माँ दरगाह में जियारत करने आईं। उर्स का दिन था और सैंकड़ों दूसरे गाने-बजानेवाली वहाँ आई हुई थी। मुझे उस दिन की बात याद है। सारा नज़ारा मेरी आँखों के सामने अब भी साफ मौजूद है। हम कुछ देरी से पहुँचे थे। बहुत से लोग वहाँ पहिले ही से बैठे थे। जब हम पहुँचे तो मक़बरे के अन्दर बैठे लोग हमारी इज्जत करने के लिए उठ खड़े हुए। इससे आप मेरी माँ की मशहूरी का अंदाज लगा सकते हैं। दरगाह के पीर वली, जो किसी के लिए खड़े नहीं होते और जिनकी इज्जत में सब खड़े होते हैं, वह भी हमारे आने पर खड़े हो माँ का इस्तकबाल करने लगे थे।

"उस रात मेरी माँ का गाना हुआ और नाच हुआ। सब वाह-वाह कर उठे और लोग मरहबा-मरहबा करने लगे। हज़रत ने और गाने को कहा तो माँ ने गाया। हज़रत ने नाचने को कहा तो माँ ने नाचा। इस तरह रात-भर मेरी माँ का नाच और गाना हुआ। अगले दिन नमाज और वाज के बाद हज़रत ने मेरी माँ को अपनी आरामगाह में बुलाया। वहाँ उनकी आपस में कुछ बातें हुईं और

हम हज़रत की आरामगाह में रहने लगे। हज़रत माँ की उँगलियों पर नाचते हैं। हज़रत मुझे अपनी लड़की की तरह प्यार करते हैं और उन्होंने मेरी तालीम और तरबीयत का इन्तजाम ऐसे ही किया है जैसे मै उनकी ही लड़की हूँ।

"जब मै पंद्रह साल की हुई तो मेरी माँ ने मेरी शादी का मसला छेड़ा। हजरत ने कई अपने मुरीदो के लड़के दिखाए, मगर मेरी माँ का कहना था कि वे मेरी शादी किसी हिन्दू से करेंगी। मै और आलि हज़रत इसे नहीं चाहते थे। इस पर मेरी माँ ने बताया कि मै एक बहुत बड़े हिन्दू गायक की लड़की हूँ। जब वे गाने-बजाने का काम करतीं थीं तो उनकी मुलाकात श्री केवलेश्वर राजवाड़े, जो अपने जमाने के चोटी के पक्के गानेवाले गायक थे, से हुई। एक उत्सव पर वे एक पद, 'रघुपति राघव राजा राम', गाने लगे तो इतने कमाल से गाया कि मेरी माँ उनके चरणो पर लोट-पोट हो गईं। वह उनसे संगीत सीखने लगीं और इससे दोनों मे ताल्लुकात बन गये और मेरा जन्म हो गया।

"मेरी माँ की ख्वाहिश थी कि मेरी शादी किसी हिन्दू से हो। मेरी तालीम मुझे इसलाम छोड़ने को नहीं कहती थी। इससे आप जैसे वसीह खयाल-शरीफ को ढूँढ़ा गया है। आपके मुतल्लिक हज़रत को कैसे पता मिला मै नहीं जानती। उनका कहना है कि खुदा ने उनको रोशनी बख़्शी है।"

सदाशिव यह कहानी सुन चकित रह गया। वली सूरत शक्ल से सत्तर वर्ष की आयु का मालूम होता था। उसका मतलब यह निकला कि साठ वर्ष की उमर मे ख़नीज़ा की माँ से उसने विवाह किया। इससे उसके मन मे ख़नीज़ा के लिए मान कम नहीं हुआ। उसने केवलेश्वर का नाम सुन रखा था और उसकी लड़की को अपनी स्त्री जान उसे कुछ खुशी ही हुई थी। उसने ख़नीज़ा से पूर्ण मन से प्यार कर कहा, "मेरी रानी। मुझे यह इतिहास सुन बहुत खुशी हुई है।

राजवाड़े एक बहुत प्रसिद्ध गायक हुए हैं। उनका खून मेरी सन्तान का खून होगा। मुझे इससे बहुत खुशी हुई है।"

[१५]

बम्बई फोर्ट एरिया में 'वली भाई करीम भाई' नाम की एक बहुत बड़ी कम्पनी देश से बाहर माल भेजने का काम करती है। सदाशिव को इस कम्पनी में उप-मैनेजर का काम करने को दिया गया। जिस इमारत मे इस क पनी का दफतर था उसी में एक फ्लैट में सदाशिव के रहने का प्रबन्ध कर दिया गया था।

एक दो दिन में जब सब प्रबन्ध हो गया और दफतर में काम चालू हो गया तो सदाशिव को अपने पिता की याद आई। उसने ख़नीज़ा से पूछा, "हम अब अपने घर में रहने लगे हैं। मेरी इच्छा है कि अपने पिता को भी यहाँ बुला लूँ। तुम्हारी क्या राय है?"

"मुझे डर लगता है।"

"किस बात से?"

"सुना है कि वह पुराने ख्याल के आदमी हैं। एक मन्दिर के पुजारी हैं। उन्हें एक मुसलमान लड़की को अपने लड़के की बहू देख खुशी नहीं हो सकती। उनकी नाराजगी का आपके ख्यालात पर क्या असर होगा, कह नहीं सकती।"

"मुझ पर किसी की खुशी और नाराजगी का कुछ भी असर नहीं हो सकता। तुम निडर रहो। मैं समझता हूँ कि यह भी निश्चय हो जाना चाहिए कि बाप का बेटे से प्रेम प्रबल है या प्राचीन रूढ़ियो से।"

"मैंने तो अब अपना सब कुछ आपको दे डाला है। मैं आपसे जुदा नहीं होना चाहती।"

"तुम डरो नहीं मेरी जॉन। मेरा तुमसे प्रेम बहुत ऊँचा है। यह कुछ ऐसी चीज है जिसका बीज भगवान की इच्छा से पैदा हुआ है। यह सांसारिक वस्तु नहीं है।"

उसी दिन सायंकाल दफतर के समय के पश्चात्, सदाशिव ने कम्पनी की मोटर पिता को लेने भेज दी। पंडित एकनाथ जब आया तो सदाशिव अपनी बीवी के साथ चाय पीने को तैयार बैठा था। एकनाथ के कमरे में आने पर सदाशिव उठा और उसके चरण स्पर्श करने को झुका। पिता ने पुत्र को उठा गले से लगा लिया। इस समय ख़नीज़ा ने भी चरण स्पर्श किये। पिता ने पूछा, "यह लक्ष्मी है, बेटा!"

"नहीं पिता जी। यह आपकी पुत्र-वधु है।"

एकनाथ ने उसे आशीर्वाद दिया और कहा, "सौभाग्यवती हो बेटी।"

सदाशिव ने पिता को बैठाकर उनके लिए चाय बनाते हुए कहा, "पिता जी। ऐसी अवस्था उत्पन्न हो गई थी कि विवाह के समय आपको बुला नहीं सका। इसके लिये क्षमा चाहता हूँ।"

"परन्तु बेटा! खुशीराम इत्यादि को तो इसके ले जाने की सूचना कर देनी थी। स्कूल का मामला था। बहुत बदनामी हुई है।"

"स्कूल का मामला? इसका स्कूल के साथ कोई ताल्लुक नहीं है। आप किसकी बात करते हैं?"

"यह लक्ष्मी है न! राने की बहन?"

"नहीं पिता जी। क्या वह स्कूल में नही है?"

"नही! तुम्हारे चले जाने के दूसरे दिन ही कुछ लोग स्कूल में पहुँचे और उसको उठाकर ले गए थे। उन्होने वह चिट्ठी दिखाई थी जो राधा ने तुम्हें उससे मिलने के लिए दी थी।"

"तब तो ग़ज़ब हो गया है। जरूर उन आदमियो की शरारत है जो मझे पकड़कर ले गए थे। मैं समझता हूँ कि मैं उनका पता कर सकता हूँ।

"यह तो पिता जी! ख़नीज़ा बेगम हैं। मेरा इनसे विवाह हुए एक मास से ऊपर हो गया है। यह बहुत अच्छी हैं। अब आपके आशीर्वाद से हमारा जीवन सफल हो जावेगा।'

जब सदाशिव ने अपनी स्त्री का नाम बताया था तब एकनाथ चाय का प्याला उठाकर पी रहा था। नाम सुन उसने प्याला मेज पर रख दिया और बड़े ध्यान से सदाशिव और लड़की का मुख देखने लगा। सदाशिव अपनी स्त्री की प्रशंसा कर रहा था परन्तु एकनाथ अपने क्रोध को भीतर ही भीतर पी रहा था। वह सोच रहा था कि कौन-सी विवशता आन पड़ी थी जो इसने एक मुसलमान लड़की से विवाह कर लिया है। उसे लड़की का सौंदर्य ही ऐसा प्रतीत हुआ था जिस कारण सदाशिव इस पातकी कार्य के लिए पथ-भ्रष्ट हुआ हो। उसके विचार में सौन्दर्य और जिसे वह धर्म समझता था, परस्पर कुछ तुलना नहीं रखते थे। धर्म के सम्मुख शारीरिक सौन्दर्य की कोई कीमत नहीं थी। परन्तु वह गम्भीर हो बैठा रहा और अपने मन के भावों को प्रकट नहीं होने दिया। सदाशिव ने समझा कि उसके काम को खराब नहीं माना गया। इससे वह अपनी बात कहता गया। "उस रात मुझे कुछ लोग पकड़कर ले गए और उन्होंने ऐसी जगह पर ले जाकर रखा जहाँ इनको और इनकी माँ को मेरी सेवा करने का काम मिला। हम एक दूसरे से मिले और परस्पर प्रेम करने लगे। परिणाम यह हुआ कि हमारा विवाह होना आवश्यक हो गया। विवाह हुआ और हम एक मास के लिए सैर करने बाहर चले गए। हमें वापस लौटे सिरफ दो दिन हुए हैं। यह नई जगह थी और नौकरी जो मुझे मिली है वह भी मेरे लिए सर्वथा नई वस्तु है। इस कारण सब प्रबन्ध करने मे दो दिन लग गए हैं।

"अब आपके लिए यह बगल का कमरा सजाया गया है। इसमें आपके आराम का पूरा प्रबन्ध कर दिया है। हमारी इच्छा है कि आप मन्दिर का काम किसी और को सौंपकर यहाँ आ जाइये। हमें अपनी इस अवस्था में सेवा-सुश्रुषा करने का अवसर दीजिए।"

एकनाथ के दिमाग में एक बवण्डर उठ रहा था। वह अपने क्रोध का प्रदर्शन इतने दिन के पश्चात्, पहिली बार मिलने पर करना नहीं

चाहता था। यदि वह कुछ न कहता तो सदाशिव अपनी कथा कहता जाता, परन्तु एकनाथ ने उसे और कहने से रोक कहा, "मैं यहाँ आकर नहीं रह सकता। मुझे मन्दिर का काम इतना प्रिय है कि उसे मरने से पहिले छोड़ना नहीं चाहता।"

"पर पिता जी!" सदाशिव ने गम्भीर हो कहा, "आखिर उससे कितनी आय होती है जो मरण-पर्यन्त उसे करते रहना चाहते हैं?"

"तो क्या तुम मन्दिर को कोई साहुकार की दूकान समझते हो? यह आमदनी का काम नहीं है। देखो सदाशिव! यदि मुझे सुख और आनन्द भोग करना होता तो मै मन्दिर के पुजारी का काम बहुत पहिले छोड़ चुका होता। तुम्हारे पालन-पोषन मे जो कष्ट उठाना पड़ा है, वह न होता।"

"आखिर सुख और आराम तो हर एक को चाहिए। जहाँ से वह प्राप्त हो वही तो करना चाहिये न?"

"कभी-कभी सुख और आराम को तिलाजली देकर भी कुछ काम करने पड़ते हैं। देखो, तुम तब दो वर्ष के बच्चे थे जब तुम्हारी माँ का देहान्त हुआ था। यदि मै उस वक्त अपने आराम और सुख का ध्यान करता तो दूसरा विवाह कर लेता और तुम्हारी जिन्दगी खराब कर देता। तुम्हारे प्रेमवश मैंने अपने सुख को नमस्कार कहा और तुम्हारे पालन-पोषण में लग गया। इसी से मै कहता हूँ कि दुनिया मे भोग-विलास ही केवल नही रह गए। इनके अतिरिक्त भी कुछ बातें हैं जिनका करना मनुष्य को प्रिय होता है।"

"तो आप मेरे आराम और सुख के लिए इस प्रयास को पसन्द नहा करते?"

"मैने यह नहीं कहा, मेरे कहने का केवल-मात्र यह अभिप्राय है कि मुझे मन्दिर का काम तुम्हारे इस महल में रहने से अधिक प्रिय है। यह सब तुमको तुम्हारी सुसराल से मिला है क्या?"

"जी हाँ।"

' अच्छी बात है, मुझे इससे दुख नहीं होता, हाँ शोक बहुत हो रहा है। मै नहीं जानता कि तुमने इस सबके लिए कितना दाम चुकाया है ?"

"दाम-वाम कुछ नहीं दिया। ये सब तो इनके खानदान से सम्बन्ध बनने पर अपने-आप ही हो गया है।"

"बहुत अच्छी बात है। तो लो अब मैं चला।"

"पिता जी चाय नहीं पीजिएगा क्या ?"

"नहीं। इस चाय का दाम मुझे क्या देना होगा, मै अनुमान नहीं लगा सका। इससे न पीनी ही अच्छी है।"

यह कह एकनाथ उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़ नमस्कार कर कमरे के बाहर निकल आया।

सदाशिव उसके पीछे-पीछे बाहर निकल आया और पिता को मकान के बाहर तक छोड़ने आया। चलते-चलते कहने लगा, "फिर कब आइयेगा ?"

"जब जरूरत होगी आ जाऊँगा। क्यों, इजाजत लेने की तो जरूरत नहीं पड़ेगी ?"

"अच्छी बात तो। हम आपसे मिलने आवेगे।"

"वहाँ मत आना।"

"क्यो ?"

"वह मन्दिर है। उसके भगवान मालिक हैं। बिना उनकी इच्छा के तुम्हें उनके घर जाना ठीक नहीं।"

यह कह एकनाथ, जो अब सड़क पर आ गया था, पैदल ही चल पड़ा।

यह देख सदाशिव ने कहा, "पिता जी ! मोटर जो है ?"

"नहीं, इसकी जरूरत नहीं।"

"तो घोड़ा-गाड़ी कर देता हूँ।"

"नहीं मेरे पास इतना दाम नहीं है। अगले चौराहे पर 'बस' मिल जावेगी।"

[१६]

एकनाथ घर जाने के स्थान खुशीराम के मकान पर जा पहुँचा। खुशीराम अपनी स्त्री और बच्चों के साथ पिक्चर देखने जा रहा था। एकनाथ को आते देख सब रुक गये। उसने उनको इस प्रकार इकट्ठे जाते देख कहा, "मै ठीक समय पर नहीं आया न?"

"हम एक सिनेमा शो देखने जा रहे थे। कोई आवश्यक काम है क्या?"

"केवल इतना कहने आया हूँ कि सदाशिव आ गया है। एक मुसलमान लड़की को विवाह लाया है।"

"मन्दिर में ले आया है?"

"नहीं! फोर्ट एरिया में "वली भाई करीम भाई" की दुकान के ऊपर एक आलीशान मकान में ठहरा है। कहता है कि ससुराल से मिला है।"

"तो आप उससे लड़ आये हैं?"

"लड़ तो नहीं आया। हाँ! उससे तिनका तोड़ आया हूँ।"

"तो अच्छा नहीं किया आपने।"

"तो क्या करता?"

"अच्छी बात! मैं आपसे फिर मिलूँगा। परिस्थिति को तनिक सोचने की आवश्यकता है।"

जब एकनाथ चला गया तो खुशीराम ने राधा से कहा, "न जाने इन रुढ़ीवादियों को कब समझ आवेगी। हिन्दुओं को आय करने की तरकीब नहीं आती। ये सदा खर्च करना ही जानते हैं।"

राधा लक्ष्मी की बाबत सोच रही थी। उसने पूछा, "पर लक्ष्मी का क्या हुआ है?"

"हमारा अनुमान ठीक ही निकला है। वह निश्चय मन्नू से हरी गई है।"

"पर उसे ढूँढ़ें कहाँ?"

रातभर राधा और खुशीराम सोचते रहे कि यह हुआ क्या? उन्हें केवल एक बात ही समझ आ रही थी। वह यह कि सदाशिव ने इस मुसलमान लड़की से लक्ष्मी का अदला-बदला कर लिया है। इसे वह भारी घृणित काम समझते थे। अतएव दोनो का यह निश्चय हुआ, कि अगले दिन वे सदाशिव से मिलने जावें।

सदाशिव को अपने पिता के व्यवहार से बहुत दुख हुआ था। खनीज़ा अपने श्वसुर के विरोध को भली भाँति समझती थी। जब सदाशिव पिता को बाहर छोड़कर भीतर लौटा, तो खनीज़ा ने कहा, "मैने कहा न था?"

"मै उनमे यह उम्मीद नहीं रखता था।"

"अब क्या होगा?"

"कुछ नहीं। मेरा तुम्हारे से सम्बन्ध अटूट है। जहाँ तक हमारा आपस का ताल्लुक है, कायम रहेगा। मै समझता हूँ कि पिता जी शीघ्र ही मान जावेगे।"

अगले दिन जब खुशीराम और राधा उससे मिलने गए तो खनीज़ा की माँ उनसे मिलने आई हुई थी। सदाशिव उनको अपने विरोधी-पक्ष में समझता था। इससे उनका स्वागत कर सतर्क हो उनके आने का कारण जानने के लिए मुख देखने लगा। बात खुशीराम ने आरम्भ की। "कल आपके पिता जी हमसे मिले थे। उनसे पता चला है कि आपका विवाह हो गया है। सो हमने विचार किया कि बधाई दे आवे। बताइये, यह किस प्रकार हो गया? आपने यह सब चोरी-चोरी क्यों किया?"

राधा बीच में ही बोल उठी, "और क्या बीवी को नहीं दिखाइयेगा? क्या आपने उसे पर्दे में रखा हुआ है?"

"नहीं। उनकी माँ भी आई हुई हैं। इस कारण उनसे बाते कर रही हैं।"

"तो उनके भी दर्शन करा दीजिए।"

"परन्तु बुलाने से पूर्व आपको यह बता देना चाहता हूँ कि वे मुसलमानिन हैं। कल पिता जी आये तो उसका अपमान हो गया। यह ठीक नहीं हुआ। मैं इसका दुहराया जाना नहीं चाहता।"

"सदाशिव जी! वे पुराने विचारों के आदमी हैं। उनकी बात छोड़िए। हमसे आपको वैसी बात की आशा नहीं करनी चाहिए। जब एक मुसलमानिन ने आपकी बीवी बनना स्वीकार किया है तो यह एक हर्ष की बात ही तो हो सकती है।"

राधा के मुख से यह बात सुन सदाशिव विस्मय में देखता रह गया। उसे इनके इतने उदार होने की आशा नहीं थी। इस पर भी वह नि.शंक नहीं हुआ। उसने कहा, "इसके लिए मैं आपका धन्यवाद करता हूँ। फिर भी यदि आपको कोई बात पसन्द न हो तो सभ्य व्यवहार के नाते किसी दूसरे को दुखी करना उचित नहीं।"

सदाशिव के इस विनम्र निवेदन से खुशीराम बहुत लज्जित हुआ। उसने भी अपनी स्त्री की बात का समर्थन करते हुए कह दिया, "भाई साहब! आप जानते नहीं कि यह कौन हैं। इसी से इस प्रकार का संदेह कर रहे हैं। मै आपको एक रहस्य की बात बताता हूँ। यह राधा देवी भी एक मुसलमान की लड़की हैं। इनका बचपन का नाम रहीमन था और अब ये राधा देवी हैं। इनसे आप यह आशा नहीं कर सकते कि ये किसी का इस कारण अपमान करेंगी या अपमान होता देखेंगी, कि वह मुसलमान की सन्तान है।"

सदाशिव के लिए यह एक अनोखी बात थी। वह जानता था कि राधा देवी लक्ष्मी को मुसलमान होने में बाधा खड़ी कर रही थीं। इससे उसने विस्मय में पूछा, "सत्य? यदि यह सत्य है तो बहुत विचित्र है।"

"मुझे तो इसमें कोई विचित्रता प्रतीत नहीं होती। हमारे में परस्पर कभी झगड़ा अथवा मनोमालिन्य नहीं हुआ। प्रेम और एक दूसरे पर भरोसा, संसार की सब समस्याओं को सुलझा देता है। यदि स्वीकृति दें तो मैं भीतर चली जाऊँ?"

"नहीं, नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। मैं स्वयं उन दोनों को बाहर ले आता हूँ।"

इतना कह सदाशिव वहाँ से उठ भीतर चला गया। खुशीराम और राधा चुपचाप अपने-अपने मन के भावों पर विचार करते रहे। सदाशिव को बाहर आने में देर लगी। इससे खुशीराम ने समझ लिया कि सदाशिव की स्त्री ने सदाशिव के पिता के व्यवहार को बहुत अनुभव किया है और वह अब अपने पति के मित्रों के सम्मुख आना नहीं चाहती। उसने अपने मन मे निश्चय कर लिया था कि कोई अनियमित बात नहीं करेगा। सभ्यता के अपने गुणों को छोड़कर भी उनका लक्ष्मी को ढूँढ़ने का काम परस्पर विश्वास से ही सम्पन्न हो सकता था।

कितनी ही देर के बाद सदाशिव, ख़नीज़ा और उसकी माँ तीनों बाहर आए। खुशीराम और राधा ने उठकर उनका स्वागत किया। सदाशिव की सास ने इनको आदर से बैठाया। राधा और ख़नीज़ा समीप-समीप बैठ गईं। खुशीराम के एक ओर ख़नीज़ा की माँ और दूसरी ओर सदाशिव बैठ गया। राधा ने बहुत प्रेम-भाव से ख़नीज़ा को अपना इतिहास सुनाया और उसके मन पर यह अंकित करने का यत्न किया कि उसके पति ने कोई बुरी बात नहीं की।

"पर इनके पिता जी क्यों नाराज होकर चले गए हैं?"

"वे पुराने विचार के आदमी हैं और फिर बड़ी आयु के हैं। उनकी बातों पर नाराज होने की आवश्यकता नहीं।"

दूसरी ओर खुशीराम, सदाशिव और ख़नीजा की माँ से बात-चीत कर रहा था। वह कह रहा था, "सदाशिव, तुम बहुत भाग्यवान हो जो इतनी सुन्दर स्त्री मिली है। और फिर इनको क्या कहूँ। सुन्दर वस्तु के निर्माता की यदि प्रशंसा होनी चाहिए तो आपकी क्यो न की जाए?"

"शुक्रिया," ख़नीज़ा की माँ ने कहा, "पर यह ख़ुदा की क़ुदरत है। इसमें इन्सान की करनी से कुछ नहीं होता। उस परवरदिगार की

रहमत से ही हमें सब कुछ नसीब होता है। हमें उसी का शुकर-गुजार होना चाहिये।"

"यह तो है ही। फिर भी खुदा तो सब के लिए रहीम और करीम है। इस पर भी सब न तो खूबसूरत होते हैं न ही सभ्य, सुशील और समझदार। आखिर यह भेद-भाव तो हमारी करनी से ही उत्पन्न हो सकते हैं।"

"भला एक आदमी का खूबसूरत होना और दूसरे का बदसूरत होना किस तरह हमारे अपने बस की बात है? एक ही माँ-बाप की दो सन्तान एक जैसी सूरत शक्ल की नहीं होतीं।"

"आपकी यह दलील बड़ी जबरदस्त है। इस पर भी वैज्ञानिकों ने इसे समझाने का यत्न किया है। उनका कहना है कि जिसमानी और दिमागी बनावट खानदान की कई पीढ़ियों के अमालों (कर्मों) का नतीजा होते हैं। इसी से हम हिन्दू लोग वर्ण-व्यवस्था और परम्परा को मानते हैं। खैर, छोड़िये इस बात को। यद्यपि सदाशिव और हमारे विचार नहीं मिलते इस पर भी हमे इनके इस विवाह से बहुत खुशी है। यह एक विस्मयजनक घटना हुई है कि एक धनी परिवार की लड़की और उस पर इतनी खूबसूरत होने पर भी एक गरीब ब्राह्मण के लड़के से खुशी-खुशी विवाह दी गई है।"

इस पर खनीज़ा की माँ मुस्कराई और पूछने लगी, "इसमें आपको हैरानी क्यों हुई है? मुहब्बत एक बहुत बड़ी ताकत है। इसको किसी भी ख्याल से पसपाह (परास्त) नहीं किया जा सकता। जब यह सिर पर सवार होती है तो बड़ो-बड़ो के हवास बाख़ता कर देती है।"

"तो इसका मतलब यह हुआ कि सदाशिव आपकी लड़की से मुहब्बत करने लगा था। मुझे यह मालूम नहीं था कि पंडित जी महाराज इतने मनचले हो सकते हैं कि एक इतनी खूबसूरत लड़की से प्रेम करने का साहस कर सकते हैं। बहुत काल से दोनों का परिचय प्रतीत होता है। क्या दोनों एक ही स्कूल या कॉलेज में पढ़ते थे?"

"नहीं यह बात नहीं ! मेरी लड़की तो किसी स्कूल या कॉलेज में नहीं पढ़ी। जो कुछ भी यह पढ़ी है सब घर पर ही पढ़ी है।"

"तो इसका मतलब यह हुआ कि आप लोगों ने उसे लड़की के सम्पर्क में लाकर प्रेम की भावना उत्पन्न कर यह सब कुछ कराया है।"

"तो आपको यह पसन्द नहीं है क्या ?"

"आपका उद्देश्य कुछ भी हो परन्तु फल अच्छा ही हुआ है। हमें इससे प्रसन्नता हुई है।"

"हम आपके निहायत मशकूर हैं।"

"हम तो आपकी फराख दिली (उदारता) से बहुत प्रसन्न हैं। आपने जब लड़की के लिए वर ढूँढ़ने का यत्न किया तो एक हिन्दू को पसन्द कर लिया। हमें इसमें अपने देश का उज्वल भविष्य छुपा प्रतीत होता है।"

"काश कि यह बात आज से कुछ साल पहिले हो सकती।" ख़नीज़ा की माँ ने एक लम्बी साँस खींचकर कहा।

"कई कारणों से ऐसा नहीं हो सका। इसमें मुसलमानो का अनाचार एक भारी कारण था। हमारे देश में किसी औरत पर इसलिए बलात्कार कभी नही किया गया था कि वह किसी भिन्न मतानुयायी की लड़की है। ऐसे उदाहरण तो मिलते हैं जब किसी कामांध मनुष्य ने किसी सुन्दरी पर बलात्कार किया हो, परन्तु भिन्न मत का होना बलात्कार में कारण नहीं हुआ। यह बात मुसलमानों ने यहाँ पर चलाई और इसका स्वाभाविक परिणाम यहाँ के लोगों मे मुसलमानों के लिए घृणा का उत्पन्न होना हुआ।"

ख़नीज़ा की माँ इतिहास की इन बातो को नहीं जानती थी। इससे वह चुप रही, परन्तु सदाशिव इसमें चुप नहीं रह सका। उसने कह ही दिया, "इस परस्पर की घृणा में हिन्दुओं का भी तो भारी दोष है।"

"हाँ। एक बात में उनको भी दोषी कहा जा सकता है। यदि उस समय के हिन्दू संगठित होकर मुसलमानों के आक्रमण का विरोध

करते तो न यहाँ मुसलमानों का राज्य होता न ही परस्पर घृणा का भाव उत्पन्न होता।"

"उस समय के ब्राह्मण भी तो संसार के सब लोगों को नीच समझते थे।"

"इस पर भी वे अपने से नीच लोगो की स्त्रियो पर बलात्कार करते हो, नहीं सुना गया।"

इस समय राधा ने अपने पति की ओर देखकर कहा, "देखिए, ख़नीज़ा बहिन ने मेरा निमंत्रण स्वीकार कर लिया है। अगले रविवार दोपहर के बारह बजे ये आवेगी। खाना हमारे यहाँ होगा।"

"बहुत धन्यवाद है इनका। सदाशिव जी आप भी अवश्य आइयेगा।"

"हाँ, अगर ये मुझे ले चलेंगी तो।"

"तो आपके लिए मैं इनसे प्रार्थना कर दूँ?"

चाय का समय हो गया था। सदाशिव ने पूछा, "चाय मँगवाऊँ?"

"तो क्या इसके लिए हमें किसी और स्थान पर जाना चाहिए?"

"नहीं, मैं अभी इन्तजाम किये देती हूँ।" ख़नीज़ा ने कहा और उठकर रसोई घर में चली।

राधा उठकर उसके साथ भीतर चली गई और चाय बनाने में उसकी सहायता करने लगी। राधा ने देखा कि ख़नीज़ा काम करने में बहुत चतुर है। इससे उसने पूछा, "मालूम होता है कि घर में आपको सब प्रकार का काम करने का ढंग सिखाया गया है।"

"मैं और माँ अपना और अपने मेहमानो के खाने वगैरा का काम खुद करती थीं।"

"आपके पिता जी क्या करते हैं?" यह प्रश्न राधा ने तीसरी बार पूछा था और सब बार ख़नीज़ा ने बात बदल, टाल

दिया था। इस बार वह विवश हो गई। उसने कह ही दिया, "वे नहीं रहे।"

"ओह ! उनकी मृत्यु हो चुकी है ?"

"जी हाँ।"

"आपकी माँ कहाँ रहती हैं।"

"दरगाह मे।"

राधा ने प्याले और पिरचो को कपड़े से साफ करते हुए बे-ध्यान में पूछ लिया, "कौन दरगाह ?"

"पीर शाह मुराद की दरगाह मे।"

राधा यह सुन विस्मय में लीन हो गई और बोल नहीं सकी। इस पर भी अपने मन को अपने काबू में रखकर अपने काम में लगी रही। ख़नीज़ा को यह समझ ही नहीं आया कि उसने कोई रहस्य की बात बता दी है और उस रहस्य को सुननेवाली मन-ही मन बहुत प्रसन्न हो रही है। राधा ने इस सूचना के पाने से, हुए विस्मय को भीतर ही भीतर दबाकर, अपने को काबू में कर लिया और गरम पानी को चाय-दानी मे डालते हुए कहने लगी, "वहाँ रहने के, शायद, अच्छे मकान मिलते हैं ?"

"सबको नहीं। माँ वहाँ के पीर की मोतकिद (भक्तिनी) हैं, इससे ये वहाँ रहती हैं और हजरत पीर साहब ने उनके लिए एक वसीह मकान दे रखा है।"

चाय तैयार हो गई थी और ख़नीज़ा ने आलमारी से, साथ खाने के लिए, बिस्कुट और केक निकाल लिए थे। सब सामान ट्रे में रख लिया गया और ख़नीज़ा उठाकर बाहर ले आई। राधा भी उसके साथ बाहर चली आई।

चाय पीने के पश्चात्, खुशीराम और राधा ने विदा माँगी और अगले रविवार की फिर याद दिलाकर वहाँ से विदा हो गए।

घर पहुँच राधा ने दरगाह वाली बात बताई। खुशीराम ने बात सुन कहा, "तुमने तो बहुत मार्के की बात मालूम कर ली है। अब हमें लक्ष्मी के ढूँढ़ने में एक स्रोत और मिल गया है।"

"यह काम जान-जोखम का होगा।" राधा ने गम्भीर होते हुए कहा।

"खतरा तो सिर लेना ही होगा। इसके बिना काम नहीं चल सकता। मै आज ही महावीर-दल के लोगों से कहूँगा।"

प्रकाश की ओर

[१]

चेतनानन्द ने अपने पिता का घर छोड़ा तो सराजदीन बैरिस्टर के घर डेरा डाल दिया। उसने बैरिस्टर साहब से यह नहीं बताया कि वह अपने पिता का घर सदैव के लिए छोड़ आया है। सराजदीन उसका पार्वती से विवाह न हो सकने की घटना को जानता था और उससे पूरी सहानुभूति रखता था। इससे जब उसने कहा, "दोस्त, अब तो घर में रहने को दिल नहीं करता" तो सराजदीन ने उसके गले में बाँह डालकर कहा, "इन औरतों के लिए अफसोस करना ठीक नहीं। आदमी ने तो संसार में बहुत काम करना होता है। उसके लिए मुहब्बत घर पर आकर दिल-बहलावे का एक बहाना-मात्र होती है। अगर वह भी औरतों की भाँति इसके लिए काम-काज छोड़ बैठे तो तमाम दुनिया तबाह हो जावे। देखो मिस्टर आनन्द, हम, जो राजनीति के अन्दर दखल रखते हैं, इस किसम की घरेलू बातों पर अपनी जिन्दगी बरबाद नहीं कर सकते।

"तुम कुछ दिन हमारे यहाँ रहो। तब तक असेम्बली की बैठक आरम्भ हो जावेगी और करने को काम इतना हो जावेगा कि इन फिजूल की बातों पर सोचने की फुरसत ही नहीं रह जावेगी।"

चेतनानन्द उसी के घर रह गया। इस समय एक घटना घटी। मुमताज की बहिन नसीम, बहिन के पास कुछ दिन रहने के लिए आ गई। नसीम अभी क्वाँरी थी। उसने उसी वर्ष बी० ए० पास किया था। वह लाहौर सैर करने आई थी और चेतनानन्द बेकार था। दोनों को परस्पर मिलने का बहुत अवसर मिलने लगा। नसीम ने शालिमार बाग देखने जाना होता तो चेतनानन्द ले जाने के लिए

तैयार हो जाता। यदि उसने जहाँगीर का मक़बरा देखना होता तो चेतनानन्द को साथ जाने की फ़ुरसत होती। कभी अजायब-घर, कभी चिड़िया-घर, कभी लारेंस गार्डन और कभी घुड़-दौड़। अभिप्राय यह कि हर समय चेतनानन्द और नसीम इकट्ठे होते। प्रायः ऐसे समय, चेतनानन्द साथ जाने के लिए खाली होता और बैरिस्टर साहब और मुमताज़ को कुछ न कुछ काम हो जाता।

नसीम आठ-दस दिन तक लाहौर रही और इतने दिनो में उसका चेतनानन्द से परिचय बहुत घना हो गया। जाते समय नसीम ने चेतनानन्द से दिल्ली सैर करने जाने का वचन ले लिया।

कुछ दिनों में दिल्ली में 'आल इंडिया कांग्रेस कमेटी' का अधिवेषण होने वाला था, और चेतनानन्द ने उन दिनों दिल्ली जाने का निश्चय कर लिया। मुमताज़ और नसीम के मायके दिल्ली में थे। उनके पिता पुराने कांग्रेसी कार्यकर्त्ता थे। वे सन् १९२१ के आन्दोलन में जेल-यात्रा कर चुके थे। उनके लड़के नज़ीर अहमद विलायत से डाक्टरी पास कर आए थे और दिल्ली सिविल लाईन्ज़ में, चिकित्सा-कार्य करते थे। इस समय पिता का देहान्त हो चुका था। बड़ी बहिन मुमताज़ का विवाह लाहौर मे हो चुका था और छोटी बहिन नसीम लाहौर से चेतनानन्द से अपना मन मेलकर आई थी।

नसीम दिल्ली में सार्वजनिक कामो में बहुत भाग लेनेवाली लड़की थी। कांग्रेसी क्षेत्र में उसकी जान-पहिचान बहुत ज्यादा थी और उससे विवाह के इच्छुक कई नवयुवक उसके आगे-पीछे चक्कर काटते रहते थे। इनमें सबसे मनचला एक कबीरुद्दीन नाम का, हकीम असगर हुसैन का लड़का, जिसने नसीम के कॉलेज से ही एम० ए० किया था, हर रोज उससे मिलने आता रहता था। जब नसीम लाहौर गई हुई थी तब भी वह उसकी टोह लेता रहता था। उसे नसीम के लाहौर से आने का पता मिला तो वह स्टेशन पर उसके स्वागत के लिए जा पहुँचा। नसीम उसे प्लैटफार्म पर खड़ा देख आशा के विरुद्ध

प्रसन्न नहीं हुई। उसने गाड़ी से उतरते ही कबीरुद्दीन को अपनी ओर आते हुए देख मुख मोड़ लिया। वह जब उसके पास पहुँचा तो नसीम ने ऐसे मुख मोड़े हुए कुली को आवाज दी जैसे उसने उसे देखा ही नहीं। कबीरुद्दीन ने आवाज दी, "हुजूर! बंदा हाजिर है और साथ नौकर भी लाया है।"

"ओह! आप हैं! मैं आपके आने की उम्मीद नहीं करती थी।"

"क्यों?"

"आपको बताया किसने कि मैं आज आ रही हूँ?"

"आपकी खुशबू ने, जो पहिले आ गई थी।"

"जरा तहजीब से बात करिए। यह प्लैटफार्म है, एक पबलिक जगह है।"

"ओह! भूल हो गई सरकार!" उसने अपने नौकर की ओर देखकर कहा, "ओ दीन, यह मेमसाहब का असबाब उठा बाहर ले चलो।"

नौकर जब असबाब उठाने लगा तो नसीम ने कह दिया, "रहने दो, इसे कुली उठायेगा।"

कबीरुद्दीन चुप रहा। कुली ने असबाब उठाया तो नसीम उसे लेकर स्टेशन से बाहर निकल आई। कबीरुद्दीन और उसका नौकर उसके पीछे-पीछे बाहर चले आये। नसीम ने टैक्सी भाड़े पर की और सवार हो अपने भाई के घर को चली गई। कबीरुद्दीन इतनी जल्दी हार माननेवाला नहीं था। वह अपनी मोटर में सवार हो उसके पीछे नसीम के घर जा पहुँचा। नसीम ने बिना उसका ख्याल किए, उसे मकान के ड्राइंगरूम में छोड़ अपने कमरे में चली गई। गुसल वगैरा से छुट्टी पा और नाश्ता कर बाहर आई तो कबीरुद्दीन को अभी भी वहाँ बैठे देख माथे पर त्योरी चढ़ा पूछने लगी, "कबीर साहब, क्या बात है? आपको भाई साहब से काम है कुछ?"

"नहीं, मुझे आपसे काम है।"

"तो फरमाइये", नसीम ने उसके सामने सोफा पर बैठते हुए पूछा।

कबीरुद्दीन ने उसकी आँखों की ओर देखते हुए कहा, "जब आप लाहौर तशरीफ ले जा रही थीं तो क्या आपकी आँखो न मुझे धोखा दिया था ?"

"आपने उनमें क्या देखा था ? जब तक मुझे यह न मालूम हो, तब तक कैसे मैं इस सवाल का जवाब दे सकती हूँ ?"

"मैंने उनमें मुहब्बत की झलक देखी थी।"

"आपने ठीक देखा था, लेकिन वह मुहब्बत आपके लिए नहीं थी। यह आपको किसने बताया है कि वह झलक आपके लिए थी। देखो कबीर साहब, अब आपको यह समझ लेना चाहिए कि हम बच्चे नहीं रहे। मेरी सगाई हो गई है और तुमको अब अपना काम-धंधा देखना चाहिए।"

"आपकी सगाई हो गई है ? किससे ?"

"आपसे नहीं। वे कौन हैं, यह आपके जानने की बात नहीं। अब आप जा सकते हैं।"

"इतनी जल्दी नहीं, बेगम साहिबा। आपने मेरे साथ क्या-क्या वायदे किए थे ? उन सबका क्या हुआ ? आखिर मैंने जो आप पर इतना कुछ खर्च किया है, उस सबका क्या होगा ?"

"वह सब गया भाड़ मे। तुम उसको किस लिए खर्च कर रहे थे ? क्या वह मुझे शादी के लिए रिश्वत दी जा रही थी ?"

कबीरुद्दीन इन बातो को सुन भौचक खड़ा रह गया। उसे नसीम में इतनी जल्दी परिवर्तन होता देख बहुत विस्मय हुआ। वह समझ नहीं सका कि अब क्या करे। अतएव चुपचाप उठा और कोठी के बाहर निकल गया।

[२]

चेतनानन्द जब दिल्ली आया तो नसीम के भाई के घर ठहरा। लाहौर की भाँति यहाँ भी नसीम चेतनानन्द के साथ-साथ घूमती रहती

थी। यद्यपि यह घोषित नहीं हुआ था, तो भी दोनों का विवाह हो जाना अब स्वाभाविक ही प्रतीत होने लगा था। नज़ीर अहमद को भी यह बात स्पष्ट हो चुकी थी कि इनका विवाह होगा।

कांग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक हुई और उसके अगले दिन आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी की बैठक थी। कैबिनेट मिशन की बातों को मान लिया गया। इनमें सबसे अधिक खटकनेवाली बात थी भारत को तीन स्वतंत्र भागों में बाँटना। इस पर आल इंडिया कांग्रेस कमेटी के सदस्यों में गरमागरम वाद-विवाद चल रहा था। कुछ सदस्यों का विचार था कि इस योजना से तो वास्तव में देश का विभाजन हो ही गया है। दूसरे लोगो का विचार था कि इस योजना से देश में पाकिस्तान, अर्थात् मुसलमानी हकूमत स्थापित होने से बच गई है। इस दूसरे विचार के लोग इस बात के लिए बहुत चिन्तित थे कि मुसलिम लीग ने अभी तक कैबिनेट मिशन की योजना को क्यों स्वीकार नहीं किया?

चेतनानन्द नसीम के साथ दर्शनीय स्थानों को देखने जाने में इतना व्यस्त था कि उसका ध्यान देश की उक्त विषम समस्याओं की ओर जा ही नहीं रहा था। सायंकाल वे दोनों "हौज़ खास" पर पिकनिक कर आये, तो नज़ीर अहमद, नसीम के भाई ने, चेतनानन्द को मुबारिकबाद दी। चेतनानन्द ने विस्मय में उसका मुख देखते हुए पूछा, "क्या हुआ है दादा?"

"वर्किंग कमेटी ने कैबिनेट मिशन की योजना को स्वीकार कर लिया है।"

"सत्य ही यह मुबारिकबादी की बात है।" चेतनानन्द ने प्रसन्न हो कहा।

"मगर", नसीम ने कहा, "मुसलिम लीग तो इसको नहीं मान रही।"

"यही तो खुशी की बात है।" चेतनानन्द का कहना था। "अब

तो अँग्रेजों पर यह बात वाज़ा हो जावेगी कि मुसलिम लीग के लोग ही हैं, जो समझौता करने पर तैयार नहीं हैं।"

'ऊँह !' टैक्सी के ड्राइवर के मुख से निकल गया। इस टैक्सी में नसीम और चेतनानन्द दिन भर घूमते रहे थे।

नज़ीर और चेतनानन्द ने घूमकर उस ड्राइवर की ओर देखा। वह सावधान होकर खड़ा हो गया। नज़ीर को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कोई फौजी सिपाई अपने अफ़सर के सामने 'अटैन्शन' की हालत में खड़ा हो जाता है। ड्राइवर सिक्ख था। नजीर ने उसकी ओर देखकर पूछा, "तुम फौज में रहे हो ?"

"जी ! मै आज़ाद हिन्द फौज का सिपाही हूँ।" ड्राइवर का उत्तर था।

"तभी इस क़िस्म की गुस्ताख़ी कर रहे हो।"

"बहुत भूल हुई है साहब। मुआफी चाहता हूँ। मगर बात आपने ऐसी कही है जिसका असर मेरे मन पर बहुत जबरदस्त हुआ था और वह असर भीतर रुक नहीं सका।"

"क्या असर हुआ है तुम्हारे मन पर ?" नसीम ने पूछा।

"छोड़ो इसको। इसका भाड़ा दो और विदा करो।" नजीर ने नाक चढाकर कहा।

"नहीं भैया। इस जमहूरियत के ज़माने में सबकी बात सुननी चाहिए। हाँ तो सरदार साहब। क्या असर हुआ है आपके मन पर।"

ड्राइवर उसी भाँति अटैन्शन की हालत मे खड़ा-खड़ा बोला, "सरकार। काग्रेसी लोगों के मन मे अग्रेजों को प्रसन्न करने की बात मैंने पहिली बार सुनी है और फिर देश के टुकड़े कुबूल करते हुए। हमने जो खतरा, अँग्रेजों से लड़कर स्वराज्य लेने का, अपने सर पर लिया था, उसके बाद महात्मा गाधी के शिष्यों को अँग्रेजों को खुश करने की बात कहते सुन दिल की पीड़ा छुपी नहीं रह सकी।"

बात सत्य थी और सब उसके मन के भावों से इतने प्रभावित हुए कि उसकी बात के उत्तर में कुछ भी कह नहीं सके। नसीम ने टैक्सी

का भाड़ा दिया। टैक्सीवाले ने रकम जेब में डाल सलाम की और गाड़ी पर सवार हो चला गया। ये लोग भी भीतर आ गए। ड्राइंग-रूम में बैठे तो बात नसीम ने आरम्भ कर दी। "बात तो यह ठीक कहता था। हम लोगों को इस बात की ओर कभी ध्यान भी नहीं करना चाहिए कि अँग्रेजों के ऊपर किसी बात का क्या असर होता है। हमें तो हमेशा यह देखना चाहिये कि किस बात से मुल्क को फायदा होगा और किससे नुकसान।"

"आज इसी बात मे फायदा है कि अँग्रेजों की नजर में हम नेक और इमानदार साबित हों।"

नसीम को यह फिलोसोफी समझ में नहीं आई। इस कारण वह सोच में पड़ गई। उसे परेशान देख चेतनानन्द ने बात को टालते हुए कहा, "छोड़ो जी इस बात को। देखो दादा! हम आज 'हौज़ ख़ास' गये थे। वहाँ पिकनिक का बहुत लुत्फ आया है। तुम यहाँ घर बैठे क्या मक्खियाँ मारते रहते हो। कल हम मथुरा जा रहे हैं। क्या ही अच्छा हो अगर तुम भी साथ चलो तो।"

"और कल आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी की बैठक जो होनेवाली है। क्या उसमे नहीं जा रहे?"

चेतनानन्द इस सूचना से ऐसा दुख अनुभव करने लगा जैसे कोई बच्चा किसी खिलौने के छिन जाने से बेबस अनुभव करता है। वह परेशानी में नसीम का मुख देखने लगा। नसीम ने समझा कि वह उससे वचन-भंग होने से घबड़ा रहा है। वास्तव में चेतनानन्द नसीम की संगत के आनन्द से वंचित हो जाने से दुख अनुभव कर रहा था। नसीम ने अपने विचारानुसार उसे वचन से मुक्त करने के लिए कह दिया, "आनन्द जी! हम मथुरा का प्रोग्राम फिर किसी दिन के लिए मुल्तवी कर सकते हैं। कांग्रेस कमेटी की बैठक मे तो जाना ही होगा। मेरे पास विज़िटर्स-टिकट है और मै गैलरी पर से आपको बैठक में भाग लेते देखना चाहती हूँ।"

विवश चेतनानन्द को अपने-आनन्द का त्याग करना पड़ा।

[३]

अगले दिन नसीम को, विजिटर्स गैलरी मे बैठे हुए चेतनानन्द को कैबिनेट मिशन योजना के स्वीकार करने का विरोध करते देख, बहुत अचम्भा हुआ। विरोध करनेवाले बहुत कम थे, इस कारण चेतनानन्द को बोलने का अवसर मिल गया। जब उसकी बारी आई और वह बोलने लगा तो इतना युक्तियुक्त बोला कि सब गम्भीर हो सोचने लगे। कांग्रेस के नेता लोग, जो वकिंग कमेटी मे कैबिनेट-योजना मान चुके थे, घबरा उठे। चेतनानन्द कह रहा था, "इस योजना को मानना तो देश-विभाजन को मान लेना है। मैं पूछता हूँ कि जब हम उत्तरी भारत और पूर्वी भारत को, सब आतरिक मामलों में स्वतत्र कर रहे हैं और वहाँ मुसलमानो का बाहुल्य है, तो कैसे कहते हैं कि आपने दो पाकिस्तान नहीं बना दिए। हमने देश-विभाजन न स्वीकार करने का वचन दिया हुआ है। चुनावों के समय हमने अपने हल्को के लोगो को यह आश्वासन दिया था कि हम पाकिस्तान बनने नहीं देंगे। तो अब यह हम क्या कर रहे हैं? यह ईमानदारी नहीं, यह राजनीति नहीं। यह देश-हित भी नही। यह कायरता है। यह मूर्खता है। यह गद्दारी है।"

जब चेतनानन्द बैठा तो सबने तालियाँ बजाई और वाह-वाह की। पंजाब और बगाल के सदस्यो ने उसके पास आकर उसे बधाई दी और उसकी पीठ को ठोंका। नेता लोग इस प्रदर्शन से घबरा उठे और जब एक आंध्र देश का सदस्य योजना के पक्ष में लम्बी-चौड़ी नीरस और युक्तिरहित बाते कहने लगा तो महात्मा गाधी को 'एस० ओ० एस०' भेजा गया। महात्मा जी मौनव्रत में थे। उन्हें अपना मौनव्रत दो घंटा पूर्व ही तोड़ना पड़ा और वे भागे हुए सभा-मंडप में आ पहुँचे। आंध्र देश के सदस्य का वक्तव्य समाप्त होते ही महात्मा

जी ने अपने कोमल, मधुर और जादू-भरे शब्दों में सदस्यों को समझाया। उन्होंने कहा, "मैं कहता हूँ कि इंगलैंड की वर्तमान मजदूर-सरकार ईमानदार लोगो की बनी है। हमे उनका एतबार करना चाहिए। भाई क्रिप्स और पैथिक लारेन्स ने मुझे विश्वास दिलाया है कि इस योजना से देश को लाभ होगा। आप लोगों को अपने नेताओं पर विश्वास रखना चाहिये। मेरी आपको यह सम्मति है कि आप इस योजना को स्वीकार कर देश, अँग्रेज और संसार को यह सिद्ध कर दो कि हम ईमानदारी से देश के काम को करना चाहते हैं।"

जब गाधी जी का कहना समाप्त हुआ तो मंडप में ऐसी शान्ति विराजमान थी जैसी किसी ईसाई की मृत शव के साथ जानेवालो में होती है। जब प्रधान ने उठकर कहा, "मैं समझता हूँ कि महात्मा जी के हुक्म के पश्चात् अब और कुछ कहने-सुनने को रह नहीं गया। मैं अब राय लेता हूँ।" इस समय भी लोग विस्मय में डूबे हुए एक दूसरे का मुख देख रहे थे।

प्रधान ने कहा, "वे लोग हाथ उठाये जो प्रस्ताव का विरोध करते हैं।"

ग्यारह हाथ उठे। इनमें चेतनानन्द का हाथ नहीं था। नसीम यह व्यवहार देख चकित रह गई। प्रस्ताव पास हो गया। कांग्रेस ने कैबिनेट योजना स्वीकार कर ली।

जब चेतनानन्द मंडप के बाहर आया तो नसीम ने अपनी हैरानी मिटाने के लिए पूछा, "यह आपने क्या किया है? लैक्चर तो दिया कैबिनेट योजना के खिलाफ और वोट दिया हक मे?"

चेतनानन्द हँस पड़ा। उसने प्रेमभरी दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा, "प्रिये! लैक्चर दिया था तुमको सुनाने के लिए और वोट दिया है नेताओं की बात पास कराने के लिए। मैं समझता हूँ कि नीति नेताओं की ही चलनी चाहिए। हमें अपनी राय उनको बता देनी चाहिये।"

नसीम को इस युक्ति से संतोष नहीं हुआ। उसने यह स्पष्ट प्रश्न पूछा, "क्या आप सत्य ही इस बात पर विश्वास रखते हैं कि यह योजना देश के हित में है ?"

"मैंने योजना पर कभी विचार ही नहीं किया। यह काम नेताओं का है।"

"तो आप नेता नहीं हैं क्या ?"

"नहीं ! हमारे नेता महात्मा गांधी हैं।"

"तो आपको कांग्रेस की ओर से कौंसिल का सदस्य क्यों बनाया गया है ? सारे देश में एक महात्मा गांधी को ही सब कुछ बना दिया होता। आल इण्डिया कांग्रेस कमटी का सदस्य भी आपको बनाने की आवश्यकता नहीं थी।"

"तो तुम नाराज हो गई हो, मेरी जॉन ?"

"नाराज नहीं तो हैरान जरूर हुई हूँ।"

उसी रात, जब चेतनानन्द किसी मित्र के यहाँ गया हुआ था, नसीम ने अपने भाई नज़ीर अहमद से, आल इंडिया कांग्रेस कमेटी में चेतनानन्द के व्यवहार का वर्णन किया और उस पर उसके कहने को भी बताया। नज़ीर अहमद उसकी बात सुन हँस पड़ा। नसीम इस हँसी का अर्थ नहीं समझ सकी। नज़ीर अहमद ने अपना अभिप्राय समझाने के लिए कहा, "देखो नसीम, हमारे और कांग्रेस के नुक्ता-निगाह में भारी फरक आ गया है। हम जो नेशनलिस्ट मुसलमान कहाते थे वे झूठे और बेदलील बात करनेवाले हो गए हैं। हम कहते थे, कि हिन्दू और मुसलमान दोनों एक ही मुल्क में रहने से एक ही कौम के बंदे हैं। हम मुसलिम लीग वालों को गलत और गद्दार कहते थे। मगर अब तो कांग्रेस ने असूलन यह बात मान ली है कि मुसलमानों को मुल्क का एक अलहदा हिस्सा चाहिए। पिछले एक दो हफ्ते से मैं यह महसूस कर रहा हूँ कि हम अभी तक अपनी कौम से गद्दारी कर रहे थे। कांग्रेस एक हिन्दू जमायत है और उसने ही

हमें कह दिया है कि मुसलमानों को अलहदा मानने में वे विवश हो गए हैं। अगर पाकिस्तान बना तो हमारे लिए न तो हिन्दुस्तान में जगह रह जावेगी और न ही पाकिस्तान में। एक हमें मुसलमान मानने से हमें गैर समझेंगे और दूसरे हमें अपनी कौम का साथ न देने की वजह से गद्दार कहेंगे।"

"यह तो एक निहायत ही शर्मनाक बात हो गई है। मगर आप ही कल शाम को कैबिनेट मिशन की योजना मानने पर चेतनानन्द जी को मुबारिकबाद दे रहे थे।"

"मै उससे मज़ाक कर रहा था। मेरा ख़्याल था कि एक पंजाबी होने से उसे यह योजना पसन्द नहीं होगी और मेरे मुबारिकबाद देने पर उसे क्रोध चढ़ आवेगा।"

"तो अब क्या करना चाहिए?"

"मैं तो यह ख़्याल करता हूँ कि हमें अपना डेरा यहाँ से कूच करना चाहिए। कलकत्ता या लाहौर मे जाए रिहायश रखने का इरादा है।"

"मेरे लिए तो बहुत मुशकिल हो जावेगी।"

"मैं समझता हूँ। मेरी कोशिश तो यह है कि चेतनानन्द को होनेवाले पाकिस्तान में किसी काम पर लगवा दूँ, पर यह तो तुम्हारी शादी के बाद ही हो सकेगा।"

"पर मैं तो यह सोचती हूँ कि अगर हिन्दू और मुसलमानों ने अलग-अलग ही रहना है तो फिर हमारी शादी का हशर ही क्या होगा?"

"देखो नसीम! अगर तो तुम्हें उससे कोई खास उनस हो गई है, तब तो शादी कर लो और मैं कोशिश करूँगा कि आनेवाली आँधी में तुम लोगों को कहीं पनाह मिल सके। ऐसा मालूम होता है कि कांग्रेस के इस योजना को मान लेने से मुसलिम लीग नहीं मानेगी। दोनों में झगड़ा बढ़ेगा और मुसलिम लीग का 'डायरैक्ट ऐक्शन'

चलेगा। यह 'सिविल-वार' का बिगुल होगा। अगर यह शुरू हो गई तो एक वक्त ऐसा भी आ सकता है कि हिन्दुस्तान की फौजें दो हिस्सों में तकसीम हो जावें। दोनों हिस्सों के नेता अँग्रेज अफसर होंगे और तमाम मुल्क मे खून की नदियाँ बह जावेगी।"

"हमारी शादी, अब हुए बिना नहीं रह सकती। मेरे लिए मुशकिल नहीं, मै तो मुल्क के किसी भी हिस्से मे रह सकती हूँ। मगर सवाल उनका है। वह हिन्दुस्तान में रहना पसन्द करेंगे।"

"यही तो मुशकिल है। जहाँ तक मेरा क्यास है दिल्ली तो महफ़ूज़ जगह नही है। यहाँ हिन्दू-मुसलमानो की आबादी बराबर-बराबर है और जब एक बार झगड़ा शुरू हुआ तो कौन कह सकता है कि आख़ीर कहाँ होगी।"

[४]

चेतनानन्द और नसीम का विवाह दिल्ली में नहीं हो सका। विवाह के लिए नसीम को लाहौर जाना पड़ा। यह आयोजन बैरिस्टर सराजदीन साहब के बँगले पर हुआ। निमन्त्रण उन्हीं की तरफ से भेजे गए। लाला जीवनलाल ने निमंत्रण-पत्र पढ़ा तो खिलखिलाकर हँस पड़ा। चेतनानन्द की माँ ने लाला जी को हँसते देख पूछा, "क्या बात हो गई है जो इतने खुश प्रतीत होते हो?"

"तुम्हारे बेटे ने आखिर अपने लिए बीवी ढूँढ़ ही ली है, पर मैं समझता हूँ कि यह भी निभ नहीं सकेगी। आज ज़माना तो हिन्दू-मुसलमानों में लड़ाई का आ रहा है, परस्पर विवाह-शादियो का नहीं। भगवान भला करे।"

"तुमने अपने बच्चों की कभी भलाई भी सोची है? सदा बुरा ही सोचते रहते हो।" चेतनानन्द की माँ ने कहा। वह इस विवाह के विषय में पूर्ण जानकारी रखती थी। चेतनानन्द ने इसमें खर्चा करने के लिए अपनी माँ से ही धन लिया था।

"अगर मै अपने तजरुबे से किसी बात का अनुमान लगाऊँ तो कोई पाप करता हूॅ ?"

"कभी अच्छे अनुमान भी तो लगाने चाहिएँ।"

"काम अच्छे किये जावे तो अनुमान अपने-आप ही अच्छे लग जाते हैं।"

"छोड़िए इस बात को। मैं जानना चाहती हूॅ कि आप शादी पर जावेंगे या नहीं ?"

"नहीं ! मेरे उसके इस विवाह पर न जाने का कारण भी वही है जो उसके पार्वती के साथ विवाह के समय था। उसने हमारी परिवार-प्रथा का उल्लंघन किया है। मुझे यह पसन्द नहीं।"

"पर आप एक बाहरी आदमी के रूप में तो जा सकते हैं ?"

"जब बाप ही नहीं रहा तो बाहरी आदमी बनकर क्या करूँगा ?"

बात यहीं समाप्त नहीं हुई। विवाह के एक दिन पूर्व बैरिस्टर सराजदीन जीवनलाल से मिलने आया। उसे देखते ही जीवनलाल पहिचान गया। उसने समाचार-पत्र मे पढ लिया था कि चेतनानन्द की शादी बैरिस्टर सराजदीन की साली से हो रही है। इससे एक मुसलमान को बैठक मे प्रवेश करते देख सब समझ गया। उसने उठकर स्वागत करते हुए कहा, "शायद आप चेतनानन्द के विवाह का निमन्त्रण देने आए हैं ?"

"जी हाँ, और एक और काम भी है।"

"मै उसका भी अन्दाज़ लगा रहा हूॅ। मेरा विचार है कि आप उसकी आर्थिक अवस्था जानने आए हैं। क्या मेरा अनुमान ठीक है ?"

"आप बुजुर्ग हैं और फिर एक तजरुबेकार व्यापारी भी। आपका अन्दाज़ ठीक ही है। मै जानना चाहता हूॅ कि आप अपनी जायदाद को किस बिना पर अपनी औलाद को देना चाहते हैं ?'

"मैं समझता हूॅ कि आपको व्यर्थ ही तकलीफ हुई है। मैंने

अपनी वसीहत लिख रखी है और चेतनानन्द उसके विषय में जानता है।"

"यह तो उसने बताया था। मगर मैं ख़्याल करता हूँ कि दिन-बदिन हालात बदलते जाते हैं और शायद यह आपके फायदे की बात होगी कि आपकी जायदाद मे उसका, जिसकी शादी एक मुसलमान लड़की से हो रही है, हिस्सा भी हो।"

"मै आपकी बात का मतलब नहीं समझा। क्या आप यह बताना चाहते हैं कि मुसलमानी-राज्य आनेवाला है, इससे मुसलमान से रिश्ता रखने मे लाभ होगा? मै आपको यह बता देना चाहता हूँ कि हम लोग उन हिन्दुओ की सन्तान हैं, जिन्होने सात सौ वर्ष के मुसलमानी राज्य की घोर यन्त्रणा सहने पर भी उनसे सम्बन्ध बनाना उचित नहीं समझा था। यह जायदाद तो एक मिट्टी का ढेला है, मै तो अपनी जान तक की भी परवाह नहीं करता।"

"अच्छी बात है। खैर कल तशरीफ तो लाइएगा?"

"नहीं! मेरे जाने से उसे किसी प्रकार का लाभ नहीं होगा। मुझे उसकी शादी देखकर किसी प्रकार की प्रसन्नता नहीं हो सकती।"

इतना कह जीवनलाल ने उठकर बैरिस्टर साहब को विदा करने के लिए हाथ जोड़कर नमस्कार कर दी। विवश सराजदीन उठा और सलाम कर चला गया।

सराजदीन ने घर जाकर अपनी बीवी मुमताज़ से जीवनलाल की बात बताकर कहा, "यदि मेरे वश की बात होती तो मैं यह विवाह रोक देता। मगर मजबूर हूँ। नसीम तो उस पर लट्टू हो रही है।"

"मेरा तो ख़्याल है कि वे मियाँ-बीवी पहिले ही बन चुके हैं। अब तो सिरफ लोगों की आँखो में धूल झोकने की बात रह गई है।"

"मैंने जब नज़ीर भाई को लिखा था तब मेरा ख़्याल था कि चेतनानन्द साहबे-जायदाद है। अगर मुझे मालूम होता कि यह दिवा-लिया है तो मैं कभी भी नसीम की इससे मुलाकात न होने देता।

हकीक़त में मैं ही इस सब गड़बड़ का ज़िम्मेदार हूँ। मैंने इसका एक इलाज सोचा है। मैं चाहता हूँ कि शादी होने के बाद इनको कलकत्ता भेज दूँ। वहाँ के वजीरे आज़म मेरे दिली दोस्त हैं। वे उसे किसी काम पर लगा देंगे।"

"मगर चेतनानन्द मानेगा? वह कौंसिल का मेम्बर है। भला उसे छोड़कर क्या वह नौकरी करेगा?"

"नहीं मानेगा तो गुज़र कैसे करेगा? फिर नसीम को ऐसा वतीरा बनाना चाहिए कि वह इस बात पर तैयार हो जावे।"

विवाह ख़त्म हुआ तो बैरिस्टर साहब ने उन्हें 'हनी-मून' के लिए कलकत्ते जाने को तैयार कर दिया। नसीम को सब बात समझा दी गई और अच्छी नौकरी मिलने पर कलकत्ता में ही रह जाने की राय दे दी गई।

विवाहवाली शाम को ही नसीम और चेतनानन्द कलकत्तावाली गाड़ी से रवाना हो गए। तीसरे दिन प्रातःकाल वे सब प्रकार से प्रसन्न कलकत्ता पहुँच गए। वहाँ एक होटल में ठहर, बंगाल के प्रीमियर से मुलाकात करने पहुँच गए। प्रीमियर के नाम चेतनानन्द के पास एक चिट्ठी थी। वह चिट्ठी प्रीमियर ने पढ़ी तो कहा, "कहाँ ठहरे हो? मैं आप लोगों की सुबह से इन्तज़ार कर रहा हूँ।"

"हम होटल में ठहरे हैं। मैंने समझा कि पहिले आपसे मिल लूँ फिर आप जैसा फरमावेंगे हम करेंगे।

"बहुत ही शरारती मालूम होते हो। जब तुम लोगों का तार आ चुका था तो तुम क्या समझ यहाँ नहीं आए? तुम्हारे लिए रहने की जगह तैयार है। अच्छा अब यहीं ठहरो। मैं मोटर भेज तुम्हारा असबाब मँगवा देता हूँ।"

चेतनानन्द और नसीम प्रीमियर साहब के मेहमान हो गए।

[५]

चेतनानन्द का विचार दो सप्ताह तक कलकत्ता में रहने का था, परन्तु अभी एक सप्ताह भी नहीं हुआ था कि चेतनानन्द को प्रान्तीय पबलिसिटी आफिसर की नौकरी कर लेने के लिए कहा गया। चेतनानन्द इसकी चर्चा सुन चकित रह गया। उसने नसीम से कहा, "मैं हैरान हूँ कि प्रधान मन्त्री क्यों इतने दयालु हो रहे हैं? मै काग्रेस पार्टी का सदस्य हूँ, वे मुसलिम लीग पार्टी के नेता हैं। भला हम दोनों का मेल क्या है? पबलिसिटी आफिसर का स्थान एक निहायत ही ज़रूरी काम की जगह है। इस जगह को विरोधी पार्टी के एक सदस्य को दे देना विस्मय करने की बात ही तो है। मुझे तो यह नीति समझ में नही आई।"

नसीम ने खुशी से फूलते हुए पति के गले में बाँह डालकर कहा, "तो आपको चिट्ठी मिल गई है क्या? मैं बहुत खुश हूँ।"

"तो तुमने वज़ीर साहब से कहा है?"

"नहीं। उन्होंने मुझसे कहा था कि लाहौर से जीजा जी की चिट्ठी आई है और वे उस पर ग़ौर कर रहे हैं! मैं समझती थी कि कोई अच्छी नौकरी मिलनी मुशकिल है। इससे मैंने आपसे ज़िकर नहीं किया। मालूम होता है कि वजीर साहब से जीजा जी का बहुत रसूख है।"

"पर मैं तो नौकरी करने का विचार नहीं रखता।"

"तो गुज़र कैसे होगी? आखिर अपनी माँ से रुपया कब तक मँगवाते रहिएगा? और फिर यह कोई नौकरी तो है नहीं। इसे तो 'प्राईज पोस्ट' कहते हैं।"

चेतनानन्द इस विचार को सुन सोच में पड़ गया। निर्वाह की बात तो उसके मन में कभी उठी ही नही थी। आज इस बात के उल्लेख किए जाने पर वह सोचने लगा था कि माँ से माँगने की सीमा है। यह विचार कर उसने कहा, "मैं ज़रा सोचकर उत्तर दूँगा।"

"कब तक चार्ज लेने की बात है?"

"अगले सप्ताह सोमवार तक।"

"तब तो बहुत सोचने को समय नहीं। आज जुम्मा है। जवाब कल तक चला जाना चाहिए, ताकि आपको चार्ज देने का हुक्म जारी हो सके।"

"मै कल प्रातः ही प्रीमियर साहब को मिलकर इन्कार व रजा-मन्दी बता दूँगा।"

"इन्कार का तो सवाल ही पैदा नहीं होता। इससे अच्छा मौका और नहीं मिलेगा। देखिए न, दो हजार से ऊपर तनख़्वाह है और फिर रसूख और वाक़फीयत कितनी बढ़ जाएगी। मै तो समझती हूँ कि यह ख़ुदादाद मौका है। इसे छोड़ना नहीं चाहिए। कौंसिल की मेम्बरी इसके सामने कुछ हकीकत नहीं रखती।"

नसीम की युक्तियो ने चेतनानन्द को परास्त कर दिया था। और अगले दिन वह प्रीमियर साहब के कमरे में जाकर इस विषय पर बातचीत करने लगा। "आपने बहुत कृपा की है। मुझे भय है कि मैं इस काम को कर भी सकूँगा या नहीं?"

"काम करने से काम होता है। तुम घबराओ नहीं, सब काम ठीक होगा। ज़रा ध्यान देकर काम करने से कामयाबी मिल जावेगी।"

"पर मेरा निवेदन यह है कि अगर कोई मुझसे अच्छा आदमी आपको मिल जावे तो आप उसको रख सकते हैं।"

"नजीर अहमद के बहनोई और सराजदीन के साढ़ से अच्छा आदमी मुझे नहीं मिलेगा।"

इस युक्ति ने चेतनानन्द का मुख बन्द कर दिया और सोमवार दस बजे सरकारी पबलिसिटी आफिस में जाकर उसने डायरेक्टर की पदवी का चार्ज ले लिया। चार्ज देनेवाले थे मिस्टर सुनन्द कुमार दास। उससे पहिले इस स्थान पर एक अंग्रेज काम करते थे। उसके

रिटायर होने पर मिस्टर दास अस्थायी रूप में काम करने लगे थे। यद्यपि वे सब प्रकार से योग्य थे परन्तु उसे इस स्थान पर पक्का नहीं किया जा रहा था। एकाएक मिस्टर चेतनानन्द की नियुक्ति होती देख वह घबरा उठा। यदि किसी मुसलमान को उस स्थान पर नियुक्त कर दिया जाता तब तो उसे कुछ कहने सुनने का अवसर प्राप्त हो जाता। परन्तु एक हिन्दू के स्थान पर एक हिन्दू की नियुक्ति होने से यह लांछन लग नहीं सकता था।

मिस्टर दास ने चार्ज देने के पूर्व अपने अधीन काम करनेवालों को फिरपो मे चाय दे डाली। उसके अधीन काम करनेवाले दोनों, हिन्दू और मुसलमान, सब प्रकार से प्रसन्न थे। इससे जब उनके जाने का समाचार मिला तो किसी को खुशी नहीं हुई। इस पार्टी में मिस्टर दास ने सब काम करनेवालों से पृथक्-पृथक् मिलकर बिदा माँगी और उनसे, जो भी उन लोगों को उसके काल में कष्ट हुआ था, उसके लिए क्षमा माँगी।

मिस्टर दास की एक पी० ए० थी। उसका नाम अनिमा बैनर्जी था। लड़की कवाँरी थी और मिस्टर दास उससे बहुत स्नेह करते थे। उससे मिले तो कहने लगे, "मै नहीं जानता कि आनेवाले डायरैक्टर कैसे आदमी हैं। इतना मालूम हुआ है कि वे पंजाबी हैं। इससे मैं समझता हूँ कि तुम्हें बहुत कष्ट होगा। यदि तुम कहो तो मै तुम्हारे लिए 'स्टेट्स्मैन डेली' में नौकरी का प्रबन्ध कर सकता हूँ। वहाँ के प्रधान सम्पादक से मेरा घना परिचय है। वह तुम्हें अवश्य रख लेगा।"

अनिमा बैनर्जी इस प्रस्ताव से बहुत हैरान हुई। वह यह तो समझती थी कि मिस्टर दास उसके हित से ही यह बात कर रहा है, परन्तु उसे यह जान लज्जा अनुभव हुई थी कि उसमें दुर्बलता का होना मान लिया गया था। इस विचार से उसका मुख लाल हो गया। उसने आँखे नीचे किए हुए कहा, "आप चिन्ता न करे। मै अपनी

फिकर स्वयं कर सकती हूँ। अभी कुछ काल के लिए मैं यह नौकरी छोड़ नहीं सकती।"

मिस अनिमा मिस्टर दास के एक परिचित की लड़की थी। इससे उसके लिए फिकर करनी उसके लिए स्वाभाविक ही थी। परन्तु जब उसने कहा कि वह अभी वहाँ से नौकरी छोड़ नहीं सकती तो उसने अपना कर्तव्य पालन कर दिया मान उसका ध्यान छोड़ दिया।

सोमवार के दिन चेतनानन्द ने अपनी पदवी का चार्ज ले लिया।

[६]

पबलिसिटी विभाग में काम इतना कठिन नहीं था जितना कि चेतनानन्द समझता था। साथ ही अनुभवी कार्य-कर्त्ता कार्यालय में थे, जो सब काम कर देते थे। चेतनानन्द को केवल हस्ताक्षर करने होते थे। मिस बैनर्जी एक और भारी सहायक थीं। भिन्न-भिन्न विभागों के समाचार होते थे। समाचार-पत्र, रॉयटर, ऐसोशिएटेड प्रेस और अन्य समाचार एजेन्सियों से समाचार आते थे। सब काम के समाचार एकत्रित कर लिये जाते थे और अपनी-अपनी फाइलों में लगा दिए जाते थे। सब फाइलों की संख्या और विषय मिस बैनर्जी के पास लिखे रहते थे और वह उसे जब भी कोई सूचना आवश्यक होती तो बता देती थी। इस विभाग के अधीन सरकारी कामों का प्रचार भी होता रहता था। भिन्न-भिन्न सरकारी कामों के विषय में रिपोर्टें आती रहती थीं और उनको ढंग से लिखकर जनता के सामने उपस्थित किया जाता था।

यह सब काम प्रायः मिस बैनर्जी कर देती थीं या अन्य कर्मचारियों से करवा देती थीं। दो-तीन दिन के भीतर ही चेननानन्द समझ गया था कि उसे अपनी अज्ञानता का दूसरों को भास नहीं होने देना चाहिए। साथ ही उसे अच्छा काम करनेवालों को सदैव प्रोत्साहन देते रहना चाहिए। अतएव जहाँ उसने भिन्न-भिन्न फाइलों को मँगवाकर उन्हें

स्वयं समझने का यत्न करना आरम्भ कर दिया, वहाँ अपने अधीन काम करनेवालों की योग्यता परखनी भी शुरू कर दी। उसका सबसे प्रथम वास्ता मिस बैनर्जी से पड़ जाना स्वाभाविक था।

मिस बैनर्जी एक साधारण रूप-रेखा की लड़की थी, परन्तु अपने काम में बहुत चतुर थी। साथ ही कार्यालय के काम को भली-भाँति समझ चुकी थी। इसके अतिरिक्त उसमें एक विशेष स्फूर्ति और सतर्कता विद्यमान थी। एक दो दिन के अनुभव में ही चेतनानन्द समझ गया था कि वह कोई विशेष योग्यता की लड़की है। पहिले ही दिन उसने उसके गुणों का भास पा लिया था। जब चाय का समय हुआ तो चेतनानन्द ने चपरासी से कहा, "दो आदमियों के लिए चाय ले आओ।" जब चपरासी कार्यालय के बाहरवाले होटल से चाय का प्रबन्ध कर लाया तो चेतनानन्द ने मिस बैनर्जी से कहा, "मैं समझता हूँ कि आप मेरे साथ चाय पीने में आपत्ति नहीं करेंगी। मैं आप से बहुत कुछ पूछना चाहता हूँ।"

"आप पीजिए और मै आपसे बात करने के लिए उपस्थित हूँ।"

"आइए। संकोच करने की कोई बात नहीं। कौन नियामत है जो इनकार करने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है।"

इतना कह चेतनानन्द बगल के कमरे में, जहाँ चाय रखी थी, उठकर चला गया। मिस बैनर्जी उसके पीछे-पीछे वहाँ पहुँच गई और सामने की कुर्सी पर जा बैठी। जब चेतनानन्द उसके लिए चाय बनाने लगा तो उसने फिर न की परन्तु उसने कहा, "फिर वही बात! देखिए मिस बैनर्जी! जब हम दफ्तर की कुर्सी पर बैठे हो तो बड़े-छोटे हो सकते हैं, परन्तु उससे बाहर हम साधारण मनुष्य-मात्र ही तो हैं। यह लीजिए, पीजिए।"

इतना कह और उसके लिए चाय का प्याला बनाकर उसे दे अपने लिए चाय बनाने लगा। मिस बैनर्जी ने इसमें उनका हाथ बटाना आरम्भ कर दिया। पश्चात् दोनों चाय पीने लगे। चाय पीते

हुए चेतनानन्द ने पूछा, "मिस्टर दास आपके रिश्ते में कुछ लगते हैं क्या ?"

"नहीं। क्या बात है ? आपसे किसी ने कुछ कहा है क्या ?"

"उन्होंने मुझ से स्वयं कहा है। वे आपके विषय में बहुत चिन्तित प्रतीत होते थे।"

"यह उनकी बहुत कृपा है। वास्तव में बात यह है कि मेरे पिता उनके सहपाठी थे। दोनों में कॉलेज के दिनों में घनी मित्रता थी। भाग्य के चक्कर से वे बड़े आफिसर बन गए और मेरे पिता अपना निर्वाह कर सकने में भी अयोग्य हैं।"

"उनकी शिक्षा कहाँ तक जा सकी थी ?"

"वे इन्टरमीडिएट में अव्वल रहे थे, परन्तु थर्ड ईयर में ही किस्मत ने ऐसा पछाड़ा कि अभी तक होश नहीं आई। अब तो वे मेरे ही आश्रय में हैं।"

"क्या बीमार हो गए थे ?"

"यह बात नहीं। मगर आप सुनकर क्या करेंगे। कोई अच्छी बात तो है नहीं।"

"तो क्या कोई प्रेम-फॉस गले पड़ गया था ? यदि कोई ऐसी बात है तो मुझे बहुत अफसोस है।"

"आपने गलत समझा है। वे बहुत ही नेक विचारों के आदमी हैं। अब आपने पूछा है तो सुन लीजिए।"

इतना कह उसने एक-दो घूँट में चाय समाप्त कर कहना आरम्भ कर दिया। "मेरे पिता जी का नाम शिशिर कुमार बैनर्जी है। जब वे थर्ड ईयर के विद्यार्थी थे तो गदर पार्टी के लोग, जो 'कामगाटा मारु' जहाज से कैनेडा से वापस आए थे, डमडम के स्टेशन पर फौज से घेर लिए गए। जब वे फौज के घेरे से निकलने लगे तो सिपाइयों ने गोली चला दी। इस पर भी कई लोग फौज के घेरे से निकल भाग खड़े हुए। उनमें से एक जो भागा तो भीड़ में लुकता-छिपता कलकत्ता कॉलेज

स्क्वेयर में जा पहुँचा। वहाँ एक पुलिस अफसर ने उसे पहिचान पकड़ना चाहा। वह फिर भागा और पिता जी के कॉलेज मे जा, अपने विचार से, बिना पुलीस से देखे जाने के, वह पिता जी के होस्टल में उनके कमरे मे जा छिपा। पिता जी मेज पर सिर टेके कुछ सोच रहे थे कि एक पंजाबी जवान को घबराए हुए कमरे मे प्रवेश करते देख सब समझ गए। कामागाटा मारु जहाज के यात्रियो से जो व्यवहार सरकार ने किया था, वह कलकत्ता मे विख्यात हो चुका था। इस विषय मे विद्यार्थियों में भारी रोप फैल रहा था। उस पंजाबी के कमरे में घुसने से पहिले मेरे पिता और बाबू सुनन्द कुमार दास में गोली चलने के विषय में गरमागरम बहस हो चुकी थी। मिस्टर दास उस गोली चलने को खराब बात नहीं समझता था और पिता जी इस घटना पर सरकार पर उबल रहे थे। दोनो मित्र अभी जुदा ही हुए थे कि वह पंजाबी कमरे मे घुस आया। पिता जी अभी उसके लम्बे-चौड़े डील डौल को देख ही रहे थे कि उसने कहा 'बाबू! मुझे कहीं छुपा लो। पुलिस मेरे पीछे-पीछे आ रही है।'

"पिता जी ने उठ कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया। फिर कमरे का लैम्प बुझा दिया। अँधेरे में उस पजावी से बोले, 'तुमने यहाँ आकर बहुत गलती की है। इस कॉलेज में प्रायः अमीरो के लड़के पढ़ते हैं और आज अमीर हिन्दुस्तान में देशद्रोही ही हैं।'

"'तो आप मुझे पुलिस के हवाले कर देंगे क्या?'

"'मै उनमें नहीं हूँ। परन्तु तुम यहाँ पकड़े गए तो मेरा पकड़ा जाना भी तो हो जावेगा।'

"'मुझे बहुत अफसोस है। आप ऐसा करिए कि कमरे को बाहर से ताला लगा कहीं चले जाइए। एक-आध घंटे के बाद आइयेगा। तब तक पुलिस ढूँढ़कर चली जावेगी। पश्चात् मैं अपने जाने का प्रबन्ध कर लूँगा।' पिता जी को यह बात ठीक प्रतीत हुई। उन्होंने तुरन्त कमरे से बाहर निकल, ताला लगा, वहाँ से बाहर चला जाना

ही उचित समझा। सत्य ही पुलिस होस्टल के अधिकारियों से होस्टल की तलाशी लेने की स्वीकृति माँग रही थी। पिता जी ने वहाँ से चला जाना ही उचित समझा।

"जल्दी-जल्दी होस्टल की तलाशी ली गई, परन्तु किसी कमरे में भागे हुए को न पा पुलिस वहाँ से बिदा हो गई। पिता जी के कमरे को बाहर से ताला लगा देख संदेह नहीं हुआ। पिता जी रात-भर नहीं लौट सके। वे अपने एक रिश्तेदार के घर जाकर सो रहे थे। प्रातःकाल वे लौटे तो उस पंजाबी को अपनी चारपाई पर लेटे पाया। उन्होंने उसे उठाया तो उसने एक नई समस्या उपस्थित कर दी। उसने कहा, 'मेरे पास तीन रिवालवर हैं। मैं उनको आपको दे देना चाहता हूँ। आप उनको सुरक्षित रखिएगा। कभी अवसर मिला तो आकर ले जाऊँगा।' पिता जी ने उसकी बात मान ली। उसे अपना हजामत बनाने का सामान दिया। उसने दाढ़ी-मूँछ काट डाली। पिता जी के बंगाली ढंग के कपड़े पहन लिए और कमरे के बाहर निकल गया।

"इस समय एक दुर्घटना हो गई। मिस्टर दास ने उस आदमी को पिता जी के कमरे से निकलते देख लिया। यद्यपि वह बंगाली ढंग की पोशाक पहिने था, तो भी मिस्टर दास को संदेह हो गया। उसने पिता जी से आकर पूछा, 'यह कौन था?'

"'कौन? यहाँ कोई नहीं था।' पिता जी ने उत्तर दिया।

"इस पर मिस्टर दास, चुपचाप कमरे से निकल होस्टल सुप्रिन टैन्डैन्ट के कमरे में जा पहुँचा और उसे अपना संदेह बता दिया। इस पर होस्टल सुप्रिनटैन्डैन्ट ने पुलिस को सूचना भेज दी। पिता जी को मिस्टर दास से यह आशा नहीं थी। इससे वे निर्भय बैठे हजामत बना रहे थे कि होस्टल सुप्रिनटैन्डैन्ट पुलिस को साथ लिए कमरे में आ धमके। पहिले तो पिता जी से प्रश्नोत्तर किए गए। इस में तो पिता जी ने कुछ नहीं बताया, परन्तु जब तलाशी ली गई, तो तीन रिवालवर

और पचास रौंड कारतूस चारपाई पर सिरहाने के नीचे रखे निकल आए। पिता जी को हथकड़ी लग गई और पीछे मुकद्दमा होने पर पाँच वर्ष का कारावास हो गया।

"यहाँ पर जीवन की गाड़ी का काँटा बदला। पाँच वर्ष बाद जब छूटकर आए तो महात्मा गाधी अपना आन्दोलन चला रहे थे। वे उसमें सम्मिलित हो गए। एक गैर-कानूनी जलूस मे भाग लेने पर एक वर्ष की कैद हो गई। जब छूटे तो महात्मा जी अपना आन्दोलन बन्द कर चुके थे और स्वय छै वर्ष की कैद का दंड पा चुके थे। देश में निराशा फैल रही थी और क्रान्तिकारी दल बन रहे थे। पिता जी एक दल में शामिल हो गए। महात्मा गाधी ने इन दलो का विरोध किया, इससे इन दलों को लोगों से आर्थिक सहायता मिलनी बन्द हो गई। इन्होंने धनी लोगो के घर डाके डालने आरम्भ कर दिए। इससे सरकार की ओर से पकड़-धकड़ आरम्भ हो गई। पिता जी के भी वारन्ट निकल गए। वे भूम्यान्तर्गत हो गए। इस अवस्था में वे मेरी माँ से दिल्ली मे मिले, मेरी नानी के घर छुपे हुए थे कि मेरी माँ उनसे प्रेम करने लगी। उसी अवस्था में उनका विवाह हो गया और अगले वर्ष मेरा जन्म हो गया। यह सन् छब्बीस की बात है।

"सन् पैंतीस की बात है कि मेरे पिता जी के वारन्ट वापस ले लिए गए। इस समय उनकी आयु चालीस वर्ष की हो चुकी थी। उन्होंने कलकत्ता में एक बीमा कम्पनी मे नौकरी कर ली और मुझे तथा मेरी माँ को यहाँ बुला लिया। तब से मै यहाँ हूँ। मैंने बी० ए० पास कर स्टेनोटाइपिस्ट का काम सीख लिया है। दुर्भाग्य ने अभी भी हमारा पीछा नहीं छोड़ा। दो वर्ष हुए माता जी का देहान्त हो गया और पिता जी दमे के रोगी हो गए। मिस्टर दास ने कृपा कर मुझे यह नौकरी दे दी और हमारा गुजर हो रहा है।"

चेतनानन्द एक क्रान्तिकारी की कहानी सुन चकित रह गया।

चाय समाप्त हुए बहुत काल हो चुका था। दोनों चुप और गम्भीर विचार में पड़े हुए कमरे से बाहर निकल आए।

[७]

सप्ताह के अंत में साप्ताहिक रिपोर्ट बनती थी। चेतनानन्द के आने के पूर्व यह रिपोर्ट मिस्टर दास स्वयं बनाया करता था। अब चेतनानन्द के समय यह भी मिस बैनर्जी ने बना डाली। चेतनानन्द ने कहा भी कि वह बना लेगा, परन्तु मिस बैनर्जी को काम करने का शौक था और उसने चार घंटे-भर फाइलों को देख रिपोर्ट टाइप कर डाली। चाय के समय चेतनानन्द ने रिपोर्ट पढ़ी तो उसे पता चल गया कि मिस बैनर्जी बहुत बढ़िया अँग्रेजी लिखती हैं।

"आपने थोड़े में बहुत बढ़िया लिख दी है।"

"देखें, आपके अफसर लोग पसन्द करते हैं या नहीं?"

इस रिपोर्ट में एक विशेष बात की प्रधानता दी गई थी। वह थी प्रान्तीय सरकार की मुसलिम-पोषक नीति। इस सप्ताह में प्रान्त-भर के समाचार-पत्रों ने इस विषय पर बहुत कुछ लिखा था। साथ ही स्थान-स्थान पर सभाएँ हुई थीं और सरकार की नीति के विरोध में जलूस निकाले गए थे। इन सबका उल्लेख इस रिपोर्ट में था। इससे चेतनानन्द ने कहा, "वैसे तो रिपोर्ट ठीक ही है, परन्तु आपने हिन्दुओं से चलाई हुई ऐजिटेशन को बहुत प्रधानता दे दी है।"

"इससे तो वर्तमान सरकार को मेरा धन्यवाद करना चाहिए। मैं उसके विरोध में होनेवाली चर्चा का पता दे रही हूँ। इससे सरकार इस चर्चा को बन्द करने का उपाय कर सकती है।"

"मुझे संदेह है कि सरकार इसको इस दृष्टि-कोण से देखेगी।"

"ऐसी सरकार पर दया ही करनी चाहिए। यदि इसने अपनी और मुसलमानों की प्रशंसा ही सुननी है तो आप समझ लीजिए और रिपोर्ट लिख दीजिए। वास्तव में यह आप ही का काम है।"

"तो आप नाराज़ हो गई हैं। मेरा यह अभिप्राय नहीं था। मैं तो इसे पसन्द करता हूँ।"

"श्रीमान्! मेरी नाराज़गी और खुशी का प्रश्न नहीं है। आप जो कुछ लिखाना चाहते हैं लिखा सकते हैं। आप लिखाईये और आधा घंटा में रिपोर्ट तैयार हो जावेगी।"

"मैं इसे ऐसे ही भेज रहा हूँ। आपका कहना ठीक ही है। सरकार को वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान होना ही चाहिए।"

"धन्यवाद है।"

"मैं एक बात पूछ सकता हूँ क्या?"

"आपकी इच्छा है। उत्तर देना मेरी इच्छा पर निर्भर है।"

"यह तो है ही। आप मुसलिम लीग के कैबिनेट मिशन की योजना अस्वीकार करने में उनकी भलाई समझती हैं क्या?"

"श्रीमान्! हम सरकारी नौकर हैं। हमें तो मशीन की भाँति काम करना चाहिए। हम घटनाओं का विवरण एकत्रित करने के लिए नियुक्त किए गए हैं। घटनाओं पर टीका-टिप्पणी करने के लिए नहीं।"

"मैं यह बात मिस्टर आनन्द के पी० ए० से नहीं पूछ रहा। मैं एक क्रान्तिकारी की लड़की से प्रश्न कर रहा हूँ।"

"पिता जी तो महात्मा जी की नीति के माननेवाले नहीं। उनका विचार है कि मुसलमानों से पर्याप्त बातचीत हो चुकी है। उन्होंने कभी कोई बात नहीं मानी। सर सैयद के समय से लेकर आज तक जितने भी समझौते टूटे हैं सब मुसलमानों की ओर से टूटे हैं। इससे उनके मानने अथवा न मानने का प्रश्न महात्मा जी के लिए ही महत्त्व रखता है।"

"परन्तु प्रश्न तो वैसे का वैसा ही रहा है। इसमें मुसलमानो की भलाई है क्या?"

"पिता जी का विचार है कि इसमें मुसलिम लीग का लाभ है। मुसलिम लीग को किसी को प्रसन्न नहीं करना। उन्हें तो हिन्दुओं को डराना है। हिन्दुओं को भयभीत करने के लिए इस योजना को मानने की आवश्यकता नहीं। भयभीत करने के लिए अन्य उपाय सोचे जा रहे हैं।"

"कौन उपाय हैं जो वे सोच रहे हैं?"

"पहिले तो मुसलमानों का हिन्दुओं के स्वराज्य-सम्बन्धी आन्दोलनों से पृथक् रहना मात्र हिन्दुओ को भयभीत कर देता था। हिन्दुओ के मस्तिष्क में यह बात अँग्रेज़ अफसरों और नीतिज्ञों ने बैठा दी थी कि बिना मुसलमानो से समझौता किए हिन्दुस्तान में स्वराज्य नहीं हो सकता। इस बात को महात्मा गांधी ने इतना हृदयंगम कर लिया था कि वे मुसलमानों से मित्रता करने के लिए हिन्दुओं से अन्याय करने को भी तैयार हो जाते थे। अब मुसलिम लीग वाले डायरैक्ट ऐकशन की धमकी दे रहे हैं।"

"तो आप और आपके पिता भी तो डायरैक्ट ऐकशन में विश्वास रखते हैं।"

"विश्वास का अर्थ मै नहीं समझी। इसके किए जाने में मुझे विश्वास है। इसके सफल होने के विषय में मेरा और पिता जी का मत-भेद है।"

"इसका मतलब यह है कि आप और आपके पिता जी परस्पर इस विषय पर बातचीत करते रहते हैं।"

"निस्सन्देह। उन्होने अपने जीवन का सर्वोत्तम भाग राजनीति के मनन करने में ही गुजारा है। इससे, इस विषय में उनके अपने अनुभवो को जानना ठीक ही है।"

"डायरैक्ट ऐकशन के सफल होने में आपके पिता जी के क्या विचार हैं?"

"उनका विचार है कि हिन्दू भयभीत हों चाहे न हों, महात्मा गान्धी अवश्य डर जावेंगे और वे मुसलमानों को पाकिस्तान दे देंगे। हिन्दुओं ने उन्हें अपना नेता माना हुआ है। इससे उनका पाकिस्तान माना जाना हिन्दुओं से माना जाना समझ लिया जावेगा।"

"और आप क्या कहती हैं?"

"मेरा विचार यह है कि ऐसा नहीं होगा। हिन्दू इस प्रकार डराने-धमकाने से डरेंगे नहीं, इसके विपरीत यदि मुसलमानों ने खून-ख़राबा किया, तो हिन्दू एक होकर उस ऐक्शन का मुक़ाबिला करेंगे। इसमें यदि महात्मा जी ने हस्तक्षेप किया, तो कोई मनचला उनकी भी हत्या कर देगा।"

"देखो मिस बैनर्जी! मेरी एक बीवी हैं। वे मुसलमानिन हैं। उनका ख़्याल है कि अँग्रेज अफ़सर हिन्दुस्तानी फ़ौजों को परस्पर भिड़ा देंगे। यहाँ सिविल-वार हो जावेगी और खून की नदियाँ बह जावेंगी।

"यह हो सकता है।" मिस बैनर्जी का कहना था। "इस पर भी मेरा अनुमान है कि ऐसा होने नहीं दिया जावेगा।"

'क्यों? ऐसा क्यों नहीं हो सकेगा? अँग्रेज अफसर हिन्दू-मुसलमानों को खूब लड़ावेंगे। जब दोनों लड़ते-लड़ते थक जावेंगे, तब हम दोनों को अयोग्य कहकर पुनः अपना राज्य सुदृढ़ कर लेंगे।"

"ऐसा हो नहीं सकेगा। यदि अँग्रेज अफसरों ने यहाँ सिविल-वार करवाई और उसका संचालन इस प्रकार करवाया तो इस देश में अँग्रेज को सबसे ज़्यादा हानि होगी। पूर्व इसके कि यह झगड़ा बहुत दूर तक चले, हिन्दू और मुसलमान फौजी अपने-अपने अँग्रेज अफसरों को मारकर स्वयं अफसर बन जावेंगे। तब मुसलमान परास्त हो जावेंगे। हिन्दू फौजियों की संख्या अधिक है। हिन्दुओं में लड़ाके और समझदार अफसर अधिक हैं। हवाई जहाज़ का महकमा प्रायः हिन्दुओं के अधीन है। हिन्दू रियासतें अधिक हैं। हिन्दुओं की जन-

संख्या अधिक है। यह ठीक है कि पश्चिमी पंजाब, काश्मीर, और पश्चिमोत्तर सीमा प्रदेश में प्रायः हिन्दू मारे जावेंगे, परन्तु शेष पूर्ण देश में मुसलमानो और अंग्रेजों का नाम लेनेवाला कोई नहीं रह जावेगा।"

यह भीषण चित्र खिंचता देख चेतनानन्द काँप उठा। जब वह इस प्रकार की बाते अपनी स्त्री नसीम से अथवा किसी और से सुनता था तो वह कह दिया करता था, "इसी से तो हम कहते हैं कि महात्मा जी की नीति ही सत्य है। उसी से सुख और शान्ति स्थापित हो सकती है।"

मिस बैनर्जी के मन पर इसका प्रभाव उलटा पड़ा था। उस सायं वह घर गई तो अपने पिता से बोली, "बाबा, चेतनानन्द की नियुक्ति का एक और रहस्य पता चला है। उसकी बीवी मुसलमान है। शायद प्रीमियर साहब की कोई रिश्तेदारिन हो।"

"बात कैसे हुई थी?"

"साप्ताहिक रिपोर्ट पर बात होते-होते कैबिनेट योजना पर बात चल पड़ी। फिर उसके मुसलिम लीग से न माने जाने पर बात आरम्भ हो गई। इस पर उन्होंने बताया कि उनकी बीवी मुसलमानिन है और वह समझती है कि देश में 'सिविल-वार' हो जावेगी।"

"बहुत समझदार है उनकी बीवी।"

"और वह समझती है कि सिविल-वार का नतीजा अँग्रेजों के राज्य का सुदृढ़ होना होगा। पर बाबा मै समझती हूँ, कि उसकी बीवी उसे डराती रहती है, जिससे वे हिन्दुओं की सहायता न कर सकें।"

"एक बात तो इससे स्पष्ट हो गई है कि प्रीमियर साहब के घर में डायरैक्ट ऐकशन के विषय में बाते होती रहती हैं।"

"क्या होगा बाबा इससे?"

"मैं समझता हूँ कि इसका प्रहार बंगाल से आरम्भ होनेवाला है। यदि हमारी योजना के अनुकूल हिन्दुओं का आचरण न बन सका, तो विनाश अवश्यंभावी है। केवल यही नहीं कि हम नहीं रहेंगे, प्रत्युत बंगाल भी नहीं रहेगा।"

उस रात शिशिर कुमार बैनर्जी के साथी आए तो उसने अनिमा की बात बता दी। इस पर सब अपना-अपना विचार बताने लगे। इस मंडली में अनिमा भी आ बैठी। अब वे लोग उससे अनेको अन्य बाते पूछने लगे। उनके पूछने पर अनिमा ने बताया कि चेतनानन्द लाहौर का रहनेवाला है। इस पर उसकी बीवी के विषय में पूछा गया। अनिमा ने बताया कि वह उसके विषय में कुछ नहीं जानती। इस पर एक युवक ने कहा, "अनिमा बहिन! तुम उसके घर तक पहुँचने का यत्न नहीं कर सकती क्या?"

"क्या लाभ होगा इससे?"

"यह कहना तो कठिन है। इस पर भी मैं कहता हूँ कि प्रत्येक प्रकार की जानकारी रखने मे कोई हानि नहीं।"

"अच्छा दादा, यत्न करूँगी।"

इसके पश्चात् वे लोग अपने-अपने कार्य की रिपोर्ट देने लगे। अनिमा के पिता ने पूछना आरम्भ कर दिया। "रामानन्द! क्या हुआ तुम्हारे आफिस के बाबुओं का?"

यह उस युवक का नाम था जो अनिमा से कह रहा था कि चेतनानन्द की स्त्री से भेंट करे। उसने पूछे जाने पर कहा, "बाबा। मुझे तो उन लोगों से कुछ भी आशा नहीं। दो सौ क्लर्कों में से केवल एक ने मेरे कहने पर गम्भीरता से विचार किया। शेष सब हँसने लगे। एक ने तो यहाँ तक कह दिया कि मेरा दिमाग़ ख़राब हो रहा है। उनमे कुछ कांग्रेस विचार के थे। वास्तव में उन्होंने यह कह सब को मेरे विरुद्ध कर दिया कि मैं तो हिन्दू सभाईट हूँ। इससे सब 'जै हिन्द' कहकर चले गए।"

एक और ने बताया, "मैंने अपने लाज में यह बात सुनाई तो बोर्डर बोल उठे, 'भाई, हम तो कलकत्ता के बाहर के आदमी हैं किंचित्-मात्र भी झगड़े के लक्षण बनने पर हम कलकत्ता छोड़कर चले जावेंगे।' मैंने जब कहा कि उनको बाहर जाने का मौका नहीं मिलेगा, तो इस पर वे कहने लगे कि वे कर ही क्या सकते हैं। मैंने उन्हें बताया कि वे अपने लाज की तो रक्षा कर सकते हैं, तो वे कहने लगे कि उनके पास हथियार कहाँ है। मैने लाज की रक्षा के लिए एक पिस्तौल और एक-दो बम्ब देने का वचन दिया तो वे लोग मुझे 'क्रान्तिकारी पार्टी' का सदस्य मानने लगे।"

इसी प्रकार सब लोगो ने अपने-अपने क्षेत्र की बात बताई। रिपोर्टें आशाजनक नहीं थीं।

शिशिर कुमार की योजना यह थी कि आफिसो के बाबुओ को, कारखानो के मजदूरों को, मुहल्लो के लोगो को और विद्यार्थियों को समझा दिया जावे कि हिन्दू-मुसलमान झगड़ा होनेवाला है और उन्हें तैयार हो जाने के लिए कहा जावे। यदि वे हथियार माँगे तो उनसे रुपया लेकर उनके लिए पिस्तौल, रिवाल्वर, बम्ब इत्यादि का प्रबन्ध कर दिया जावे। पहिले तो लोग यह बात मानते ही नहीं थे कि झगड़े की सम्भावना है, फिर जब रिवाल्वर अथवा बम्ब रखने की बात करते थे तो लोग उनको खुफिया पुलिस का अथवा देश में हिन्दू-मुसलिम फसाद करनेवाला हिन्दू सभाईट कहकर दुरका देते थे। हिन्दू-मुसलिम झगड़े से आँखें मूँदने का स्वभाव कांग्रेस के प्रचार से बना था। श्री सुभाषचन्द्र बोस की आज़ाद हिन्द फौज में हिन्दू-मुसलमान दोनों के होने से लोगों के मन में यह बात आती ही नहीं थी कि कलकत्ते में, जो सुभाष बाबू का निवास-स्थान है, कभी हिन्दू-मुसलमान फसाद हो सकता है।

इन रिपोर्टों से सब निराश हुए थे। इस पर भी अनिमा का कहना था कि वह प्रति रविवार घर-घर और मोहल्ले-मोहल्ले में

जावेगी और लोगों को तैयार होने के लिए कहेगी। अनिमा का उत्साह देखकर सब पुन: उत्साह से भर गए।

[८]

चेतनान्द को अनिमा बैनर्जी की बातें विस्मयजनक, परन्तु युक्ति-युक्त प्रतीत हुई थीं, वह उसकी बातो से इतना प्रभावित हुआ था कि इच्छा न रहते हुए भी, उसके मुख से उसकी बात नसीम के सम्मुख निकल गई। नसीम ने पूछा, "एक क्रान्तिकारी की लड़की सरकारी आफिस में नौकर कैसे हो गई?"

"उसके पिता मिस्टर दास के सहपाठी थे।"

"मुझे तो यह सब जालसाज़ी मालूम होती है। बंगाल में बहुत ऐसे लोग हैं जो झूठ-मूठ में माथे पर लाल रंग लगाकर शहीद बनना चाहते हैं।"

"मैं समझता हूँ कि उससे परिचय बढ़ाकर और बातें मालूम करनी चाहिए।"

"उसको एक दिन यहाँ ले आइए।"

एक-दो दिन पीछे की बात है। प्रीमियर साहब की एक 'कान्फिडैन्शल' चिट्ठी आई। चेतनानन्द ने खोल पढ़ी तो मिस बैनर्जी को बुलाकर वह दिखा दी। मिस बैनर्जी, लिफाफे पर 'कान्फिडैन्शल' मोटे अक्षरों और लाल स्याही में छपा देख, काँप उठी थी। वह समझ रही थी कि पिछले रविवार लोगो को तैयार करने के लिए, जाने के कारण ही उसके लिए कोई आर्डर आया है। जब चेतनानन्द ने वह चिट्ठी उसके ही हाथ में दे दी तो उसे लेते हुए उसका हाथ काँप उठा। उसने चिट्ठी पढ़ी। उसमें लिखा था। 'प्रिय चेतनानन्द, तुम्हारी रिपोर्ट पढ़कर मुझे यह विश्वास हो गया है कि एक पंजाबी एक बंगाली से अधिक सही दिमाग़ रखता है। यह रिपोर्ट बहुत ही उत्तम ढंग से लिखी हुई थी। जो बातें मैं जानना चाहता

था, ठीक वही उसमें भली-भाँति लिखी गई थीं। मैं तुम्हारे काम स बहुत खुश हूँ .....।'

अनिमा जहाँ यह चिट्ठी पढ़कर निश्चिन्त हुई, वहाँ प्रसन्न भी। उसने मिस्टर चेतनानन्द की ओर मुस्कराकर देखते हुए कहा, "मैं आपको बधाई देती हूँ।"

"बधाई की पात्र तो आप हैं न?"

"यह तो सदैव होता ही है। काम चाहे कोई करे, नाम अफ़सरों का होता है, और मैं समझती हूँ कि होना भी चाहिए।"

"कुछ भी कहिए, समझनेवाले समझ जाते हैं। मैं इस बात को मानता हूँ कि आप अपने काम में सब प्रकार से योग्य हैं। जहाँ तक मेरा बस चलेगा, मैं आपकी उन्नति में यत्नशील रहूँगा।"

"आपके आश्वासन के लिए मैं आपका धन्यवाद करती हूँ।"

"छोड़ो इस बात को। मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ। यह आपके निजी जीवन के सम्बन्ध मे है। इसलिए यदि नाराज न हो तो पूछूँ?"

"एक अधीन व्यक्ति अपने अधिकारी से रुष्ट होगा भी तो क्या कर लेगा? इस पर भी मैं आपसे पहिले ही कह चुकी हूँ कि पूछना आपकी इच्छा के अधीन है परन्तु उत्तर देना मेरे वश की बात है।"

"तो ठीक है, आपकी सगाई अभी हुई है या नहीं?"

अनिमा गम्भीर विचार में पड़ गई। वह सोचने लगी थी कि उसका इस बात को पूछने का क्या प्रयोजन है। उसने चेतनानन्द के मुख पर देखा, परन्तु कुछ समझ नहीं सकी तो उत्तर देने में किसी प्रकार की हानि न देख बोली, "यद्यपि मुझको आपके इस प्रश्न पूछने में आपका प्रयोजन समझ नहीं आया, तो भी इसका उत्तर देने मे कोई हानि न मान बताती हूँ, मेरी सगाई हो चुकी है।"

"विवाह कब होगा?"

"शायद इस जन्म में नहीं हो सकेगा।"

"क्यों! कोई आर्थिक बाधा है क्या?"

"जी! मेरी सास मेरे पिता से दस सहस्र रुपये की आशा करती हैं।"

"और वह लड़का जिससे तुम्हारी सगाई हुई है, क्या चाहता है?"

"कुछ नही। वह तो कहता है कि मुझसे ही विवाह करेगा और वह भी बिना दहेज लिए।"

"तो करता क्यो नहीं? कितना काल हुआ है सगाई हुए?"

"सगाई हुए ग्यारह वर्ष हो चुके हैं, उनकी माँ से जवाब मिले तीन वर्ष हो चुके हैं और हमें परस्पर वचनबद्ध हुए भी लगभग तीन वर्ष हो चुके हैं।"

"यह वचनबद्ध के क्या अर्थ हैं, मिस बैनर्जी?"

"जब हम दोनों ने आजन्म अविवाहित रहने का वचन किया था।"

"क्यो? क्या उसकी माँ ने आप लोगो से अधिक जीने का पट्टा लिखाया हुआ है?"

"यह बात नहीं श्रीमान्! मैं अभी बीस वर्ष की आयु की हूँ। मेरे भावी पति भी इक्कीस वर्ष के होंगे और उनकी माता जी पचास से ऊपर हैं। परन्तु अपने बड़ो की मृत्यु का चित्त में विचार भी लाना हम पाप समझते हैं। कौन जाने किस समय किसकी मृत्यु हो जावेगी। इस पर आशा बाँध बैठना महामूर्खता होगी। इस कारण हम सदा मन मे यही सोचते, समझते और आशा करते हैं कि अगले जन्म मे तो हमारा मिलन हो सकेगा।"

"बहुत विचित्र होती हैं आपकी बातें, मिस बैनर्जी! यह सब कुछ किसने आपको सिखाया है? और फिर कौन है वह, जो केवल एक विचार के लिए पूर्ण जीवन की आहुति करने पर तैयार हो गया है?"

"मेरे विचार मेरे माता-पिता की देन हैं। वे हिन्दू हैं और पुनर्जन्म पर अगाध विश्वास रखते हैं। एक बात शायद आपको पता नहीं कि मेरी माँ पंजाब की रहनेवाली थीं और हिन्दू विचारा-धारा पर उनका दृढ विश्वास था।"

"हाँ, एक बात याद आई है। मेरी बीवी का विचार है कि न तो आपके विचार क्रान्तिकारियों के हैं और न ही आपके पिता जी के। अब आपको इस प्रकार की हिन्दू फिलौसफी की, जिनके पक्ष में न तो कोई युक्ति है और न कोई प्रमाण, बातें करते देख उसका कहना ठीक ही प्रतीत होने लगा है।"

अनिमा हँस पड़ी। चेतनानन्द विस्मय में उसका मुख देखता रहा। उसने अपने विचारों का संग्रह कर कहना आरम्भ किया, "आपका ऐसा कहना आपके ज्ञान के अनुसार ठीक ही है। परन्तु यदि आप इसको धृष्टता न मानें तो मैं कहती हूँ कि आपका ज्ञान बहुत सीमित है। भारतवर्ष में प्रायः क्रान्तिकारी हिन्दू विचार-धारा के माननेवाले हुए हैं। श्री सावरकर, ला० हरदयाल, ला० लाजपत-राय, भाई परमानन्द, मदन लाल ढींगरा, खुदी राम बोस, प्रफुल्ल चन्द्र चक्रवर्ती, कन्हैया लाल दत्त, सत्येन्द्र बोस और बीसियों अन्य क्रान्तिकारी हिन्दू-धर्म पर अगाध विश्वास रखनेवाले हुए हैं। ये लोग गीता की शिक्षा पर विश्वास रखते हुए हँसते-हँसते फाँसी के तख्ते पर चढ़ जानेवाले थे।"

चेतनानन्द इस लम्बी सूची को सुन चकित रह गया और विस्मय में अनिमा का मुख देखता रह गया।

अनिमा और अधिक कहना नहीं चाहती थी। इस कारण अपना टाइप-राइटर निकाल दफ़्तर के काम में लग गई। चेतनानन्द भी अपनी मेज पर रखी फाइलों का निरीक्षण करने लगा। उस दिन सायं चाय के समय चेतनानन्द ने अनिमा को अगले दिन अपने घर चाय का निमं-त्रण देते हुए कहा, "मैं चाहता हूँ कि आपको मैं अपनी बीवी बेगम

नसीम से मिला दूँ। इससे शायद हमारा सीमित ज्ञान बढ़ सकेगा।"

[६]

चेतनानन्द अभी तक प्रीमियर साहब की कोठी में ही रहता था। उसके लिए भवानीपुर में एक कोठी का प्रबन्ध कर दिया गया था, परन्तु उस कोठी की कुछ मरम्मत होनी थी। इससे चेतनानन्द ने अभी वहाँ जाना ठीक नहीं समझा था। अनिमा के मन में गुद-गुदी-सी हो रही थी। वह मन मे सोचती थी कि एक क्रान्तिकारी की लड़की और हिन्दुओ की ओर से मुसलमानों से झगड़े की तैयारी में लगी हुई, प्रान्त के प्रीमियर के घर चाय पर जा रही है। वह इसके परिणाम का मन में अनुमान लगाती थी। अनिमा के लिए यह एक नया अनुभव था।

दरवाजे पर, उसके वहाँ पहुँचने की सूचना थी। ज्योंही उसने अपना नाम बताया, दरबान उसे साथ लेकर चेतनानन्द के निवास-स्थान पर जा पहुँचा। कमरे के बाहर पहुँच उसने 'मिस अनिमा बैनर्जी' के नाम की घोषणा कर दी। घोषणा होते ही चेतनानन्द कमरे से बाहर आया और अनिमा को हाथ जोड़ नमस्कार कर सत्कार से भीतर ले गया। वहाँ ले जाकर उसने अपनी बीवी से परिचय कराया, "यह हैं मेरी धर्मपत्नी, श्रीमती नसीम।"

दोनो बहुत प्रेम से मिलीं और फिर एक ही सोफा पर बैठ गईं। बैरा ने उनके सामने चाय लगानी आरम्भ कर दी। नसीम, अनिमा की बहुत उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी। चेतनानन्द ने उसकी अपनी बीवी के सामने बहुत प्रशंसा कर रखी थी। अनिमा का पहिला प्रभाव जो नसीम पर पड़ा, कुछ अच्छा नहीं था। वह आशा कर रही थी कि यह लड़की बहुत सुन्दर होगी और चेतनानन्द उसके सौन्दर्य से

प्रभावित होकर, उसके अन्य गुणों का अकारण बखान कर रहा है। वह इस अद्भुत लड़की को स्वयं देखना चाहती थी।

अनिमा को देख जहाँ नसीम को निराशा हुई, वहाँ उसके गुणों को जानने की उत्कंठा जाग उठी। उसने बात आरम्भ कर दी, "ये साहब आप की बहुत तारीफ़ करते रहते थे। इससे मेरे मन में आप से मिलने की ज़बरदस्त ख्वाहिश पैदा हो गई। आपने आकर मुझे नहायत मशकूर किया है।"

"मै समझती हूँ कि मुझे देखकर आपको ज़रूर निराशा हुई होगी।"

"क्यो ? आप ऐसा क्यों समझती हैं ? मैंने तो ऐसा महसूस नहीं किया ?"

"तब तो आप अवश्य एक विशेष औरत हैं। मेरी सूरत और रूप-रेखा ऐसी है कि प्रायः फैशनेबल स्त्रियाँ इसे पसन्द नही करतीं। मुझे बनाव-शृंगार का ढङ्ग नहीं आता।"

"ऐसा नहीं बहिन। मैंने तुम्हारी सूरत-शक्ल देखने के लिए इस मुलाकात की ख्वाहिश नहीं की थी। मैंने सुना है कि तुम्हारी माता जी एक पंजाबिन लड़की थीं। उन्होंने तुम्हारे पिताजी को पसन्द किया, यह सचमुच ही हैरानी की बात है। एक 'मारो काटो' पंथ के आदमी को वरना एक औरत को शोभा नहीं देता। औरत तो शान्ति और रहम की मूर्ति होनी चाहिए।"

अनिमा हँस पड़ी। उसने कहा, "यह 'मारो काटो' पंथ तो महात्मा जी के शब्द हैं। उन्होंने इनका प्रयोग, जब श्री सावरकर विलायत में भारत की आज़ादी का आन्दोलन चला रहे थे, वहीं किया था। इससे वह सावरकर और अन्य क्रान्तिकारियो के काम की निन्दा करना चाहते थे।"

"महात्मा जी हमारे गुरु हैं।"

"ऐसा प्रतीत होता है कि माता जी महात्मा जी के विचारों की अनुयायी नहीं थीं। इसी से उन्होंने पिता जी, जो 'मारो काटो' पंथ के थे, को अपना स्वामी मान लिया था।"

"शायद वे किसी भी पंथ की माननेवाली नहीं थीं। उनका प्रेम ही पंथ रहा प्रतीत होता है।"

"जब से मैंने होश सम्भाली थी मैंने उन्हें दुर्गा की पूजा करते देखा था। वे कहा करती थीं कि छत्रपति शिवाजी और कलगीधारी गुरु गोविन्दसिंह जी की इष्ट देवी श्री दुर्गा भवानी ही थीं।"

"आप किस देवता की पुजारिन हैं?"

"मैं काली की उपासिका हूँ। देखिए नसीम बहिन। मैं आपको हिन्दू-धर्म के एक भेद की बात बताती हूँ। जब हम किसी काम को नेक और मनुष्य के हित में समझते हैं तो उसे भगवान का नाम लेकर कर देते हैं। हमारे देवी-देवता जहाँ दया के आगार हैं, वहाँ दुष्टों के दमन के लिए अति कठोर और क्रूर-हृदयवाले भी बन जाते हैं। काली माई को खप्पड़ मे दैत्यो का खून भरकर पीने मे किंचित् भी शोक नहीं होता।"

"दैत्य किसको कहते हैं?"

"जो मनुष्य का सा व्यवहार न करे।"

"इसका परीक्षक कौन होगा कि यह व्यवहार मनुष्य का सा है और वह व्यवहार मनुष्यता के ख़िलाफ़ है।"

"मनुष्य की अन्तरात्मा ही इसका निर्णय कर देती है। इस पर भी मनुष्य को कभी अपनी बुद्धि पर सन्देह हो जाता है तो वह भगवान का नाम लेकर अपने कार्य को सम्पन्न कर देता है। इस प्रकार अन्तरात्मा की प्रेरणा पर और परमात्मा का नाम लेकर की गई महाहत्या से भी पाप नहीं लगता।"

बातों ही बातों में चाय समाप्त हो गई और इतनी देरी हो गई कि दिए जलाने पड़ गए। अनिमा ने लैम्प जलते देख कहा, "मैंने आपका बहुत समय ले लिया है।"

"नहीं, हमें कुछ काम नहीं है। आप अभी और बैठिए। ये तो प्रीमियर साहब के पास जा रहे हैं। हम अभी और बातें करेंगे। मैं तुम्हें अपनी मोटर में छोड़ आऊंगी।"

जब चेतनानन्द चला गया तो नसीम और अनिमा उठकर साथ के कमरे में चली गईं। वहाँ नसीम उसे अपने बचपन के काल की फोटो दिखाने लगी। नसीम का एक चित्र उसकी पाँच वर्ष आयु के काल का था। अनिमा उसे देख, नसीम के साथ मिलाने लगी। दोनो का मिलान कर कहने लगी, "कितना अन्तर पड़ गया है तब की नसीम में और आज की नसीम में। इस तस्वीर में नसीम शरारत से भरी हुई दिखाई देती है और इस समय आप के मुख पर सन्तोष और शान्ति की छाप दिखाई देती है।"

नसीम यह व्याख्या सुनकर हँस पड़ी। उसने पूछा, "क्या देखा है आप ने इस तस्वीर में?"

"तनिक तस्वीर में अपनी आँखें देखिए। ऐसा मालूम होता है कि किसी को चुटकी काटकर खड़ी हैं और उसको वेदना में रोते देख मज़ा ले रही हैं।"

यह सुन नसीम गम्भीर विचार में डूब गई। कुछ देर तक अपने मन में सोचकर बोली, "बहुत ही ग़ज़ब की कही है आपने। इस तस्वीर की तवारीख़ मैं बताती हूँ। नज़ीर भैया विलायत जा रहे थे। मुमताज़ अब्बाजान के साथ उनको बम्बई जहाज़ पर चढ़ाने जा रही थी। मेरे लिए घर पर अम्मी के पास रहने का फैसला हुआ था। मैंने सत्याग्रह कर दिया। तीन दिन तक खाना-पीना छोड़ दिया। आख़िर पिता जी मान गए और मुमताज की जगह मुझ को ले जाने के लिए राजी हो गए। इससे मुमताज रूठ गई और मैं खुश हो गई।

भैया जाने से पहिले तस्वीर लेने लगे तो मुमताज़ ने तस्वीर उतरवाने से इन्कार कर दिया। मुझे उसके रोने को देखकर मज़ा आ रहा था। उस वक्त भैया ने तस्वीर ली और वह तस्वीर यह है।

"पर अनिमा बहिन, तुमने कमाल कर दिया है। कितना ठीक अन्दाज़ लगाया है तुमने।"

"मैंने सामुद्रिक विद्या का अध्ययन किया हुआ है। इससे मैं दूसरो के मुख को देखकर उनके अन्तरात्मा की बातें जान सकती हूँ।"

"वे बता रहे थे कि आप की सगाई तो हो चुकी है, मगर शादी होने की उम्मीद नहीं।"

अनिमा ने केवल सिर हिलाकर उसके कहने का समर्थन कर दिया। इस पर नसीम ने फिर पूछा, "मुझको यह जानकर बहुत हैरानी हुई थी कि आप दोनो ने शादी न करने का वचन कर लिया है।"

अनिमा ने अब भी केवल सिर हिलाकर बात को स्वीकार कर लिया। नसीम ने आगे पूछा, "मगर इतनी सख़्त कसम खाने की क्या ज़रूरत है? अगर आप के माता-पिता नहीं मानते तो क्या आप उनसे बिना पूछे विवाह नहीं कर सकते?"

"मेरे पिता जी ने न नहीं की। उनकी माता है जिन्होंने मुझको पसन्द नही किया। मैंने तो उनको किसी दूसरी से विवाह कर लेने के लिए कहा है, परन्तु वह कहते हैं कि उनका मुझसे प्रेम ऐसा है कि वे किसी दूसरे से विवाह कर ही नहीं सकते।"

"तो दोनों के जीवन बरबाद हो जावेंगे।" नसीम ने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा।

"मुझको तो इसमें किसी प्रकार की भी बरबादी प्रतीत नहीं होती। हमारा जीवन अति मधुर बना हुआ है। बात यह है कि हम पुनर्जन्म और पुनर्मिलन में विश्वास रखते हैं। हम समझते हैं कि हमारा प्रेम

इतना दृढ़ है कि वह जीवन-भर की प्रतीक्षा के बोझे को सहन कर सकता है।"

"बहुत विश्वास है आपको उन पर?"

"हाँ। हम मिलते रहते हैं और मैं समझती हूँ कि दिन-प्रतिदिन हमारा प्रेम दृढ़ होता जाता है।"

"कहाँ मिल गए हैं आपको ऐसे आदमी?"

"यह एक लम्बा किस्सा है। आपका समय व्यर्थ जावेगा।"

"नही, नहीं, सुनाओ।" नसीम ने अनिमा के गले में बाँह डालकर कहा, "मुझको ऐसे आदमी की कहानी सुनने का बहुत शौक है।"

अनिमा ने कुछ काल तक आँखे मूँदकर सोचा और फिर कहना आरम्भ कर दिया। "मैं छटी श्रेणी में पढ़ती थी और वे श्रेणी के मॉनिटर थे। सब पर उनका दबदबा था। केवल मै ही थी जो उनको बिल्कुल नहीं मानती थी। वे श्रेणी के लड़के-लड़कियो से अपना काम कराया करते थे, परन्तु मैंने उनका कभी कोई काम नहीं किया था। एक दिन मैं अपनी डेक्स पर बैठी थी और वे बोर्ड के पास खड़े एक लड़के से बात कर रहे थे। एकाएक उन्होंने मेरी ओर देख कहा, 'अनिमा मेरी डेक्स में से अँग्रेजी किताब दे जाओ।'

"मैंने उत्तर दिया। 'अपने आप पकड़ लो। मै पढ़ रही हूँ।'

"इतना कह मैं कापी पर कुछ लिखती रही। वास्तव में मैं तिरछी दृष्टि से उसको देख रही थी। मेरा उसको उत्तर कमरे मे दूसरे लड़कों ने भी सुना और वे क्रोध में लाल-पीले हो मुझ पर रोब जमाने के लिए धीरे-धीरे नाप-नापकर कदम रखते हुए मेरे पास आ खड़े हुए। मैंने उनकी ओर ध्यान नहीं किया। उन्होंने मुझको डाँटकर कहा, 'अनिमा।' मै उठकर उसकी ओर देखने लगी। वे मेरी आँखों में देखने लगे थे।

"उन्होंने कहा, 'अनिमा मेरी किताब पकड़ाओं।' मैंने अपने पूरे बल से उसके मुँह पर एक चाँटा दे मारा। वह इस बात की आशा नहीं करता था। उसने जवाब में मुझको एक मुक्का मारना चाहा, परन्तु मै पहिले ही तैयार खड़ी थी। उसके मुक्के के लगने से पूर्व ही मै उस पर पिल पड़ी। हम दोनों गुत्थमगुत्था हो गए। फिर क्या हुआ मै नहीं जानती। मुझको तब होश आई जब वे मेरे नीचे थे और मै उनको धराधर मुक्कों से पीट रही थी। उनके दो दाँत टूट चुके थे और मुख से लहू बह रहा था। श्रेणी के विद्यार्थी प्रसन्नता में तालियाँ बजा रहे थे। मैं पीटती हुई कह रही थी, 'मिल गई पुस्तक, गिरीश !' यह उनका नाम है। एक लात मारकर मैं उठ पड़ी।

"जब मै एक ओर हटकर खड़ी हो गई, तो मैंने देखा कि वह उसी तरह भूमि पर पड़ा है। मैंने समझा कि वह अचेत हो गया है। इस विचार के आते ही मै उसे उठाने के लिए आगे बड़ी तो वह बोला, 'हट जाओ अनिमा। मुझे न छूना।' मैं पीछे हट गई। उसके मुख से रक्त बहते देख मैं डर गई थी। मेरे पीछे हट जाने पर वह धीरे-धीरे उठा और अपने कुर्ते की बाँह से अपने मुख से निकल रहे खून को पूँछते हुए, अपनी पुस्तको को लेकर अपने घर को चला गया।

"अगले दिन वह स्कूल नहीं आया। मास्टर ने सारी कहानी सुन ली थी। और जब हम श्रेणी में बैठ गए और मास्टर वहाँ आया तो मैंने समझा कि वह मुझे पीटेगा। हुआ इसके उलटा। उसने आते ही विद्यार्थियो को कहा, 'आज श्रेणी का नया मॉनिटर चुना जावेगा।'

"लड़कों ने प्रसन्नता मे तालियाँ बजानी आरंभ कर दी। मास्टर साहब ने उनको चुप कराकर कहा, 'मॉनिटर के लिए नाम प्रस्तावित करो।'

"लड़को ने मेरा नाम उपस्थित कर दिया। मैंने जब देखा कि

और किसी का नाम उपस्थित नहीं हो रहा तो मैंने उठकर कहा, 'श्रीमान् ! मैं अपना नाम वापिस लेती हूँ ।'

"इस पर मास्टर ने विस्मय में मेरी ओर देखना आरम्भ कर दिया। मैंने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, 'मैं समझती हूँ कि गिरीश बाबू को ही मॉनिटर के पद पर रहना चाहिए। उसको पद से हटाने का कोई कारण नहीं है।'

"'तुम्हारे साथ झगड़ा जो किया था उसने।' एक लड़के ने कहा।

"'उस झगड़े का फल मैंने उसको दे दिया था।'

"'पर मै उसको इस पद से हटाता हूँ।' मास्टर ने कुछ रुष्ट होकर कहा।

"'जब आप किसी को पद से हटाने की शक्ति रखते हैं तो हमसे राय क्यो लेते हैं, स्वयं ही नियुक्त भी कर दीजिए।'

"मास्टर भी इस उत्तर से स्तब्ध रह गए। फिर कुछ सोचकर बोले, 'ठीक है। मैं ही नियुक्त करता हूँ। मैं अनिमा देवी को तीसरी श्रेणी का मॉनिटर नियत करता हूँ।'

"'और मै इस नियुक्ति को अस्वीकार करती हूँ।'

"'क्यो?'

"'मै गिरीश बाबू के हटा दिए जाने को अनुचित समझती हूँ।'

"'अनिमा! यह क्या कर रही हो?' मास्टर ने कहा, 'तुम मेरी आज्ञा की अवहेलना करने लगी हो।'

"'मै जानती हूँ कि आपकी आज्ञा अनुचित है। मेरी माँ ने मुझे बताया है कि किसी की भी आज्ञा अनुचित होने पर अमान्य होती है। मेरा विचार है कि गिरीश बाबू हमारे मॉनिटर ठीक ही हैं।'

"'उसने तुम्हारे साथ झगड़ा कर नियम-भंग किया है।' मास्टर साहब ने कहा।

"'इसका दंड मैने उसे दे दिया है। मै समझती हूँ कि यदि तो मेरा उसे पीटना आप ठीक समझते हैं, तब तो उसे अपने अपराध

का दड मिल चुका है। परन्तु यदि आप उसे स्वयं दंड देना चाहते हैं तो मुझे उसको पीटने के लिए दंड मिलना चाहिए। यह मुझे पसंद नहीं। इस कारण मै उसको और अधिक दंड दिया जाना पसन्द नहीं करती।'

"मास्टर और सब विद्यार्थी मुझे इस प्रकार उसका पक्ष लेते देख हैरान थे। मेरे मॉनिटर बनने से न करने की बात मुख्याध्यापिका तक पहुँची। उसने मुझे बुलाया और मैने वही युक्ति उसके सम्मुख दे दी जो अपनी श्रेणी में दी थी। मुख्याध्यापिका स्त्री थी और वह मेरी युक्ति को जल्दी समझ सकी। उसने मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए पूछा, 'बेटी यह सब तुम्हे किसने बताया है?'

"'इसमे सिखाने-पढ़ाने की कोई बात ही नहीं।' मैंने उत्तर दिया। 'आप बताईये एक अपराध का दो बार दंड कैसे दिया जा सकता है?'

"मेरी बात मान ली गई। गिरीश बाबू कई दिन तक स्कूल नहीं आया और मेरे मन मे उसके लिए चिन्ता और सहानुभूति उत्पन्न होने लगी। एक दिन मै उसके घर का पता कर उसकी ख़बर लेने जा पहुँची। तब तक श्रेणी मे एक लड़की मेरी सहेली बन चुकी थी। वह भी मेरे साथ थी। जब हमने उसके घर का दरवाजा खटखटाया तो एक स्त्री बाहर आई। हमने अपने आने का उद्देश्य वर्णन किया तो वह औरत विस्मय में हमारा मुख देखने लगी। मैंने कहा, 'मैने उसे पीटा था और मै उससे क्षमा माँगने आई हूँ।'

"वह औरत अभी भी हमारा मुख देखती रही और कुछ बोली नहीं। मैंने विनीत भाव मे कहा, 'आप गिरीश जी की माँ हैं क्या? आप बोलती क्यो नहीं?'

"इस पर उस स्त्री ने मुख खोला। वह बोली। 'मैं उसकी माँ नहीं हूँ। उसकी रिश्ते में मौसी हूँ। मै यह सोच रही हूँ कि तुम लोगो को उससे मिलने दूँ या नहीं।'

"'क्यो नहीं मिलने देना चाहतीं ?' मेरा प्रश्न था।

"'उसे उसी दिन से ज्वर आ रहा है और डाक्टर कहते हैं कि उससे बहुत बात करने से उसको सरसाम हो जावेगा।'

"'हम बहुत बात नहीं करेंगे। केवल मैं क्षमा माँगूँगी।'

"'अच्छी बात है। आओ।' यह कह उसने हमारे भीतर जाने को रास्ता छोड़ दिया।

"जब हम गिरीश की चारपाई के पास पहुँचे, तब वह अर्धचेतन अवस्था में पड़ा था। उसकी मौसी ने हमारे लिए दो कुर्सियाँ लाकर रख दीं। हम दोनो बैठ गईं। कुछ काल तक हम उसकी ओर चुप-चाप देखती रहीं। पश्चात् मैंने कहा, 'गिरीश जी!' इस पर उसने आँखे खोलीं। पहिले तो उसकी आँखो में हमें पहिचानने के लक्षण प्रतीत नहीं हुए। वह हमारी ओर बितर-बितर देखता रहा। पश्चात् उसके माथे पर त्योरी चढ़ने से मैं समझ गई कि वह मुझको पहिचान गया है। मैंने बहुत ही विनीत भाव में कहा, 'गिरीश जी, मुझको क्षमा कर दो। मेरा आशय यह नहीं था।'

"न जाने उसके मन में क्या आया। उसके माथे से त्योरी उतर गई। उसके मुख पर मुस्कराहट दौड़ गई। यह मुस्कराहट एक क्षण के लिए ही रही और पुनः वह अर्धचेतनावस्था में हो गया। अब उसकी मौसी ने हमें सकेत से उठ चले जाने को कह दिया।

"मैंने घर जा अपनी माता से सब बात बताई तो उन्होंने मुझसे प्यार कर कहा कि मैंने ठीक ही किया है। मुझको फिर भी जाना चाहिए। दो दिन पीछे मै फिर गई। इस बार मै अकेली थी। गिरीश की मौसी ने इस बार मुस्कराकर मेरा स्वागत किया और मेरे कुछ कहने से पूर्व ही मुझे उसके पास ले गई। इस समय उसका ज्वर उतर चुका था और वह मुझको देखते ही पहिचान गया। एक सप्ताह से ऊपर के ज्वर से वह बहुत दुर्बल हो चुका था। उसकी गाल्लें पिचक

गई थीं। मैंने पहिले दिन की तरह फिर उसे कहा, 'गिरीश जी, मुझको क्षमा कर दो। मेरा यह आशय नहीं था।'

"इस बार भी वह बोल नहीं सका। इस पर भी उसके मुख पर संतोष की झलक स्पष्ट दिखाई देती थी। मैं कुछ काल तक बैठी रही और फिर उसकी मौसी की ओर देखकर बोली, 'मेरी माँ जी ने जब यह घटना की बात सुनी तो उनको बहुत शोक हुआ था।'

"इस पर उसकी मौसी ने मेरे सिर पर हाथ फेरकर प्यार किया और कहा कि मैं बहुत अच्छी लड़की हूँ। इसके पश्चात् गिरीश के ठीक होने तक मैं कई बार वहाँ गई। गिरीश को स्कूल जाने योग्य होने के लिए एक मास लग गया और तब तक उसके मन से मेरे प्रति द्वेष पूर्णतया मिट चुका था।

"जब वह स्कूल में उपस्थित हुआ तो विद्यार्थियों ने उसे मेरे मॉनिटर बनने से न कर देने की बात बताई और मेरी युक्ति भी बताई। इसका उसके मन पर भारी प्रभाव पड़ा। एक दिन स्कूल से लौटते हुए उसने मुझसे कहा, 'अनिमा। मेरी बीमारी में तुम मुझसे क्षमा माँगने आई थी न? वास्तव में क्षमा मुझको माँगनी चाहिये थी। मेरी मौसी कहती थीं कि तुम बहुत अच्छी लड़की हो और वे तुमको कल मेरे जन्म-दिन के उत्सव पर बुलाती हैं। बताओ, आओगी न!'

"इस प्रकार मैं उनके घर मे आने-जाने लगी। प्रति दुर्गा-पूजा और सरस्वती-पूजा के अवसरों पर मैं उनके घर और वे मेरे घर आने-जाने लगे। यह बात हमारे दसवीं श्रेणी तक पढ़ने तक चलती रही। इन दिनो उसकी माँ, जो उसके पिता के साथ इंगलैण्ड गई हुई थी, आ गई। उसे, जब मेरा और मेरे माता-पिता का परिचय मिला तो उसको मुझसे मिलने से मना कर दिया गया।

"इन दिनो सरस्वती-पूजा होनेवाली थी। सदा की भाँति मैंने उसे निमत्रण दिया तो उसने अपनी माँ का कहना सुना दिया। मैंने पूछा, 'आपकी माता जी मुझसे क्यो नाराज़ हैं?'

'''अनिमा ! यदि मै सत्य कहूँ तो नाराज़ तो न हो जाओगी ?'

''मेरे मन मे एक बात सूझी । मैने उसे कहा, 'मै समझती हूँ कि मुझको मालूम हो गया है ।'

'''तुम सब बाते पहिले जान जाती हो । परन्तु मै कहता हूँ कि यह बात तुम कभी नहीं जान सकती ।'

'''अच्छा सुनो ।' मैने कहा । उसे विश्वास था कि उसकी बात मैं नही जानती । मेरे मन में एक बात बार-बार आ रही थी । मैने वही कह दी । 'मेरे पिता क्रान्तिकारी हैं, इसलिए । तुम्हारी माँ एक सरकारी अफसर की स्त्री हैं न ?'

''मेरी बात सुनकर वह चकित रह गया । ठीक यही बात थी । अब मैंने एक बात और कही, 'मै एक बात और बताना चाहती हूँ । तुम हमारे घर में आना चाहते हो ।'

'''मैं हार मानता हूँ ।' उसने कहा, 'तुमने ठीक बात जान ली है । मैं सरस्वती-पूजा के दिन अवश्य आऊँगा । पर यह बात तुम अपने माता-पिता से नहीं कहना । मुझे डर है कि वे मेरे माता-पिता और मुझ से घृणा करने लगेंगे ।'

''उस वर्ष से लेकर मैने उनके घर जाना छोड़ दिया, परन्तु गिरीश जी हमारे घर आते हैं । दो वर्ष हुए मेरी माँ बहुत बीमार हो गईं । गिरीश जी ने उनसे मेरे साथ विवाह करने की स्वीकृति माँगी । इस पर मेरी माँ ने कहा कि वे पहिले अपनी माँ से पूछ लें । गिरीश जी अपनी माँ से पूछने गए परन्तु निराश लौटे । मैने उनका मुख देखते ही कह दिया, 'बस रहने दीजिए, मैं सब समझ गई हूँ । बताऊँ ?'

'''भला बताओ । तुम सदैव ज्योतिषी बन जाती हो ।'

'''तो सुनो ।' मैंने उसकी आँखो में देखते हुए कह दिया, 'आपकी माँ ने कहा है कि आपको दहेज में दस सहस्र रुपया मिलना चाहिए । बताइए ठीक है न ? एक बात और । आपने अपनी माँ से कह दिया है कि आप यदि विवाह करेंगे तो मेरे से ही करेंगे । इस पर आपकी माँ

ने कहा है कि यदि आपने ऐसा किया तो वे विष खाकर मर जावेंगी।'

"बात शतशः ठीक थी और गिरीश जी मेरी इस भेद की बात को बताने पर बहुत चकित हुए। उन्होंने मुझ से पूछा कि मुझे यह बात कैसे पता चल जाती है। मैंने कह दिया कि 'मेरे मन मे फुरकती है।' इस पर मेरी माँ ने बताया, ऐसा कई बार उसके और मेरे पिता जी के भीतर भी हो चुका है। उनका कहना था कि जब दो प्राणी बहुत प्रेम करते हैं तो दोनो के मन्द में एक प्रकार का सम्बन्ध बन जाता है और इससे एक दूसरे के मन की बात का पता चल जाता है।

"इस पर गिरीश जी ने कहा, 'तो यह सिद्ध हो गया कि अनिमा का मुझ से बहुत प्रेम है।'

"'इस बात का कोई अनुमान नहीं लगा सकता,' मेरी माता जी ने कहा, 'अन्तरात्मा की बाते तो भगवान् ही जानता है। हाँ, कभी प्रेमी परस्पर भी इसका मान कर सकते हैं। वे इसे न समझते हुए भी जानते हैं। देखो बेटा गिरीश। तुमने कभी देवता की सिद्धी की बात सुनी है। सिद्धी के केवल यह अर्थ हैं कि सिद्ध व्यक्ति अपने इष्टदेव से इतना एकीकरण कर लेता है कि दोनो में ज्ञान और शक्ति का अंतर कम हो जाता है। जितनी-जितनी सिद्धी अधिक होती जाती है उतना-उतना ही देवता और भक्त में भेद-भाव मिटता जाता है। देवता का ज्ञान और उसकी शक्ति तो कम हो नहीं सकती। हाँ! भक्त के ज्ञान में वृद्धि हो जाती है। यही बात परस्पर प्रेमियों की है।'

"'बहुत विचित्र बात है।' गिरीश जी का कहना था।

"इस बात के पश्चात् तो हम दोनों मे प्रेम अधिक और अधिक ही होता जा रहा है। इस घटना के दो मास पश्चात् माता जी का देहान्त हो गया। हम दोनों प्रेमी हैं। वे कॉलेज में पढ़ाते हैं और मैं नौकरी करने लगी हूँ। हमने यह निश्चय कर लिया हुआ है कि हम अविवाहित रहेंगे और यदि विवाह करेंगे तो आपस में।

"एक बार मैंने उनसे कहा था कि वे विवाह करने में स्वतन्त्र हैं। प्रेम और विवाह दो भिन्न बातें हैं। वे इस बात को मानते हुए भी अभी तक विवाह के लिए राज़ी नहीं हुए। जब भी मुझे उनसे अथवा उनको मुझसे मिलने की आवश्यकता होती है तो हम एक दूसरे का चिन्तन करते हैं और हमारी भेंट हो जाती है।"

नसीम अनिमा की आत्म-कथा चुपचाप सुन रही थी। उसे वह एक साधारण प्रेम-कथा ही प्रतीत हुई थी। उसे दोनों का अविवाहित जीवन व्यतीत करना कोई विचित्र बात प्रतीत नहीं हुई थी। अभी उनकी आयु बहुत छोटी थी और कोई नहीं कह सकता था कि दोनो अपने वचन निभा सकेंगे अवथा नहीं। परन्तु जब उसने यह टैलिपैथी की बात दुहराई तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह उसे मूर्ख बना रही है अथवा वह स्वय एक महान भ्रम मे विचर रही है। इसलिए उसने बात वहीं रोककर कहा, "अनिमा बहिन! या तो तुम खुद भूल रही हो या तुम मुझको बेवकूफ़ बना रही हो। हम इन बातो मे यकीन नहीं रखते। कुछ बातें होती हैं जो अन्दाज़ से बताई जा सकती हैं। तुम बहुत समझदार मालूम होती हो। इससे शायद तुम्हारे अन्दाज़ ज़्यादा ठीक होते हैं। मगर तुम्हारे सन्देश इस प्रकार एक दूसरे तक पहुँच जाते हैं, मैं मान नहीं सकती।"

अनिमा हँस पड़ी। उसने कहा, "मैंने आपको यह बात किसी उद्देश्य से नहीं बताई। आप इस सबको एक उपन्यास का पृष्ठ भी समझ सकती हैं।"

"मगर मेरे इस बात-चीत का मतलब तो आपके विषय में सच्चाई जानने का है। आपसे असलीयत जानने के लिए ही तो यह कह रही हूँ।"

'मैं इसका प्रमाण दे सकती हूँ, परन्तु मैं सोचती हूँ कि इससे लाभ क्या होगा। आप तो इस प्रकार की शक्ति न हासिल करना चाहेंगी और शायद न हासिल कर सकेंगी।"

"अगर टेलिपैथी जैसी कोई वस्तु वास्तव में है तो उसको प्राप्तकरने को कौन न पसन्द करेगा। पहिले इसके होने का यकीन तो होना चाहिए न?"

"यही तो कठिन प्रतीत होता है। आप बात को प्रत्यक्ष देखकर भी नहीं मानिएगा। ये दिल के मसले ऐसे ही हैं। देखिए! मैं आपको एक प्रमाण अभी दे सकती हूँ। जब मैं आपको अपनी आत्म-कथा वर्णन कर रही थी तो मेरी इच्छा गिरीशजी से मिलने को हो रही थी। बातों से व्यक्तियों का स्मरण स्वभाविक ही है। मेरा विचार है कि वे मुझसे मिलने को चल पड़े हैं। इस समय पिता जी से मिलकर मेरे यहाँ होने का समाचार पा चुके हैं। मेरी इच्छा है कि वे मेरी वहाँ पर ही प्रतीक्षा करे परन्तु यदि आप चाहें तो मै उनको यहाँ बुला सकती हूँ।"

"हाँ ज़रूर बुलाइए। इससे दो बाते होगी। एक तो आपकी इस शक्ति का हमे विश्वास हो जावेगा और दूसरे आपके गिरीश साहब के दर्शन हो जावेगे।"

"इसके लिए एक शर्त है। आपके सामने यदि आवे तो मेरे उनसे प्रेम होने की किसी प्रकार की भी बात नहीं होनी चाहिए।"

"मंजूर है। पर क्या जाने आप पहिले घर से ही यह स्कीम बना कर चले हों?"

अनिमा हँस पड़ी। इसके पश्चात् उसने कहा, "यदि आप चाहें तो मै उनको यहाँ आने का कष्ट न दूँ?"

"अब आ ही जाने दीजिए। देखे वे क्या कहते हैं।"

"तो एक बात कर दीजिए। बाहर दरवाजे पर कहला भेजिए कि एक गिरीश बाबू आ रहे हैं। वे आवे तो उन्हें भीतर ले आवे।"

यह इत्तला फाटक पर कर दी गई। नसीम ने चपरासी को भेज चेतनानन्द को भी बुला भेजा। चेतनानन्द ने आकर पूछा तो नसीम

ने बताया, "एक गिरीश बाबू आ रहे हैं। मैंने समझा कि आपसे भी मुलाकात करा दें तो ठीक होगा।"

"वे कौन हैं ?"

"मुझसे जिनका प्रेम है।" अनिमा ने कहा, "परन्तु नसीम बहिन से यह बात निश्चय हो चुकी है कि उनसे इस विषय में कोई बात नहीं होगी।"

"अगर उन्होंने आना था तो मुझे पहिले ही कह दिया होता। मैं उन्हें भी चाय पर निमंत्रण दे देता।"

"आप ज़रा बैठ जाइए। सब बात पीछे बताऊँगी।" नसीम ने मुस्कराते हुए कहा।

चेतनानन्द विस्मय में डूबा हुआ बैठ गया। तीनों अपने-अपने विचारों में लीन थे। इसमें कोई बातचीत नहीं हो रही थी। इस चुप्पी को नसीम ने तोड़ा। उसने कहा, "अनिमा बहिन ! अब तो खाने का समय हो गया है। क्या मैं उनके लिए भी खाना तैयार करने को कह दूँ।"

"मैं यदि उनको खाने के विषय में कहूँ तो वे मान जाएँगे, परन्तु इस विषय में मेरी प्रेरणा कुछ शोभा नहीं देती।"

"कहूँगी तो मैं ही। परन्तु मुझे डर है कि पहिले ही हमने आपका इतना समय ले लिया है।"

"मेरा विचार है कि यह बात किसी और समय के लिए स्थगित रखिए।"

चेतनानन्द इस सब का अभिप्राय अभी भी नहीं समझा था। इस कारण उसने फिर पूछा, "कुछ मुझे भी बतलाईएगा ?"

अनिमा हँस पड़ी। इस पर चेतनानन्द ने उससे विनीत निवेदन कर दिया, "मिस बैनर्जी ! आप ही कुछ बता दीजिए।"

"सब मज़ा जाता रहेगा।" अनिमा ने व्यंग के भाव में कहा।

"और इस समय जो बेमज़ा हो रहा है।"

इस समय दरबान ने बाहर से आवाज दी, "मिस्टर चक्रवर्ती आए हैं।"

"लो आ गए।" अनिमा ने उठते हुए कहा।

मिस्टर गिरीश चक्रवर्ती कमरे में दाखिल हुए तो अनिमा ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया और चेतनानन्द तथा नसीम से परिचय कराया। पश्चात् बैठाते हुए कहा, "मुझे मालूम हुआ है कि आप मुझसे मिलने आ रहे हैं। इससे मैंने यही उचित समझा कि आपसे इनका परिचय करा दूँ।"

"आपके विषय में सुन तो पहिले ही चुका हूँ। आज दर्शन हो गए तो बहुत खुशी हुई।"

"आपने बहुत कृपा की जो यहाँ आने की तकलीफ की। मगर पबलिसिटी आफिसर साहब का कहना है कि यदि आपके आने का समाचार पहले मालूम होता तो वे आपको चाय के समय पर ही बुलाते।"

"मेरे यहाँ आने का तो मुझे भी मालूम नहीं था। मैं कॉलेज होस्टल से निकला तो मेरा विचार अनिमा देवी से भेंट करने का हो गया। इनके घर पहुँचा तो पता लगा कि यहाँ हैं। मैंने मन में सोचा कि यहाँ से यह निकलनेवाली ही होगी तो इनको लेकर कहीं खाना खाएँगे और फिर इनको घर पहुँचाकर वापस चला जाऊँगा। यहाँ फाटक पर पहुँचा और इनके विषय में पूछा तो दरबान ने कहा कि मेरी प्रतीक्षा हो रही है। मै समझ गया कि ये यहाँ भी अपनी टेलिपैथी का खेल कर रही हैं।"

"तो आपके यहाँ आने का पहिले निश्चय नहीं था?"

अनिमा देवी और गिरीश दोनों हँस पड़े। गिरीश ने कहा, "इनके घर से निकलने के पूर्व तो मुझे भी पता नहीं था कि मैं यहाँ आऊँगा। मेरा यहाँ आने का विचार तो पीछे ही हुआ था।"

चेतनानन्द और नसीम हैरानी में उनका मुख देखते रह गए। गिरीश ने कहा, "आपको विश्वास नहीं आवेगा। आपके मन का विकास तो अभी इस बात के समझने के योग्य भी नहीं हुआ। देखिए, मै आपको आपकी अयोग्यता के विषय में ही बताता हूँ। एक छोटे बच्चे से यदि यह कहें कि हमारे पास एक यंत्र है जो क्रिकेट के बाल को इतना बड़ा कर दिखा सकता है कि वह पृथ्वी जितना बड़ा दिखाई देने लगता है तो वह मानेगा? आज से पचास वर्ष पूर्व यदि कोई कहता कि एक ऐसा यत्र है जो लन्दन में नाचने-गानेवाले का नाच-गाना कलकत्ता में सुना सकता है, तो कोई मानता? परन्तु आज ये दोनों बाते होती देखी जाती हैं और समझी जाती हैं। एक वैज्ञानिक न केवल इनका होना मानता है, प्रत्युत ऐसा होने की विधि को भी जानता है। इसी प्रकार आप इस बात को तब तक नहीं मानेंगे जब तक स्वयं न कर सकेंगे। कठिनाई इसमें यह है कि इस काम के लिए अपने मन की ट्रेनिंग की आवश्यकता है। यदि तो मन भी एक ग्रामोफोन अथवा रेडियो कि भाँति बाजार में मोल मिल सकता तो खरीदकर इस बात की परीक्षा कर सकते। इसके लिए तो अपने मन को ही सिद्धाना पड़ता है, जो आपके वश की बात नहीं है।"

"मन को ट्रेन करने के लिए क्या करने की आवश्यकता है?"

"योग और ध्यान की।"

"तो आपके कहने का यह अर्थ है कि आप दोनों ने योगाभ्यास सीखा है।"

"योगाभ्यास का अर्थ है, अपने मन की पूर्ण-शक्ति को केन्द्रित कर किसी एक पर लगा देना। अनिमा ने अपने मन को मेरे पर इतना केन्द्रित किया है कि ये न केवल मेरी प्रत्येक बात को जान जाती है, प्रत्युत मेरे कामों का संचालन भी करती है।"

"यह आपने कैसे किया है, अनिमा देवी?"

"मैं इसका नाम प्रेम कहती हूँ। योग का शाब्दिक अर्थ भी मेल के ही हैं। यदि किसी से प्रेम अति प्रबल हो जावे तो उससे योग हो जाता है। इस प्रकार उसमे और अपने में कोई भेद-भाव नहीं रह जाता। इसके एक अंश को टेलिपैथी कहते हैं।"

गिरीश ने इस समय उठकर कहा, "अब हमें आज्ञा दीजिए। फिर कभी हाजिर हो जाऊँगा।"

अनिमा भी उठ पड़ी। नसीम और चेतनानन्द ने उठकर दोनो को विदा देते हुए कहा, "हम आपके बहुत मशकूर हैं। यह शाम हमारे दिमाग़ से मिट नहीं सकेगी। इन दो घंटों की गुफ्तगूह ने हमारे दिमाग़ में हलचल मचा दी है।"

[१०]

प्रीमियर साहब के बँगले से निकल गिरीश ने कहा, "अनिमा, यह समय इस प्रकार के खेल खेलने का नहीं। पानी नाक तक आ गया है। अब तो कोई शीघ्र उपाय होना चाहिये।"

"मै पिछले तीन दिन से इतनी निराशाजनक बाते सुन रही हूँ कि मन बहलाने को यहाँ आ बैठी हूँ। जिससे भी कहती हूँ कि कलकत्ता में हिन्दू-मुसलिम झगड़े की सम्भावना है, वही मुझको मूर्ख और गद्दार कह घर से बाहर निकाल देता है।"

"पर हमने तो काम करने का व्रत ले रखा है। परिणाम देखने का नहीं। परिणाम तो हम भगवान के हाथ मे दे चुके हैं। लो सुनो, मैंने कल अपने घर में नगर के कुछ विशेष व्यक्तियो को निमत्रण दिया है। कोई बीस-पचीस लोग आवेगे। भोजन होगा और पीछे हम अपनी बात कहेंगे। तुम भी आना।"

उन्होने रायल रेस्टोराँ में रात का खाना खाया और अगले दिन सायंकाल भोजन के समय गिरीश के घर मिलने की बात कर पृथक्-पृथक् हो गए।

गिरीश एम० ए० करने के बाद नेशनल कॉलेज ऑफ कॉमर्स में प्रोफेसर का काम करने लगा था। उसका पिता दिल्ली की केन्द्रीय सरकार की ओर से लंदन में 'इंडिया हौस' के म्यूज़ियम का अध्यक्ष था। पहिले तो उसकी माँ भी उसके साथ वहाँ गई हुई थी। उन दिनों गिरीश अपनी मौसी के घर रहता था। उसकी माँ स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण वहाँ से कलकत्ता लौट आई थी। इस समय गिरीश अपनी माँ के पास रहने लगा था। इन्हीं दिनो में अनिमा का उनके घर जाना मना हुआ था। जब गिरीश ने अनिमा से विवाह का प्रस्ताव किया था, तब जर्मनी से युद्ध हो रहा था और उसकी माँ एक क्रान्तिकारी की लड़की से अपने लड़के का विवाह कराना नहीं चाहती थी, परन्तु गिरीश ने हठ किया कि वह विवाह उससे ही करेगा। इस पर उसकी माँ ने विष खाकर मर जाने की धमकी दी थी। इस पर गिरीश ने विवाह न करने का वचन दिया परन्तु अपने रहने का निवास-स्थान पृथक् कर लिया। वह अपने कॉलेज के होस्टल के पिछवारे में एक मकान में रहने लगा था।

इन दिनो उसके पिता छुट्टी लेकर हिन्दुस्तान आए हुए थे, परन्तु उनके चक्कर दिल्ली और कलकत्ता में लगते रहते थे। गिरीश उनसे मिलता रहता था और प्राय: उनके पास जाकर भी रहता था। इस पर भी उसने अपना होस्टलवाला मकान छोड़ा नहीं था। उसने यह पार्टी अपने होस्टल के पिछवारे वाले मकान में दी थी। इस पार्टी में कांग्रेस के विख्यात नेता तथा कार्यकर्त्ता, हिन्दू सभा के कार्यकर्त्ता और पंजाबियों के तथा मारवाड़ी समाज के मुख्य व्यक्ति बुलाए गए थे।

अनिमा अपने आफिस से सीधी गिरीश के घर पहुँच गई। लोगों के आने में अभी समय था। गिरीश ने सब तैयारी करवा रखी थी और वह अब उत्सुकता से मेहमानों के पहुँचने की प्रतीक्षा कर रहा था। अनिमा को आया देख उसका मुख खिल उठा। उसने उसका स्वागत कर कहा। "अच्छा हुआ कि तुम पहिले ही आ गई हो। जब तक

दूसरे आएँगे हम अपना प्रोग्राम बना लेते हैं। मैने अपने निमंत्रण में लिखा है कि समय की एक अत्यावश्यक बात पर विचार-विनिमय करने के लिए यह समारोह किया जा रहा है। मैं समझता था कि मेरे कहने पर तो कोई नहीं आवेगा, इसलिए मैंने अपने निमंत्रण में सेठ केका जी भाई का नाम लिख दिया है। मैंने लिखा है कि सेठ जी हमारे विचार-विनिमय के समय सभापति होगे। कांग्रेसी लोग, हिन्दू-सभाईट और अन्य सार्वजनिक कार्य-कर्त्ता, सबके सब सेठ साहब के दान-दक्षिणा का स्वाद ले चुके हैं। इससे मैं आशा करता हूँ कि सब आमंत्रित-गण अवश्य पधारेंगे।'

"परन्तु, क्या आपने सेठ साहब की इस विषय में स्वीकृति ले ली है?" अनिमा का प्रश्न था।

"हाँ, परन्तु उनको यह मालूम नहीं कि वह आवश्यक विषय हिन्दू-मुसलिम झगड़े की बात है। उनका ख़्याल है कि हम बगाल सरकार के पास हिन्दू लोगों के अधिकारों की रक्षा के लिए डेपुटेशन लेकर जा रहे हैं। इसलिए मैं चाहता हूँ कि कोई आदमी बातो का बहाव डेपुटेशन के स्थान झगड़े में रक्षा की ओर ले जावे।"

"यह तो आपने ठीक नहीं किया।"

"मै यह जानता हूँ। इस पर भी नगर के मुख्य-मुख्य लोगों से मिलकर अपने विचार प्रकट करने के लोभ को मै रोक नहीं सका।"

"अच्छी बात, मै इसका प्रबन्ध कर दूँगी। आप अपने तरीके पर बात आरम्भ करिएगा।"

इस समय इक्के-दुक्के लोग आने आरम्भ हो गए। अनिमा एक ओर हटकर बैठ गई। गिरीश आनेवालों का स्वागत करने लगा। समय होने से पूर्व ही प्रायः सब लोग आ गए थे। इस समय भोजन का प्रबन्ध हो गया। एक दो के अतिरिक्त शेष सबने भोजन किया। भोजन के पश्चात् सेठ केकाजी भाई ने सबको बैठाया और अपनी

बात आरम्भ कर दी। उसने कहा, "हमे प्रोफेसर गिरीश जी का धन्यवाद करना चाहिए कि उन्होने इतना स्वादिष्ट भोजन खिलाया है। इससे भी अधिक धन्यवाद के पात्र ये इसलिए हैं कि इन्होंने हमें आज यहाँ मिलकर अपने नगर की अवस्था पर विचार करने का अवसर उत्पन्न कर दिया है। यह तो आप जानते ही हैं कि कलकत्ता का व्यापार हम हिन्दुओ के हाथ में है, परन्तु अब सरकारी कन्ट्रोलो से मुसलमानो के हाथ में दिया जा रहा है। यदि तो उनके कार्य-कुशल होने से व्यापार उनके हाथ में जाता तब तो हमें इसमें रोष न होता, परन्तु हो यह रहा है कि झूठ-मूठ की कम्पनियाँ बनवाकर काम उनको दे दिया जाता है और वे कम्पनियाँ या तो पुनः हिन्दुओं से काम करवाती हैं या अन्ट-सन्ट काम कर सरकार के हवाले कर देती हैं। इस प्रकार प्रान्त को भारी हानि हो रही है। यह हानि भी तो हम, कर देनेवाले लोगों, को ही देनी पड़ रही है। इससे हम दुहरी लूट के शिकार हो रहे हैं।

"इतनी भूमिका के पश्चात् मै अब आप लोगों को इस विषय में अपने-अपने विचार प्रकट करने को कहता हूँ।" इतना कह सेठ केकाजी भाई अपने आसन पर बैठ गए।

सेठजी के वक्तव्य के पश्चात् बँगाली समाज के एक प्रमुख व्यक्ति ने अपना वक्तव्य दिया। उसने भी यह कहा कि कलकत्ता मे बंगाल से बाहर के लोगो को बुला-बुलाकर बसाया जा रहा है। हमे इस विषय में भी अपना मत प्रकट करना चाहिए।"

इसके पश्चात् कलकत्ता काग्रेस कमेटी का मंत्री, एक दुबला-पतला आदमी, मोटी खद्दर की पोशाक पहिने, खड़ा हुआ और कहने लगा, "मुझको भारी शोक है कि नगर के ऐसे प्रसिद्ध व्यक्ति भी इस प्रकार की साम्प्रदायिक बाते करने लगे हैं। हिन्दू और मुसलमान भाई-भाई हैं। एक के पास दो पैसे अधिक चले गए या कम चले गए तो क्या? इन छोटी-छोटी बातों से देश के वातावरण को बिगाड़ने से क्या लाभ

है ? यदि आज सुरावर्दी प्रीमियर हैं या कोई और, तो इससे क्या होता है ? यह तो राजनीति है। इससे मेरी प्रार्थना यह है कि यह समय इस किस्म की बातो का नहीं। मै प्रोफेसर साहब से यह निवेदन करूँगा कि उनका यह सब आयोजन अत्यन्त हानिकारक है। इसमे देश में कटुता बढ़ने की सभावना है।"

इसके उपरान्त अनिमा स्वय खड़ी हो गई। उसने कहना आरम्भ कर दिया। "देश मे कटुता बढाना घोर पाप है, परन्तु कौन बढाता है और उस कटुता बढ़ानेवाले को मना न करना सर्वथा उचित नहीं है। मै छोटी-मोटी बातो के विषय में कुछ कहना नहीं चाहती। यह नौकरियाँ और व्यापार-सम्बन्धी रियायतें, बहुत आवश्यक होते हुए भी सिद्धान्तात्मक बातो के सामने कुछ भी अस्तित्व नहीं रखतीं। मैं यह कहना चाहती हूँ कि वर्तमान सरकार, यहाँ पर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर रही है जिससे कलकत्ते की गलियाँ खून से रंगी जानेवाली हैं। इस नीति का विरोध न करना और इस परिस्थिति के बनने को न रोकना देश को हानि पहुँचाना है।

"मैं आपको उस परिस्थिति को उत्पन्न करनेवाली बातें पहिले बताना चाहती हूँ। अभी-अभी बंगाल के प्रीमियर साहब ने पत्र-प्रतिनिधियों के सम्मुख यह वक्तव्य दिया है कि यदि अँग्रेजी सरकार ने काग्रेसियों को केन्द्रीय सरकार की प्रबन्धक कौसिल मे आने दिया तो वह बगाल को हिन्दुस्तान से पृथक् देश घोषित कर देगा। यह एक उसूल की बात है, एक देश के एक प्रान्त का प्रीमियर अपने प्रान्त को देश से पृथक् घोषित करने की बात ही कैसे कर सकता है ? यह बात है जो प्रान्त और देश में कटुता उत्पन्न करनेवाली है। इसका किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। प्रीमियर साहब ने अभी तक इस वक्तव्य पर पश्चात्ताप प्रकट नहीं किया। मेरे से पूर्व बोलनेवाले ने यह कहा है कि हमे कोई ऐसी बात नहीं करनी चाहिए जिससे हिन्दू मुसलमानो में व्यर्थ का झगड़ा बढ़े। मैं उनसे इस बात मे पूर्णतः

सहमत हूँ और इसीलिए कहती हूँ कि इस प्रीमियर को एक क्षण के लिए भी इस अधिकार-पूर्ण स्थान पर नहीं रहने देना चाहिए। इसको इस पद से न निकालने का यत्न करना देश मे अशान्ति फैलाने में सहायता देनी है।

"इससे भी अधिक एक घोर आपत्तिजनक बात मैं आपके सम्मुख रखना चाहती हूँ। मुसलिम लीग ने हिन्दुस्तान मे डायरैक्ट ऐकशन चलाने की धमकी दे रखी है। मुसलिम लीग के प्रधान मिस्टर जिन्ना अभी दिल्ली में थे। वहाँ एक पत्र-प्रतिनिधि ने उनसे पूछा था कि उनका डायरैक्ट ऐकशन अहिंसात्मक होगा क्या? इसका उत्तर उसने केवल यह दिया है कि कांग्रेस की भाँति मुसलिम लीग ने अहिंसात्मक रहने की झूठी कसम नहीं खा रखी। और कलकत्ता मे यह अफवाह फैल रही है कि मुसलिम लीग का डायरैक्ट ऐकशन कलकत्ता में शुरू होनेवाला है।

"ऐसी परिस्थिति मे हमारा कुछ कर्तव्य है या नहीं? मै यदि यह कहूँ कि हम लोगो को न तो मुसलमानों पर भरोसा करना चाहिए, न ही सरकार पर भरोसा रखना चाहिए, तो क्या मै कोई ग़लत बात कहती हूँ? मुसलिम लीग का डायरैक्ट ऐकशन अहिंसात्मक नहीं होगा। सरकार इसमें हिन्दुओ की सहायता नहीं करेगी। तो क्या इस अवसर पर हिन्दुओं की स्त्री-जाति के एक प्रतिनिधि के रूप में आपसे अपनी बहिनो की रक्षा की माँग नहीं कर सकती? क्या आप पसन्द करेंगे कि आपकी बहू-बेटियाँ आपकी आँखो के सामने उठा ली जावें और पतित की जावे .... "

"चुप रहो। यह बकवास बन्द करो। तुम कौन हो जो इस प्रकार की झगड़े की बातें करती हो?" उसी खद्दरधारी ने जो अनिमा से पहिले बोल चुका था, उठकर क्रोध में कहा।

अनिमा ने गम्भीर होकर कहा, "आप बैठ जाइए। मुझे अपनी बात कह लेने दीजिए।"

"मैं नही बोलने दूँगा। यह देश-द्रोह की बात मै यहाँ नहीं चलने दूँगा। मैं........"

अनिमा ने उसकी बात टोककर कहा, "आप बैठ जाइए। मेरे बाद आप जो इच्छा हो कह सकेंगे। मै कह रही थी कि डायरैक्ट ऐकशन के कलकत्त मे शुरू होने की सभावना है........"

वही खद्दरधारी फिर खड़ा होकर कहने लगा, "यह सब झूठ है। इसमे कोई सच्चाई नही, मैं प्रधान जी से कहता हूँ कि इस लड़की को बोलने से बन्द कर दिया जावे।"

अनिमा बैठी नहीं थी। जब वह खद्दरधारी कह चुका तो अनिमा ने फिर कहना शुरू कर दिया, "डायरैक्ट ऐकशन कलकत्ता मे होगा, मुझको पक्का पता है। मेरे पास इस बात के प्रमाण हैं। यह बात तो समाचार-पत्रो मे भी प्रकाशित हो चुकी है कि छुरियों और भालो की पेटियाँ पंजाब से आई और कलकत्ता स्टेशन पर पकड़ी गई हैं। कुछ दिन से इस नगर मे पठानो और मुसलमान पंजाबियो की भीड़-भाड़ दिखाई देने लगी है.. ......

इस वाद-विवाद को बढ़ते देख प्रधान केकाजी भाई अपने स्थान से उठकर अनिमा से बोले, "आप अपना वक्तव्य शीघ्र समाप्त कर दीजिए। यह बताइए कि इस सबका आप उपाय क्या बताती हैं? हमने तो इन विषयों पर सोचने के लिए अपने राजनीतिक नेताओं को नियत कर रखा है। क्या उन पर आपका विश्वास नहीं रहा? उन्होने कौन ऐसी बात की है जिससे वे अविश्वास के पात्र बन गए हैं? इन बातो पर प्रकाश डालिए।"

"मैं यही तो कहना चाहती थी। अपने भाई से मेरा निवेदन है कि मुझको अपनी बात कह लेने दे और पश्चात् उसका खंडन कर सकते हैं। मै यह कह रही थी कि बगाल के प्रीमियर ने बंगाल को हिन्दुस्तान से पृथक् कर देने की धमकी देकर और मिस्टर जिन्ना ने

अपने आन्दोलन को अहिंसात्मक रखने का आश्वासन न देकर एक अति भयानक परिस्थिति उत्पन्न कर दी है। उस परिस्थिति को रोकने की शक्ति सरकार में है। उससे उतरकर कांग्रेस मे है और यदि ये दोनो, असफल रहें तो अपने को बचाने की शक्ति हिन्दू लोगो में है। सरकार पर मेरा विश्वास नहीं है। सरकार पर अविश्वास करना मैने पूज्य गांधी जैसे नेताओं से ही सीखा है। वह ही कहते रहे हैं कि विदेशी सरकार, इमानदार होती हुई भी, हमारी रक्षा नहीं कर सकती। इस समय तो ऐसी समझ आ रही है कि भारत मे अँग्रेजी सरकार यहाँ 'सिविल-वार' करा देने में अपना भला समझती है।

"रही काग्रेसवालो की बात। वह अपने सत्याग्रह और अहिंसात्मक उपायो से हिन्दू-मुसलिम झगड़े में कुछ कर सकेंगे, समझ नहीं आता। यह मेरे भाई का काम है कि वह समझावे कि हिन्दू-मुसलिम फसाद हो जाने पर किस प्रकार उसको रोक सकेंगे। मैं तो समझती हूँ कि काग्रेस झगड़े को रोकने के लिए जो भी यत्न करेगी वह जनता के सहयोग के बिना नहीं कर सकती। चाहे तो उसका उपाय अहिंसात्मक हो चाहे हिंसात्मक, वह सर्वसाधारण के सहयोग के बिना कैसे कर सकेंगे? १९४२ का आन्दोलन तो वह शान्तिमय रख नहीं सके और यदि इस विपत्ति का मुकाबिला करना है तो उस समय भी मुकाबिला अहिंसात्मक नहीं रह सकेगा।

"मुझे तो कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा है कि कांग्रेस इस विषय में कुछ नहीं करेगी। जो कुछ भी करना है वह काग्रेस से बाहर के लोगों को करना है.. ......"

इस समय सेठ साहब ने अनिमा को बैठ जाने को कह दिया, "अब तुम बैठ जाओ। तुम्हारा समय हो चुका है।"

अनिमा बैठ गई। इस पर वही काग्रेसी पुन. कुछ कहना चाहता था, परन्तु सेठ साहब ने उसके स्थान एक और को कहने के लिए खड़ा कर दिया। यह बँगला साहित्य-सभा का प्रधान था। इसने अपना

ष्टिकोण इस प्रकार वर्णन किया, "मैं समझता हूँ कि सारा झगड़ा पाकिस्तान न बनने देने के कारण है। कांग्रेस की यह भारी भूल है कि इसके बनने मे व्यर्थ का अड़ंगा लगा रही है। बंगाल की आत्मा तो बंगाल के एक पृथक् देश बन जाने से प्रसन्न ही होगी। यदि बंगाल के प्रीमियर ने बंगाल को भारत से पृथक् करने के लिए कहा है तो कोई अनुचित बात नही कही। साहित्य एक जाति की माँ है और बँगला साहित्य सर्वांगपूर्ण है। एक बंगाली मुसलमान एक बंगाली हिन्दू के अधिक समीप है। एक बंगाली हिन्दू का भारत के अन्य लोगों से बहुत मामूली सम्बन्ध है।"

इसके पश्चात् एक और मारवाड़ी उठ कहने लगा, "मुझे यह देख अति विस्मय हुआ कि ससार की वास्तविक बात व्यापार, जिससे देश में धन-दौलत की वृद्धि होती है, की ओर से हमारा ध्यान हटा-कर राजनीति के कीचड़ में ले जाकर फँसा दिया गया है। राजा चाहे कोई हो, मतलब की बात व्यापार और दस्तकारी हैं। ये जिस कौम के हाथ में होगी, वही असली राजा होगी। इससे मै कहता हूँ कि हमें राजनीति के पचरे में न पड़कर व्यापार की ओर ध्यान देना चाहिए।"

इस प्रकार सभा में संवाद का विषय बदल गया। व्यापार और बचत के विषयों पर बातचीत होने लगी। विवाह शादियों में कम खर्चा करने से लेकर मिनिस्टरो के वेतन में कमी तक की बातों पर संवाद हुआ।

अन्त में प्रोफेसर गिरीश सबका धन्यवाद करने के लिए खड़ा हुआ। उसने कहा, "यद्यपि आज के समारोह को बुलाते समय मुझे बातचीत के इस स्तर पर चले जाने की संभावना नहीं थी, इस पर भी मैं समझता हूँ कि आज का आयोजन असफल नहीं हुआ। कई बातें हमने सुनी हैं। अपने खर्चे के कम होने के उपायों और साधनों पर

विचार से लेकर बंगाल के एक पृथक् देश बनने के विषय तक विचार हुआ है। मैं तो इस विषय में अपनी ओर से कुछ नहीं कहना चाहता। इस पर भी अनिमा देवी ने जो परिस्थिति हमारे सम्मुख रखी है, वह प्रत्येक विचारशील व्यक्ति के लिए समझने की वस्तु है। उसकी बात को इस कारण त्यज्य नहीं कहा जा सकता कि उससे मुसलमान नाराज़ हो जावेंगे अथवा किसी के सिद्धांत, जिन पर अभी परीक्षा की जा रही है, अमान्य हो जावेंगे। उसने विचार के लिए एक बात रखी है। यदि तो आप उसमे कुछ भी सचाई समझते हैं तो उसके परिणामों से बचने के लिए यत्न करना चाहिए।

"अन्त में मैं सेठजी का और आप सबका धन्यवाद करता हूँ, जो आपने इतना समय देकर हमें लाभ पहुँचाया है और इस सेवक के गृह में भोजन पाकर इसे पवित्र किया है।"

समारोह समाप्त हुआ, परन्तु नगर के नेताओं की इस मनोवृत्ति को देखकर दोनो को निराशा हुई। इस पर भी गिरीश ने यह कहा, "अनिमा! हमको तो कार्य करना है, फल की चिन्ता नहीं करनी।"

[११]

इस दावत के दो दिन पीछे की बात है। चेतनानन्द के पास एक पत्र, जिस पर लाल मोटे अक्षरो में 'कान्फिडैन्शल' लिखा था, पहुँचा। अनिमा ने, प्रथा के अनुसार, वह पत्र बिना खोले चेतनानन्द को दे दिया। चेतनानन्द ने पत्र खोल पढ़ा और फिर उसे अपनी जेब में रख लिया। अनिमा ने समझा कि शायद पत्र उसके अपने विषय में है। उसने यह भी अनुभव किया कि उस पत्र के पढ़ने के पश्चात् चेतनानन्द का मुख गम्भीर हो गया है। दिन-भर वह चेतनानन्द की अवस्था, उसके मुख के चढ़ाव-उतार से जानने का यत्न करती रही। सायं चाय के समय उसने असल बात जानने का यत्न किया। उसने पूछा, "आज आप कुछ चिन्ता में प्रतीत हो रहे हैं। क्या मैं कारण जान सकती हूँ?"

चेतनानन्द इस प्रश्न से और भी घबराया। वह अपने चाय के प्याले में देखता हुआ सोचने लगा। अनिमा ने समझा कि शायद उसकी सर्विस के विषय मे कोई बात हो गई है। इससे उसने अपनी उत्सुकता के लिए क्षमा माँगते हुए कहा, "क्षमा कीजिए। मेरे मन में आपकी चिन्ता के विषय में जानने की उत्सुकता किसी बुरे भाव से नहीं थी। यदि कोई ऐसी बात है जिसको आप बताना नहीं चाहते, तो इसके पूछने के लिए क्षमा चाहती हूँ।"

चेतनानन्द ने अनिमा की आँखो में देखते हुए, कुछ आगे झुक-कर धीरे से कहा, "अनिमा देवी! यदि मैं कोई भेद की बात कहूँ तो उसे किसी से कहोगी तो नहीं?"

"आफिस के विषय में हमने शपथ ली हुई है, और मैंने आज तक उसका उल्लंघन नहीं किया। इसी प्रकार मै वचन देती हूँ कि यदि कोई बात आप के विषय मे भी होगी तो किसी से नहीं कहूँगी।"

"मुझे आज कुछ ऐसा करने को कहा गया है, जिसके करने को मेरी आत्मा नहीं मानती। मेरे लिए दो मार्ग खुले हैं! एक तो इस पद को त्याग दूँ और दूसरा अपनी आत्मा का हनन कर सरकार के कहने के अनुसार कार्य करूँ।"

अनिमा इस परिस्थिति को सुनकर चुप रह गई। वह न तो बात बताने के लिए चेतनानन्द को उत्साहित करना चाहती थी और न ही अपनी बात जानने की उत्सुकता को रोक सकती थी। इन दो प्रकार की इच्छाओं के कारण, उसने चुप रहना ही ठीक समझा। बात चेतनानन्द ने बताई, "देखो अनिमा देवी! मुझे कहा गया है कि अब समय आ गया है कि हिन्दुओं की साज़शो का भंडा फोड़ दिया जावे। इस लिए पंजाब से जो हथियार कलकत्ता के स्टेशन पर पकड़े गए हैं, वह हिन्दुओ से भेजे और हिन्दुओ के लिए आए घोषित किए जावें। मै यह बात भली-भाँति जानता हूँ कि वे हथियार गुजराँवाला, पंजाब की एक मुसलमान फर्म से भेजे गए थे और यहाँ के एक मुसलमान के

पास आए थे। मै सुबह से ही यह सोच रहा हूँ कि ऐसा घोषित करवाऊँ अथवा न ?"

अनिमा इस बात को सुन दुःख और विस्मय मे डूब गई। दोनों ने चाय समाप्त की और उठ पड़े। उठते समय चेतनानन्द ने पूछा, "अनिमा देवी! आपने बताया नहीं कि मुझको क्या करना चाहिए।"

"मेरे बताने से क्या होगा? मुझको यह आशा ही नहीं करनी चाहिए कि मेरी सम्मति मानी जावेगी।"

"क्यो नहीं मानी जावेगी। जब मै पूछता हूँ तो कम से कम उस पर विचार तो करूँगा ही।"

"शायद वह बात विचार करने योग्य भी नहीं होगी। मेरी आयु, मेरा अनुभव, मेरे विचार और मेरे वातावरण ऐसे हैं जिनके कारण मेरी बात को न तो आप कोई महत्व दे सकते हैं और न ही वह आपकी रुचि के अनुकूल होगी।"

"यह आपने कैसे जान लिया है?"

"आपसे नित्य के सम्पर्क और वार्तालाप से।"

"आप मेरे विषय में बहुत ख़राब राय रखती हैं।"

"मै आपको अपने से बहुत ऊँची पदवी पर समझती हूँ।"

"क्या ऊँची पदवी पर होने से ठीक विचार रखनेवाला सिद्ध हो जाता है?"

"नीची और ऊँची पदवी पर होने से विचार-भेद होना प्रायः होता है।"

चेतनानन्द का अनुभव था कि युक्ति में अनिमा से जीतना प्राय असंभव होता है। इससे उसने युक्ति करना बन्द कर अपने मन की: भावना बता दी। "इस बहस को छोड़िए, अनिमा देवी! मैं आपसे इस विषय में राय चाहता हूँ।"

"आपने दो में से एक बात करने को पूछा है। आप समझते हैं कि या तो आपको नौकरी छोड़ देनी चाहिए या आपको झूठ बोलना

पड़ेगा। मैं समझती हूँ कि दोनों बातें ग़लत हैं। आपको अपने स्थान पर डटे रहना चाहिए और झूठी रिपोर्टें भी नहीं भेजनी चाहिए। जब आपसे कोई पूछे तो कह दीजिए कि मेरे पास जैसे समाचार आते हैं, मैं तो वही लिख देता हूँ। परिणाम यह होगा कि आपको या तो डिस-मिस कर दिया जावेगा, या आपको यहाँ से बदलकर किसी और स्थान पर रख दिया जावेगा।"

"पद-त्याग करने से डिसमिस होना ठीक रहेगा क्या।"

"निश्चय। पद त्याग में विवशता की झलक प्रतीत होती है और डिसमिस होने में अपने पर अन्याय किए जाने की झलक प्रतीत होती है। सत्य को प्रकाश करते हुए डिसमिस होने मे बहादुरी और आन रखने की भावना का पता चलता है।"

उस दिन तो बात वहीं समाप्त हो गई, परन्तु उसके दो दिन पश्चात् अनिमा को नौकरी से जवाब मिल गया। आज्ञा चेतनानन्द के द्वारा ही मिली। चेतनानन्द इस आज्ञा को पढ़ चकित रह गया। उसने वह चिट्ठी ही, जिस पर आज्ञा लिखी आई थी, अनिमा को दिखा दी। अनिमा ने चिट्ठी पढ़ी। लिखा था, "अनिमा देवी बैनर्जी को एक मास के नोटिस के स्थान, उस काल का वेतन देकर तुरन्त छुट्टी कर दी जावे और उसके स्थान मिस असग़री रिज़वी, बी० ए० को इस स्थान पर नियुक्त कर दिया जावे।"

"चलो छुट्टी हुई।" अनिमा ने मुस्कराते हुए कहा।

"यह क्यो हुआ है, मैं नहीं जानता?"

"मैं जानती हूँ। मगर उसके बताने की आवश्यकता नहीं। आप कृपया मेरे वेतन के लिए आज्ञा कर दें।"

'मुझे बहुत अफ़सोस है, अनिमा देवी। अब आपको गुज़र करने में दिक्कत होगी।"

"देखिए, कोई न कोई साधन मिल ही जावेगा।"

चेतनानन्द ने 'पे-बिल' बना, वेतन दिलवा दिया और सायंकाल चाय के समय उसे चाय का निमंत्रण देते हुए कहा, "अनिमा देवी ! आज मैं चाय आफिस के बाहर पीना चाहता हूँ और मैं निवेदन करता हूँ कि आप मेरे साथ चाय पीने की कृपा करेंगी।"

"मुझको कोई आपत्ति नहीं। आप अपने विषय में विचार कर लें। आज मै सरकार की दृष्टि में निन्दनीय हो गई हूँ। मुझ से सम्पर्क रखनेवाले भी निन्दनीय हो सकते हैं। मेरे लिए तो अब आफिस में उस काल के लिए भी, जिसके लिए मुझको वेतन मिल चुका है, ठहरना उचित नहीं माना गया।"

"मुझको इसकी चिन्ता नहीं। मैंने तो आपकी राय पर कार्य करना आरम्भ कर दिया है। मै जो ठीक समझता हूँ, करता जाऊँगा और सरकार को यदि मेरा रखना मजूर नहीं, तो मुझको निकाल देगी।"

[१२]

अनिमा चेतनानन्द के साथ चाय पीने चल पड़ी। मार्ग में ही चेतनानन्द ने अपने मन की बात आरम्भ कर दी। "अब आपसे पुनः मिलने का अवसर मिला करेगा या नहीं ?"

"मै विचार करती हूँ कि मेरा आपसे मिलना आपके लिए ठीक नहीं रहेगा। मैं आपको एक रहस्य की बात बताती हूँ। कुछ दिन हुए गिरीश जी ने नगर के मुख्य-मुख्य लोगों को एक भोज दिया था। भोज के पश्चात् नगर की वर्तमान परिस्थिति पर विचार-विनिमय हुआ तो मैंने भी उस समय अपने विचार प्रकट किए थे। वे विचार किसी ने कलकत्ता के 'इन्टेलिजेन्स' विभाग के पास पहुँचा दिए प्रतीत होते हैं और मेरा डिसमिस उसका ही परिणाम हो सकता है। शायद अब शीघ्र ही मैं गिरफ्तार कर ली जाऊँगी। आपका मेरे साथ दिखाई देना आपके लिए शुभ नहीं हो सकता।"

"इस पर भी मेरी इच्छा आपसे मिलते रहने की होती है। आओ, हम एक निश्चय कर लें। प्रति दिन सायं पाँच बजे मैं आपको, न्यू रायल काफे में प्रतीक्षा किया करूँगा।"

"आपका व्यवहार इस काल में मेरे साथ बहुत सहानुभूतिपूर्ण रहा है और मैं आपका कहना टाल नहीं सकती, परन्तु आपको इसमें क्या लाभ होगा, मैं समझ नहीं सकी। इसका परिणाम अच्छा प्रतीत नहीं होता। साथ ही यह भी बात है कि मैं अब बेकार हूँ। मुझको काम ढूँढना है और इस भाग-दौड़ में समय मिलेगा, कह नहीं सकती। यदि कहीं मेरे पीछे पुलीस लग गई तो आपके विरुद्ध भी एक 'फाईल' बन जावेगी।"

"मुझे अब इस बात की चिन्ता नहीं रही। आपने कहा था न, कि नौकरी छोड़ने से डिसमिस हो जाना ज्यादा अच्छा है और अपने आत्मा का हनन करना ठीक नहीं! इसी प्रकार मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि जब मेरी अंतरात्मा आपसे मिलकर आपसे बातचीत करने को चाहती है तो मुझे पुलिस से डरने की आवश्यकता नहीं।"

अनिमा, चेतनानन्द के इस कथन से जहाँ विस्मित हुई वहाँ चिन्तित भी। वह सोचती थी कि उससे मिलना और उससे बातचीत करना कैसे इतना आनन्दमय हो गया कि इसके लिए दो सहस्र रुपये मासिक वेतन की नौकरी भी तुच्छ हो गई। उसने चेतनानन्द की स्त्री नसीम को देखा था और उसे अपने से कहीं अधिक सुन्दर पाया था। फिर वह बातें भी बहुत मीठी करती थी। इससे चेतनानन्द को अपने प्रेम मे फँसे समझ लेना सुगम नहीं था। वह उसके, अपने साथ इन अनुराग के उठने के रहस्य को जानने के लिए, स्वयं उत्सुक हो उठी। अतएव उसने मुस्कराकर कहा "मैं तो आपको यही सम्मति देती हूँ कि आप, व्यर्थ सी बात के लिए अपनी, बहन नसीम की और अपनी होनेवाली संतान की भलाई की हत्या न कर दे। मै एक क्रान्तिकारी

की लड़की और हिन्दुत्व में विश्वास रखनेवाली हूँ। आप एक सरकारी अफसर, एक मुसलमान स्त्री के पति और महात्मा गांधी के भक्त हैं। भला आपका और मेरा क्या सम्बन्ध हो सकता है। इस पर भी यदि आप कभी चाहेंगे तो मुझे आपसे मिलने में आपत्ति नहीं होगी।"

इस समय वे 'काफे' में जा पहुँचे थे। वहाँ एक कोने में बैठ चाय का आर्डर कर, चेतनानन्द ने अनिमा से कहा, "मैं स्वयं इस बात का कारण नहीं समझ सका। मैं आपकी बातें सुनने के लिए सदैव उत्सुक रहता हूँ। कभी रात के समय नींद खुल जाती है तो आपकी बातो पर विचार करने लगता हूँ। इससे मन में एक विशेष प्रकार की उत्सुकता और कौतूहल उत्पन्न होने लगता है मेरे मन में आपसे मिल-कर मन में उठ रहे भिन्न-भिन्न प्रश्नों को पूछने की इच्छा जाग पड़ती। है। यह क्यों, मैं नहीं कह सकता। मेरी स्त्री ने एक दिन कहा था कि मैं आपसे प्रेम करने लगा हूँ। इसी कारण वे आपसे मिलीं। मिलने के पश्चात् उन्हें विश्वास हो गया है कि उसके सम्मुख मैं आपसे प्रेम नहीं कर सकता। वह आपसे बहुत सुन्दर है।

अनिमा मुस्कराते हुए गम्भीरतापूर्वक चेतनानन्द की बातें सुन रही थी। चेतनानन्द ने भी गम्भीरतापूर्वक अपना कहना जारी रखा। उसने कहा, "मैं स्वयं भी इस बात का अनुभव करता हूँ कि मेरा आपसे प्रेम नहीं है। प्रेम उन अर्थों में जिनमें लोग इसे मानते हैं। मैं जब नसीम से अपने विवाह के पूर्व मिला करता था तो अपने मन की उतावली को अनुभव किया करता था। मुझे भली-भाँति याद है कि किस प्रकार की बेताबी वह हुआ करती थी। अब आपके चिन्तन से मेरे मन में बेताबी नहीं होती। न ही मन व्याकुल होता है। आपके विषय में विचार करने से एक अति शान्त, सुखप्रद तथा मधुर संतोष होता है।"

"बहुत विचित्र है।"

"हाँ, मैं ऐसा ही अनुभव करता हूँ। कारण न जानते हुए भी कार्य करने पर विवश रहता हूँ।"

"अच्छी बात है। हम इस कारण को ढूँढ़ने का यत्न करेंगे। यह तो आप जानते हैं कि गिरीश जी से मेरा क्या सम्बन्ध है। शेष एक ही बात रह गई है। मेरा कोई भाई नहीं। शायद भगवान ने उस रिक्त स्थान को भरने के लिए आपको प्रेरणा दी है। इस समस्या का सुझाव तो भविष्य के गर्भ में ही है। मुझे तो यह भय लग रहा है कि हमारा मेल-जोल अधिक काल तक नहीं चल सकेगा। मुझे शीघ्र ही भूम्यान्तर्गत हो जाना पड़ेगा।"

"क्यो ? मैं तो इसमें कोई कारण नहीं समझता।"

"मेरे जैसे लोगो के भाग्य मे ऐसा ही लिखा है। हम लोग अन्याय और अत्याचार का सहन नहीं कर सकते। जब हम उसका विरोध करते हैं तो यह बात अन्याय करनेवालो को पसन्द नहीं होती। परिणाम यह होता है कि हम लोगों का अन्याय करनेवालों से सघर्ष हो जाता है। अन्यायी प्रायः प्रबल होता है और हमारे लिए उसका मुकाबिला अधिक से अधिक काल तक करने के लिए भूम्यान्तर्गत हो जाना आवश्यक हो जाता है।"

"परन्तु अब तो ब्रिटिश-राज्य नहीं रहा। वह गया और उसके साथ अन्याय और अत्याचार भी गए समझने चाहिएँ।"

"मै ऐसा नहीं समझती। न तो अभी अँग्रेज़ गया है और न ही अन्याय और अत्याचार की समाप्ति हुई है। इसके लिए प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं। जो आँखोवाले हैं, वे सब कुछ समझ और देख रहे हैं।"

"यह अभी परिवर्तन-काल है। धीरे-धीरे सब बाते अपने-आप सुलझ जावेगी।"

इस समय बैरा चाय लेकर आ गया। उसने चाय और खाने का

सामान मेज़ पर लगा दिया। उसके सामने दोनो चुप रहे। जब बैरा चला गया तो बात फिर चेतनानन्द ने आरम्भ कर दी। उसने कहा, "कुछ भी हो अनिमा देवी! जो भी सम्बन्ध मेरा आपसे है, उसे मैं स्थायी रखना चाहता हूँ और उसमे कोई भी परिस्थिति बाधा न डाल सके, ऐसा चाहता हूँ।"

"इस सम्बन्ध में आपकी ओर से ही घाटे का सौदा होगा। खैर छोड़िये इस बात को। मै एक बात आपसे पूछना चाहती थी, जो एक अधीनस्थ कर्मचारी होने से मै अपने आफिसर से नहीं पूछ सकी। अब मै स्वतन्त्र हूँ और हम अब बराबरी के स्तर पर हैं। यदि आप बुरा न माने तो मैं पूछूँ ?"

"हाँ, पूछ सकती हैं। मै नहीं जानता कि मेरे मन में कोई ऐसी बात है, जिसमे बताने मे आपत्ति मानता होऊँ।"

"आप कांग्रेसी विचार के आदमी थे। पंजाब की धारा-सभा में उसकी ओर से सदस्य निर्वाचित हुए थे। इस पर भी आपने कांग्रेस-विरोधी मुसलिम लीग के मन्त्री-मंडल के आधीन नौकरी स्वीकार कर ली। या तो आप कांग्रेस में किसी आदर्श से प्रेरित होकर सम्मिलित नहीं हुए थे, या आप पर कोई ऐसी कठिनाई आ पड़ी थी कि आप सिद्धान्त पर दृढ नहीं रह सके। आपके अन्य गुणो को देखते हुए, मै इस विषमता को समझ नहीं सकी।"

इस प्रश्न ने चेतनानन्द को अपने पर विचार करने पर बाध्य कर दिया। वह गम्भीर विचार में खो गया और चुपचाप सुरकी लगा-लगाकर चाय पीने लगा। अनिमा अपने लिए चाय बना रही थी और अपने प्याले मे ढल रही चाय को देख रही थी। जब प्याले में चाय, दूध और चीनी डाल चम्मच से घोलने लगी तो उसे ज्ञान हुआ कि चेतनानन्द ने उसके प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। उसने आँखे उठा-कर देखा तो चेतनानन्द के मुख पर चिन्ता और अनिश्चितपन की झलक पाई। उसने उसे उत्तर देने की कठिनाई से छुड़ाने के लिए

कह दिया, "यदि कोई ऐसी बात है जो आप नहीं बताना चाहते तो न सही। यह कोई ऐसी बात नहीं, जिसका जानना मेरे लिए अनिवार्य हो।"

"नहीं ! यह बात नहीं।" चेतनानन्द ने सचेत हो कहा, "मैं बताने से झिझक नहीं रहा। मैं तो अपने मन की बात को जानने का यत्न कर रहा हूँ। अपने व्यवहार का जो कारण मैंने मान रखा था, वह वर्तमान अवस्था में मिथ्या और सारहीन प्रतीत हो रहा है। कुछ दिनों से मेरे मस्तिष्क में भाँति-भाँति के विचार और फिर उनमें संघर्ष चल रहा है। मैंने झूठे समाचार देने से इन्कार कर दिया है और अपनी नौकरी के चले जाने की भी परवाह नहीं की। मैंने आपके साथ सम्बन्ध बनाने की इच्छा प्रकट की है और आपके साथ बंदी हो जाने से भी भय नहीं किया। इस परिस्थिति में, जब यह सोचता हूँ कि एक बड़ी वेतन के लिए धारा-सभा की सदस्यता छोड़ी, कांग्रेस छोड़ी और फिर एक विरोधी पार्टी की नीति चलाने में साधन बना, तो अपने किए पर पुनरावलोकन करने के लिए विवश हो गया हूँ। आपके प्रश्न ने इसमें प्रोत्साहन दिया है।"

अनिमा ने मुस्कराते हुए कहा, "मुझको बहुत शोक है कि मैंने व्यर्थ में आपको परेशान किया है।"

"परेशानी कोई नहीं। केवल अपने मन की अवस्था के विश्लेषण में कठिनाई अनुभव कर रहा हूँ। देखो, अनिमा देवी, मैं आपको अपना संक्षिप्त इतिहास बताता हूँ। मैं एक लड़की से प्यार करता था और उससे विवाह निश्चय कर जब उसके और अपने माता-पिता से कहने गया तो दोनों के माता-पिता ने हमारे कार्य को पसन्द नहीं किया। लड़की के माता-पिता के नापसन्द करने का प्रभाव यह हुआ कि वह निश्चित तिथि को समय पर उपस्थित ही नहीं हुई। विवाह का प्रबन्ध और दावत पर किया खर्चा सब व्यर्थ गया। इसके अतिरिक्त

सैंकड़ों मित्रो के सामने लज्जित होना पड़ा। मेरे इस प्रकार के व्यवहार से मेरे पिता ने मुझको अपने उत्तराधिकार से वंचित कर दिया।

"ऐसी अवस्था में मेरा मन अति क्षुब्ध हो उठा। इस समय मुझको नसीम मिली। वह मुझसे प्रेम करने लगी। आपने उसे देखा है और यह तो समझ ही गई होगी कि वह बहुत सुन्दर है। मैं उसके प्रेम को ठुकरा नहीं सका। विवाह के पश्चात् निर्वाह का प्रश्न उत्पन्न होना स्वभाविक ही था। पंजाब की धारा-सभा से क्या आय हो सकती थी? इस कारण मैंने नसीम के जीजा मिस्टर पराचा का प्रस्ताव, कि यहाँ नौकरी कर लूँ, स्वीकार कर लिया। नौकरी करते अभी दो मास से कुछ ही ऊपर हुआ है कि इसकी कठिनाईयों का अनुभव होने लगा है। अब मै अपनी आत्मा की पुकार को पुनः सुनने लगा हूँ और मेरे मन में नौकरी की महिमा कम होने लगी है। इस सबका परिणाम क्या होगा? कह नहीं सकता।"

अनिमा यह कथा सुन चुप कर गई। चेतनानन्द चाय पीने लगा। जब चाय समाप्त हो गई तब भी दोनों चुपचाप अपने-अपने विचारो में डूबे हुए थे। अनिमा को पहिले चेतना हुई और उसने उठते हुए कहा, "अब देर हो गई है। मै समझती हूँ कि हमें चलना चाहिए।"

"मैं कल आपकी यहाँ प्रतीक्षा करूँगा।" चेतनानन्द ने अपने मन में उठ रहे निराशा के विचारो को छोड़कर कहा।

[१३]

चेतनानन्द 'काफे' से बाहर निकला तो उसका चित्त घर जाने को नहीं हुआ। वह ट्राम में बैठ 'लेक' के किनारे घूमने चला गया। 'लेक' के किनारे रखी एक बेंच पर बैठ अपने मन में उठ रहे विचारों का विश्लेषण करने लगा। वह सोच रहा था कि अनिमा गिरीश-से प्रेम करती है। उनके शीघ्र ही विवाह होने की किंचित् भी आशा नहीं। इस पर भी वह निराश नहीं और धैर्य से समय के अनुकूल होने की

प्रतीक्षा कर रही है। इसके विपरीत उसका अपना व्यवहार है। पार्वती के विवाह के अवसर पर उपस्थित न होने पर वह उससे ऐसा रूठा कि उससे मिलकर उसके विचारों को जानने का भी यत्न नहीं किया। यह कैसा प्रेम रहा ? नसीम बहुत सुन्दर थी, परन्तु पार्वती जैसी सभ्यता, गम्भीरता और दूरदर्शिता उसमें नहीं थी। यह तो चंचल, चपल, फुहर और भावुकतापूर्ण थी। इसके विचार करने और फिर कार्य करने में अन्तर नहीं होता था। कई बार जब कुछ कह लेती थी तो पीछे उसकी ग़लती को अनुभव कर क्षमा माँगने लगती थी। इस छोटे से विवाहित काल में भी कई बार झगड़ा हो चुका था। एक समय तो वह यह समझने लगी थी कि वह अनिमा से प्रेम करने लगा है, परन्तु अनिमा को देख उसे अपने विचारों की भूल पर पश्चात्ताप होने लगा। कभी चेतनानन्द को घर आने में देरी हो जाती तो वह यह संदेह कर कि किसी स्त्री की संगत में रहा होगा, उससे लड़ जाती, परन्तु पीछे ठीक कारण का विश्वास हो जाने पर क्षमा माँग लेती। चेतनानन्द इस प्रकार के विचारों में लीन बैठा-बैठा अपने आपको भूल गया। सूर्यास्त हुआ तो उसे ज्ञान हुआ कि उसे घर चलना चाहिए।

घर पहुँचा तो नसीम प्रीमियर साहब के घर गई हुई थी। आजकल उन्होंने अपना निवास-स्थान भवानीपुर में बना लिया था। नसीम को वहाँ न देख, वह अपने ड्राइंगरूम में चला गया और एक आराम-कुर्सी पर बैठ, फिर अपने विचारों में लीन हो गया। उसे नौकर से पूछने पर मालूम हुआ था कि नसीम घर से दोपहर के दो बजे गई थी। परन्तु उसको इस बात की चिन्ता नहीं लगी। वह आज एक नई दुनिया में विचर रहा था।

चेतनानन्द पार्वती का मुकाबिला अनिमा देवी से कर रहा था। दोनों में बहुत बातों में समानता थी। दोनों न तो बहुत बोलती थीं और न ही बनाव-शृंगार करती थीं। पार्वती अनिमा से अधिक सुन्दर

थी और अनिमा पार्वती से अधिक समझदार। बंगाली लड़कियों की चपलता उसने अपने पिता से पाई थी और अपनी माँ से पजाबियों की कार्यशीलता की मालिक बन गई थी। दोनों बातें करतीं-करतीं अतीत मे खो जाती थीं। एक राजनीति से सर्वथा अछूत थी, दूसरी राजनीति में ही रमती थी। उसके श्वास-श्वास में से देश, जाति और राष्ट्र की गंध आती थी।

नसीम दोनो से अधिक सुन्दर थी परन्तु वह भावनाओं की पुंज थी। पल में गुलाब के फूल की भाँति खिल उठती थी और पल में ही चंडी की भाँति अपने और चेतनानन्द के बाल नोचने पर तैयार हो जाती थी। एक रात सोने से पूर्व चेतनानन्द उसे अनिमा की बात बताने लगा, "अनिमा अपने प्रेमी से प्रायः मिलती है और परस्पर प्रेम-प्रलाप न कर देश, जाति, आत्मा-परमात्मा और योग-मुक्ति की बातें करते हैं। इस प्रकार अपने व्रत पर, कि माँ की अनुमति के बिना विवाह नहीं करेंगे, आरूढ़ रह सकते हैं और इधर तुम और मैं हैं...."

इतना कहना था कि नसीम पर क्रोध सवार हो गया। वह क्रोध में कहने लगी, "तो जाओ न, उसी से विवाह कर लो। जब वह इतनी अच्छी है तो उसी के पास जा रहो......"

चेतनानन्द को पता लग गया कि सिर पर चंडी सवार हो गई है। वह बिना किसी प्रकार का उत्तर दिए वहाँ से उठा और कपड़े उतार, अपने पलंग पर जा सो रहा।

आधी रात गुज़र जाने पर, जब वह गहरी नींद सो रहा था, नसीम चुपचाप उसके बिस्तर में आ, घुस, लेट गई और चेतनानन्द को यह जान बहुत अचम्भा हुआ कि उस रात वह बहुत ही प्रेममयी थी।

टेलीफोन की घंटी बजी तो चेतनानन्द को समय का ज्ञान हुआ। भोजन करने का समय हो गया था। चेतनानन्द ने टेलीफ़ोन उठा सुना तो उसमें नसीम बोल रही थी। उसने प्रीमियर के घर से टेलीफोन किया था। "मैं आज देरी से आऊँगी। आप भोजन कर लीजिए।"

"क्या बात है आज वहाँ।" चेतनानन्द ने पूछा।

"आज बेग़म सुरावर्दी कलकत्ता की चीदा-चीदा मुसलिम ख़ातून को दावत दिए हुए हैं।"

चेतनानन्द ने टेलीफ़ोन बन्द कर दिया और बैरा को खाना लगाने को कह दिया।

खाना खाने के पश्चात् वह सिनेमा देखने चला गया। जब वह घर आया तो बारह बज चुके थे और नसीम अपने बिस्तर पर लेटी खुर्राटे भर रही थी। चेतनानन्द ने कपड़े उतारे और एक किताब ले, बिस्तर पर लेट पढ़ने लगा। कुछ देर मे उसे उबासियाँ आने लगीं। उसने किताब सिरहाने के नीचे रख चादर ओढ़ सोने की तैयारी कर दी।

वह अभी 'बैड-स्विच' दबा, बिजली बुझाने ही लगा था कि नसीम की नींद खुल गई और वह अपने पलंग पर लेटी-लेटी पूछने लगी, "कहाँ चले गए थे आप?"

"आज चित्त कुछ उदास था और घर मे अकेले बैठे-बैठे और भी उदासी होने लगा तो पिक्चर देखने चला गया था।"

"उदासी क्यो होने लगी थी?"

"आज अनिमा देवी डिसमिस कर दी गई हैं। और उसकी आर्थिक अवस्था का ध्यान कर चित्त में कुछ अफ़सोस हुआ था।"

'हाँ! प्रीमियर साहब बताते थे, वह उसको निकालने के लिए बिलकुल तैयार नहीं थे। परन्तु बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान ने उनसे आग्रह किया है कि कलकत्ता में शान्ति रखने के लिए इसको बन्दी बना जेल मे डाल देना बहुत ज़रूरी है। यह घर-घर घूमकर लोगो को कहती-फिरती है कि कलकत्ता में फसाद होनेवाला है। विवश, उसके वारंट निकालने की आज्ञा देनी पड़ी और उससे भी पहिले उसको सरकारी नौकरी से डिसमिस करना आवश्यक हो गया।

मुझको भी यह सुन बहुत अफसोस हुआ था, परन्तु पूर्ण नगर की रक्षा एक व्यक्ति की नौकरी से अधिक आवश्यक है।"

चेतनानन्द इससे और भी अधिक चिन्ता में पड़ गया। उसके मुख पर गम्भीरता बढ गई देख, नसीम ने पूछा, "आपको चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। आपने तो कुछ किया नहीं जिससे उसको हानि पहुँची है। जब उसके काम ही ऐसे हैं तो हम उसे कैसे बचा सकते है ?"

"पर यह कैसे पता चल गया कि वह अशान्ति फैला रही है। उसकी प्रकृति इतनी सौम्य और सभ्य है कि उससे यह आशा करनी कि वह कोई बलवा कराने की कोशिश कर रही है, ठीक प्रतीत नहीं होता।"

"यह जानना मेरा और आपका काम नहीं। यह पुलिस का काम है।"

"पर तुम तो कह रही थी कि प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान के कहने से उसे पकड़ने की आज्ञा दी गई है। तो कांग्रेस का प्रधान पुलिस अफसर हो गया है क्या ?"

"पुलिस से क्या उसका अधिक विश्वास नहीं करना चाहिए ?"

"वह एक राजनीतिक दल का आदमी है। उसकी बात पक्षपात से रहित होनी कठिन है।"

"यह बात मेरी समझ में नहीं आई।"

"इसमें समझने की कोई बात है भी नहीं। पुलिस के अफसर किसी राजनीतिक दल से सम्बन्ध न रखने से अधिक निष्पक्ष होते हैं। कांग्रेस के प्रधान का अपने विरोधी दल के आदमी को देश में अशान्ति फैलानेवाला मान लेना स्वाभाविक ही है।"

"परन्तु कांग्रेस तो एक राष्ट्रीय दल है न! इसका लक्ष्य देश को स्वतन्त्र करना है। अतएव इसका विरोधी होना देश-द्रोह नहीं है क्या ?"

"मैं भी आज से एक मास पूर्व यही समझता था। परन्तु यह जान कि हिन्दू महासभा के सदस्य, देश को स्वतन्त्र करने का आदर्श रखते हुए भी, कांग्रेस में नहीं लिए जाते, मेरे विचार बदल गए हैं। हिन्दू महासभा और कांग्रेस में अन्तर उद्देश्य में नहीं, प्रत्युत उपायों में है। जब से कांग्रेस ने अपने आधारभूत सिद्धान्तों (क्रीड) में उपाय को सम्मिलित किया है तब से यह एक राजनीतिक दल-मात्र रह गई है। एक और बात में अन्तर है। यह है कौम, अर्थात् इस देश की जाति के लक्षण करने में कांग्रेस, हिन्दुस्तानी उसको समझती है जो भी इस देश में रहता हो और हिन्दू महासभा हिन्दुस्तानी उसको समझती है जो इस देश में रहने के साथ-साथ इस देश के आचार, व्यवहार, रीति-रिवाज, पुण्य स्थान और पुण्य पर्वों को आदर से देखता हो। इससे भी देश को स्वतन्त्र करने की बात साँझी ही रहती है। इस पर भी हिन्दू सभाईटों के लिए कांग्रेस में स्थान न होने से कांग्रेस एक दल-मात्र रह गई है।"

"यह सब आपको अनिमा ने बताया मालूम होता है। उसके दिमाग़ में हिन्दू-मुसलमान का झगड़ा समाया हुआ है। इसी से तो उसे नौकरी के काबिल नहीं समझा गया।"

"तो इसका मतलब यह हुआ कि इस विषय में कांग्रेस और मुसलमान एकमत हैं।"

"यह मैं नहीं जानती। हाँ! यह बात मैं समझती हूँ कि मुसलिम लीग देश के एक हिस्से में मुसलमानों का राज्य चाहते हैं और कांग्रेस ने उसे, सिद्धांत-रूप में, मान लिया हुआ है।"

"यही कारण है कि कांग्रेस मुसलिम लीगी सरकार की सहायता कर रही है। और इस सहायता करने में हिन्दू सभाईटों को पकड़वा रही है।"

"मुझे कभी-कभी ऐसा मालूम होने लगता है कि आप अनिमा से

मुहब्बत करने लगे हैं, तभी आप उसकी बेदलील बातों को मानने लग जाते हैं।"

"तो मुहब्बत करने से महबूबा की बेदलील बातों को माना जाता है?"

"यही मालूम होता है।"

इससे चेतनानन्द गम्भीर विचार में डूब गया। उसने करवट बदलते हुए कहा, "अब सो जाओ। मुझको नींद आ रही है।"

इतना कह उसने स्विच दबा बिजली बुझा दी। वास्तव में उसे अपने सरकारी नौकरी स्वीकार करने का रहस्य प्रतीत हो गया। वह इस पर विचार करता था। वह सोचता था कि उसने सरकारी नौकरी नसीम के कहने पर स्वीकार की थी तो क्या यह उसकी मुहब्बत में आकर एक बेदलील बात कर ली थी। परन्तु वह अनिमा से उस प्रकार की मुहब्बत नहीं करता था जैसा नसीम से करता था। तो यदि नसीम की अयुक्तिसंगत बात मान रहा है तो अनिमा की क्यों मान रहा है? वह सोचता था कि क्या नसीम से उसकी मुहब्बत नहीं या क्या अनिमा से नहीं? अनिमा से तो उससे वैसा प्रेम है नहीं, तो यह सिद्ध हुआ कि अनिमा की बात अयुक्तिसंगत नहीं है या इसका यह परिणाम हुआ कि नसीम से जैसा सम्बन्ध उसका है, वह प्रेम का न होकर केवल वासना का है, और वासना की मादकता ही अयुक्तिसंगत बात करवाती है। इसी प्रकार की बातें बहुत काल तक वह सोचता रहा। फिर एकाएक उसे विचार आया कि अनिमा के वारंट निकल चुके हैं और शायद वह अब तक पकड़ी गई होगी। वह स्वयं भी इसकी आशा करती थी। उसे विश्वास हो गया कि वह पकड़ी गई है। इससे उसे अनिमा के पिता के विषय में विचार आने लगे।

दो का घंटा बज जाने के बाद उसे नींद आई और परिणाम यह हुआ कि अगले दिन वह आठ बजे उठ सका। कठिनाई से स्नान

इत्यादि से छुट्टी पा, दफ़तर के समय पर तैयार हो सका। दफ़तर में नई सेक्रेटरी मिस रिज़वी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। वह अभी कॉलेज से पास कर निकली ही थी कि उसकी नौकरी लग गई थी। इसकी टाइप करने की गति भी अनिमा से कम थी और काम तो वह बिलकुल नहीं जानती थी। हाँ, एक बात में वह बहुत चतुर थी। वह फर्स्ट क्लास 'फ्लर्ट' थी। बात-बात पर नख़रे करती और हाव-भाव बनाती थी। मुख पर पाउडर, होठों पर लिपस्टिक, गालों पर रूज़ और अपनी साड़ी पर एक विचित्र प्रकार की खुशबू लगाए हुए थी। चेतनानन्द को उसे बहुत कुछ समझाना पड़ा और फिर वे बातें जो वह स्वयं नहीं समझता था किसी से समझवानी पड़ी। इस पर भी वह गलतियों पर ग़लतियाँ करती जाती थी। इसी उधेड़-बुन में दिन व्यतीत हो गया। 'आफ्टरनून टी' के समय मिस रिज़वी उठीं और चेतनानन्द से बोलीं।

"अगर आप क्षमा करें तो क्या मैं आपको चाय का निमंत्रण दे सकती हूँ।"

चेतनानन्द इस निमंत्रण को सुन भौंचक्का हो उसका मुख देखता रह गया। उसने कहा, "धन्यवाद। मिस रिज़वी, क्षमा करें, मैं एक आवश्यक काम में लगा हूँ। फिर किसी दिन आपके निमत्रण से लाभ उठाऊँगा।"

मिस रिज़वी निराश हो चली गईं और चेतनानन्द अचम्भे में उसको जाते देखता रहा। दफ़तर का समय हो जाने के पश्चात् उसे अनिमा का विचार आया। उसने दफ़तर के रजिस्टर से उसके घर का पता मालूम कर लिया और रायल काफे में जा उसकी प्रतीक्षा करने लगा। वह चाय मँगवा पीने लगा। अनिमा अभी तक नहीं आई थी। चाय समाप्त हो गई। वह अभी भी नहीं आई। उसे विश्वास होता जाता था कि वह पकड़ ली गई है। जब वह बैरा को दाम दे रहा था, एक स्त्री पंजाबी ढंग के कपड़े पहिने उसके सम्मुख आ, बैठ गई। चेतनानन्द ने दाम देते-देते हाथ खींच लिया। और बैरा को

और चाय लाने को कह दिया। जब बैरा चला गया तो उसने उसकी पोशाक की ओर संकेत कर पूछा, "यह क्या?"

अनिमा ने पंजाबी में उत्तर दिया, "मै कैंहदी साँ न, मेरे वरंट निकलगै ने। मेरा नाँ हुन बलवंत कौर ए। तुहानूँ हुन अपना ध्यान करना चाहि दै। किदरे ए न हो जावे कि मेरे नाल तुहानूँ वी कष्ट पिया होवे।"

"मैनू एस गल दा पता सवेरे ई लग गया सी, पर मै समझदा साँ कि तुसी अज पकड़े नहीं गए होवोगे।"

"अजे औ साडे घर नहीं पहुँचे पर मैं ओन्हाँ नू मैंनूँ पकड़ लेना दा अवसर ही नहीं देना चाहन्दी। मैं छुप गई हाँ।"

"तुहाडी शकैत खुफिया पुलिस ने नहीं कीती। मैंनूँ पक्की थाँ तो पता लगिया है कि तुहाडी रपोट बंगाल सूबा कांग्रेस कमेटी दे परधान ने मुख्य मंत्री दे पास खुद कीती ए।"

"मैंनूँ एही आशा सी। मैं इक प्राइवेट जलसे दे विच किआ सी कि कलकत्ता दे विच मुसलिम लीग दा सिद्धा ऐकशन होनवाला ऐ। ए गल कांग्रेस दे परधान नूँ पसन्द नहीं आई ते ओसने मेरी शकायत कर दित्ती ए। पर मैं ताँ परवाह नहीं करदी। हुन मैं तुहानूँ इक गल होर दसनी आँ। सोलहाँ अगस्त नूँ मुसलिम लीग ने अपना सिद्धाँ ऐकशन आरम्भ करना है। एस वासते कलकत्ते दे विच भारी तियारी हो रही ऐ। नतीजा बहुत बुरा होवेगा।"

"पर साडे दफ़तर विच एस गल दी कोई ख़बर नहीं।"

"तुहानूँ ता सोलाँ अगस्त नूँ पता चलेगा। साडे पास इक आदमी है, जेरा हर रोज़ मस्जिद विच नमाज़ पढ़न जान्दा ए। ओ है ताँ हिन्दू पर बन के मुसलमान फिरदा ए, ओ मसीत विच होन-वालियाँ सारियाँ गल्लाँ दस देदा ऐ। ओस दा केहना है कि कलकत्ते दे विच दो हज़ार मुसलमान लड़न-मरन वासते तियार हैन?"

"ए ताँ बड़ी भयंकर गल्ल ए। ते तुसी की कर रए हो?"

"साडी सुनदा कौन ए। असी लोगाँ नूँ समझाने हाँ ते कांग्रेसी कह देंदे ने कि साडा दिमाग़ ख़राब हो गया ए। लोग ओन्हाँ दी गल्ल नूँ मन लैंदेन। ओन्हाँ दी गल्ल मननी असान है न। साडी गल्ल मनन दे वासते ताँ जान हथेली ते रख मैदान दे विच औना पेन्दा ए।"

"ए ताँ कबूतर वाकन अखाँ मीटन जई गल्ल होई न?"

"एस विच संदेह ई नहीं! देखो की होन्दा ए।"

चाय समाप्त होने पर दोनों उठ खड़े हुए। चेतनानन्द ने पूछा, "कल कहाँ मिलेंगे?"

"फिरपो में।"

[१४]

अनिमा को नौकरी से छुट्टी हो जाने पर नगर में घूम-घूमकर काम करने का अवसर अधिक मिलने लगा। अनिमा ने अपने पिता के घर रहना और आना-जाना बन्द कर दिया। ख़ुफ़िया पुलिस ने भी उसके पिता के घर के आस-पास चक्कर लगाने आरम्भ कर दिए। अब रात को उसके मित्र भी वहाँ नहीं आते थे। अनिमा के पिता को कष्ट तो होता था परन्तु वह इससे अधिक कष्ट सहन करने का स्वभाव रखता था। जो अन्डेमन तक की जेल में रह आया हो, उसके लिए कलकत्ता जैसे नगर में अकेले रहना कुछ भी कठिन नहीं था।

अनिमा अपनी पार्टी के एक कार्यकर्त्ता, श्री सुधीर कुमार के घर रहती थी। सुधीर कुमार एक बीमा कम्पनी के एजेन्ट के रूप में काम करता था। वहाँ अनिमा को एक पृथक् कमरा मिला हुआ था। सुधीर कुमार अपनी स्त्री के साथ दूसरे कमरे में रहता था। एक तीसरा कमरा आफ़िस के लिए था। सुधीर कुमार ने भी अपना काम-धन्धा छोड़ अनिमा के साथ काम करना आरम्भ कर दिया था।

ये लोग मुहल्ले-मुहल्ले में जाते थे और लोगों को कहते थे, "मुसलमान शरारत करने पर तुले हुए हैं और गवर्नर इनकी कानून के विरुद्ध बातों को रोक नहीं सका। ऐसी अवस्था में हिन्दुओ को इस मुसीबत का मुकाबिला करने के लिए तैयार हो जाना चाहिए। यदि ऐसा नहीं हो सका, तो उनकी जान, उनका माल, उनकी बहू-बेटियाँ और उनका सर्वस्व विनाश को प्राप्त हो जावेगा।

प्रायः लोग कहते थे कि महात्मा गांधी और देश के अन्य नेताओ ने अँग्रेज़ो की नीयत साफ होने की गारन्टी दी है। ऐसी अवस्था में एक अँग्रेज़ अफसर गवर्नर और वह भी लेबर पार्टी का सदस्य होकर, हिन्दुओ की रक्षा क्यो नहीं करेगा? यदि हिन्दू अपनी ओर से शान्ति भंग नहीं करेंगे तो भारतवर्ष की पुलिस और फौज, जो अँग्रेज़ अफसरों और गवर्नर के अधीन है, उनकी रक्षा करेगी।

परन्तु सब लोग ऐसे नहीं थे। कभी कोई अनिमा देवी और सुधीर कुमार का विश्वास करते तो ये उन्हें अपने मुहल्ले की रक्षा की तरकीब बता देते। ये बताते, "मुहल्ले के नवयुवक एक स्थान पर एकत्रित होकर लाठी, बरछा, छुरी चलाना और दूसरे के आक्रमण से बचना सीखें। मुहल्ले में आग बुझाने के साधन एकत्रित किये जावें और लोगों को सचेत करने के लिए एक घड़ियाल का प्रबन्ध किया जावे।"

यह सब बाते कहीं जातीं तो फिर लोग इसमें मीन-मेख निकालते। इस पर भी अनिमा और सुधीर कुमार यह समझते थे कि वे अपना कर्तव्य पालन कर रहे हैं। और कुछ दिनों में इसका प्रभाव भी होने लगा। कई नये, कुश्ती करने और लाठी इत्यादि चलाना सीखने के लिए अखाड़े खुल गए थे। इससे तो कांग्रेस के लोग घबराने लगे थे। काग्रेस ने अनिमा और उसके साथियों का विरोध करने के लिए शान्ति-सभाएँ खोलनी आरम्भ कर दीं। अब जहाँ कहीं अनिमा और सुधीर जाते तो शान्ति-सभा के लोग भी वहाँ जा पहुँचते और परस्पर

वाद-विवाद आरम्भ हो जाता। अनिमा कहती, "अपने मुहल्ले की नाकाबन्दी की योजना बना रखिए," तो कांग्रेस के लोग कहते, "अपने मुहल्ले के मुसलमानो से मेल-मिलाप रखोगे तो भय करने की आवश्यकता नहीं।" इस पर अनिमा का उत्तर होता, "भय मुहल्ले के मुसलमानो से नहीं है, प्रत्युत बाहर से आक्रमण करनेवालों से है।" शान्ति-सभावाले कहते, "यह काम पुलिस करेगी।"

प्रायः लोग कांग्रेसवालों की बात ठीक समझते थे। उनकी बात मानने से कुछ करना नहीं पड़ता था। अनिमा का कहना था कि वे कुछ करे, और इसमें धन और समय लगता था।

मुसलिम लीग ने डायरैक्ट ऐकशन आरम्भ करने की तिथि घोषित कर दी। यह १६ अगस्त निश्चय हुई थी और इसको पूर्ण हिन्दुस्तान में मनाया जाना था। इस पर भी अनिमा और उसके साथियो का विचार था कि देश के अन्य स्थानो से कलकत्ता में भय अधिक था। उनके पास तो इस बात की सूचना थी कि कलकत्ता मे झगड़ा करने का पूरा यत्न किया जानेवाला है।

अनिमा के न पकड़े जाने से पुलिस को बहुत डाँट-डपट हो रही थी। उसके घूम-घूमकर लोगों को संगठित करने के प्रयत्नो की नित्य नई खबरें आ रही थीं। इससे पुलिस और भी हैरान हो रही थी। एक दिन सायंकाल जब वह काम करती हुई थक चुकी थी और सुधीर के साथ घर जा रही थी, तो एक पुलिस सार्जन्ट और दो कान्सटेबल उसके सामने आ खड़े हुए। उसके साथ एक खद्दर पहिने नवयुवक भी था। वे उस मुहल्ले में से आ रहे थे जहाँ से अनिमा अभी बातचीत कर आ रही थी। खद्दरधारी नवयुबक वही था जो अनिमा के साथ सबसे अधिक वाद-विवाद करता रहा था।

स्वभाविक रूप में अनिमा ने समझा कि उस खद्दरधारी ने विश्वास-घात किया है। एक कान्सटेबल सार्जन्ट को बताने लगा "मैं समझता हूँ कि यही है।"

सार्जन्ट ने अनिमा से पूछा, "क्या नाम है तुम्हारा ?"

"बलवंत कौर।"

सार्जन्ट पंजाबी था। उसने अनिमा को सिर से पैर तक देखा और फिर पंजाबी भाषा में पूछा, "कित्थे रहन्दे ओ, भैन जी ?"

"नम्बर ती, अलीगज विच, भ्रा जी।"

सार्जन्ट ठेठ पंजाबी सुन चुप रह गया। कुछ काल तक अनिमा को ओर देखकर विश्वास कर साथी खद्दरपोश की ओर देख पूछने लगा, "क्यो जी! आप तो कहते थे कि आप अनिमा देवी को पहिचानते हैं। अब बोलते क्यो नहीं ?"

"अनिमा देवी होतीं तो कहता न ?" उस खद्दरपोश ने उत्तर दिया।

"तो यहाँ क्यों खड़े हो गये हो ?"

"मैंने आपको खड़ा होने को नहीं कहा।"

इससे सार्जन्ट ने भूमि पर पाँव पटक कहा, "तो जल्दी करो। यहाँ वक्त क्यों ज़ाया कर रहे हो ?"

पुलिस पार्टी आगे निकल गई तो अनिमा ने अचम्भा प्रकट कर सुधीर से कहा, "यह खद्दरधारी तो हमारा विरोधी था, फिर न जाने क्यों, मुझको बचाने के लिए इसने झूठ बोल दिया है।"

सुधीर ने कंधों को झटका देकर कहा, "कोई नेक, ईमानदार आदमी मालूम होता है। मालूम होता है कि पुलिसवाले इसे ज़बरदस्ती साथ ले आए हैं।"

एक और दिन अनिमा चौरंगी में खड़ी ट्राम की प्रतीक्षा कर रही थी कि सामने से चेतनानन्द आता दिखाई दिया। उसने भी इसे देख लिया। वह भागकर आगे बढ़ बोला, "ओ ! अनिमा देवी !"

अनिमा देवी का रंग फक हो गया। समीप ही एक पुलिस आफि-सर खड़ा था और अनिमा का नाम सुन वह ध्यान से उसकी ओर

देखने लगा। एक क्षण में अनिमा ने अपने को सम्हालकर कहा, "चेतनानन्द बाबू ! तुसी वी खूब भुल जादे ओ। अनिमा तों मेरी सहेली सो जेरी मिर्जापुर चली गईए। मेरा नाम ते बलवन्त कौर ऐ।"

"ओ ठीक।" चेतनानन्द ने अपने सिर को खुजलाते हुए कहा, "हुन मैंनू याद आ गया ए। पता नहीं मेरा दिमाग क्यो एन्ना कमजोर हो गया ए। हाँ, बलवन्त कौर जी, आजकल मिलदे वी नई तुसी ?"

"मैं कल ई ताँ लाहौरो आई हाँ।"

"भइया जी ठीक न ?"

इस पर भी पुलिस अफसर को संतोष नहीं हुआ। उसने समीप आकर चेतनानन्द से पूछ ही लिया, "क्षमा करें ! आप अनिमा देवी को जानते हैं ?"

"जी हाँ।" चेतनानन्द ने सचेत होकर कहा।

"वह कहाँ रहती हैं ?" पुलिस अफसर का अगला प्रश्न था।

'यह तो मैं नहीं जानता। बात यह है कि वह इनकी सहेली और सहपाठिन थी। इन दोनो के नामों में मुझे प्रायः भ्रम हो जाता है। इनको अनिमा और उसको बलवन्त कौर समझ लिया करता हूँ।"

"परन्तु अनिमा तो एक बंगाली लड़की का नाम है ?"

"जी हाँ, मैं जानता हूँ। इस पर भी मुझे भ्रम हो ही जाता है।"

पुलिस अफसर चुप तो कर गया परन्तु उसका संदेह बना ही रहा। वह इन दोनो की ओर घूर-घूरकर देखता रहा। टालीगंज की ट्रॅम आई तो दोनों उसमें सवार हो गए। अनिमा ने धीमे स्वर में कहा, "आपने तो मुझे फँसा ही दिया था।"

"क्षमा करना अनिमा देवी ! आज कई दिन के पश्चात् अकस्मात् आपको देखकर भूल ही गया था। खैर, छोड़िए इस बात को। उस दिन आपने 'फ़िरपो' मे आने को कहा था। पूरा एक घंटा-भर प्रतीक्षा करने के पश्चात् निराश हो चला गया। आज तक कभी तो 'रायल

काफे' में और कभी 'फिरपो' में चाय के लिए जाता हूँ और हर बार यह आशा कर जाता हूँ कि आपसे भेंट होगी, परन्तु प्रत्येक बार निराश लौटता हूँ। इससे आज आपके दर्शन कर अपने आपको भूल गया था।"

"आप अब किधर जा रहे हैं?"

"मैं जा तो घर रहा था, परन्तु अब आप जिधर कहें।"

"तो चलिए, लेक के किनारे पर चलकर बैठेंगे। मुझे दो घंटे का अवकाश है। समय अच्छा कट जावेगा।"

"कहीं काम मिल गया है क्या?"

"हाँ। चलिए वहीं चलकर बातें होंगी।"

इसके उपरान्त दोनों ट्राम में नहीं बोले। टालीगंज से उतर, वहाँ से पैदल ही लेक के किनारे पर जा पहुँचे। वहाँ एकान्त ढूँढ़कर बैठ गए। अनिमा ने अपना वचन पूरा न करने का कारण बताने के लिए बात आरम्भ कर दी।

"नौकरी अभी तक नहीं मिली, परन्तु काम इतना मिल गया है कि अवकाश बिलकुल नहीं मिलता।"

"क्या काम मिल गया है?"

"आपको तो पहिले बता चुकी हूँ हमारी एक मंडली है, जिसमें कुछ तो मेरे मित्र हैं और कुछ पिता जी के साथी हैं। हम-कलकत्ता के हिन्दुओं में ऐसी जागृति उत्पन्न करने का यत्न कर रहे हैं, जिससे आने-वाली मुसीबत से वे बच जावें।"

"कैसी मुसीबत?"

"हमारे मन में यह बात बैठ गई है कि मुसलिम लीग कलकत्ता में झगड़ा कराएगी और उस झगड़े को असफल करने का एक ही उपाय समझ आ रहा है। वह यह कि उस झगड़े में डटकर मुसलमानों का मुकाबिला किया जावे।"

"इससे यह ठीक नहीं क्या कि गवर्नर से कहकर फौज का प्रबन्ध करा दिया जावे ?"

"यह ठीक तो है परन्तु संभव नहीं।"

"क्यो सम्भव नहीं ?"

"इसलिए कि अँग्रेजों की स्वार्थसिद्धि इस झगड़े में मुसलमानों के सफल होने में है।"

"यह कैसे ? मै समझ नहीं सका।"

"बात स्पष्ट है। अँग्रेज भारतवर्ष छोड़ने पर विवश हो गए हैं। इस पर भी वह हिन्दुओ का यहाँ अकंटक राज्य स्थापित नहीं होने देना चाहते। उनको हिन्दुओं पर विश्वास नहीं है। उनकी यह इच्छा है कि एक प्रबल मुसलिम राज्य यहाँ स्थापित हो जावे, जो हिन्दुओं के स्वतंत्र राज्य को तंग करता रहे। हिन्दू इस बात को नहीं चाहते। यह डायरैक्ट ऐकशन की धमकी हिन्दू-काग्रेस को इस बात पर तैयार कर चुकी है कि देश के तीन विभाग हों, परन्तु इतने से काम नहीं चलता। अँग्रेजों को तो हिन्दुओ पर एक मुसलमानी स्वतंत्र राज्य का अंकुश निर्माण करना है। इसके लिए देश के एक दो नगरों में खून की नदियाँ बहाने की आवश्कयता समझी जा रही है। इससे काग्रेसी नेता भयभीत हो, मुसलमानों की पूर्ण माँग स्वीकार कर लेंगे। हिन्दू नेताओं की घबराहट का इलाज यह है कि मुसलमानों को अपने डायरैक्ट ऐकशन में सफल न होने दिया जावे।"

"अनिमा देवी। आप ऐसे बात करती हैं जैसे आप महात्मा गाधी से भी अधिक जानती हैं। वे नित्य ब्रिटिश अफसरो से मिलते रहते हैं और उनके मन के भावों को भली-भाँति जानते हैं। उन्होंने कहा है कि उनको अँग्रेजी अफसरो की नीयत पर संदेह नहीं है।"

"यदि उनकी नियत अच्छी है तो फिर राज्य पलटने की आवश्य-

कता ही क्या है ? उनको धीरे-धीरे राज्य में परिवर्तन करने दिया जावे।" अनिमा ने मुस्कराते हुए पूछा।

चेतनानन्द इस बात का उत्तर नहीं दे सका। वह सोचने लगा कि यदि अनिमा की बात सत्य हो गई तो कलकत्ता में बलवा हो जाना और रक्तपात हो जाना कोई कठिन बात नहीं है। चेतनानन्द को चुप देख अनिमा ने अपना कहना जारी रखा। उसने कहा, "आप छोड़िए इस बात को। बताइए, नसीम बहिन कैसी है।"

"अच्छी तरह है। आजकल कुछ स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। और सब ठीक है।"

"मैं उनसे मिलने आती, पर मै तो फरार हूँ न ?"

"नहीं वहाँ मत आना। नसीम आपकी कारगुजारी से सहमत नहीं।"

"मै तो समझती थी कि वे काग्रेसी विचार की हैं।"

"तो इससे क्या होता है ?"

"जिस कानून से मुझको पकड़ने के वारट हैं, वह एक नाजायज़ कानून है। मुझे बिना मुकद्दमा किए पकड़कर कैद करने की आज्ञा है।"

"वह कहती थी कि जब काग्रेस के प्रधान ने आपके विरुद्ध रिपोर्ट की है तो मुकद्दमे की जरूरत नहीं है।"

"आप भी यही समझते हैं क्या ?"

"वैसे तो मैं ऐसे कानून को नाजायज़ समझता हूँ, परन्तु मैं देख रहा हूँ कि उन सूबों की सरकारो ने भी, जहाँ कांग्रेस का बहुमत है, 'पबलिक सिक्यूरिटि ऐक्ट' पास किए हैं और उनके अनुसार ही तो बिना मुकद्दमे के पकड़ा जा रहा है। इससे मुझे अपनी सूझ-बूझ पर संदेह हो रहा है।"

"यह तो स्वराज्य स्थापित होने के पूर्व ही अन्याय का राज्य चल पड़ा है। कांग्रेस इस समय लोगों की मनोनीत संस्था है और इसके विरुद्ध कोई षड्यंत्र करेगा, ऐसा समझ नहीं आता।

इस पर भी यदि कांग्रेस को किसी पर संदेह है तो पहिले ही 'क्रिमनल प्रोसीज्युर कोड' की धारा १०७ और १०८ है जिनमें संदिग्ध लोगों को पकड़ने का और पकड़कर एक वर्ष तक कैद में रखने का अधिकार मैजिस्ट्रेट को है। इन धाराओ के अनुकूल अभियुक्त को अपनी सफाई देने का अधिकार हैं। पबलिक सिक्यूरिटि ऐक्ट बनाने का केवल-मात्र एक ही प्रयोजन हो सकता है कि अभियुक्त को अपनी सफाई भी देने के अधिकार से वंचित रखा जावे। यह तो घोर अन्याय है। इसी के विरुद्ध ही तो छब्बीस वर्ष तक कांग्रेस आंदोलन करती रही है।"

"आपका कहना तो सत्य प्रतीत होता है, परन्तु यह बातें तो उनको ही बतानी चाहिए जो इस समय बताने की परिस्थिति मे हैं।"

"वे क्या बताएँगे? मै बताती हूँ। कांग्रेस देश की हत्या करने जा रही है। यह, जब से महात्मा गाधी के नेतृत्व मे आई है, देश के हितो को मुसलमानों पर न्यौछावर करती रही है। हाँ! तब प्रत्येक बात का उत्तरदायित्व बृटिश अफसरों पर होता था। इस कारण महात्मा जी की भूल का परिणाम भी उनके सिर लाद दिया जाता था। अब जो कुछ ये करेंगे उसका उत्तरदायित्व कांग्रेस पर होगा। ये करने जा रहे हैं देश-द्रोह और उन लोगों को, जो इनके इस काम का विरोध करेंगे, मुख बंद करने के लिए यह कानून बना दिए हैं।"

चेतनानन्द इस सूझ पर हँस पड़ा। उसने केवल यह कहा, "मैं समझता हूँ कि हम अभी इतने महान् पुरुषों पर आक्षेप करने योग्य नहीं हुए, हमारी आयु अभी बहुत छोटी है। आओ, राजनीति की बाते छोड़कर किसी और विषय की बात करें।"

डायरैक्ट ऐकशन

[१]

डायरैक्ट ऐकशन को आरम्भ करने का दिन १६ अगस्त १९४६ नियत किया गया और पूर्ण भारत में से केवल कलकत्ता के अन्दर इस दिन सरकारी रूप में छुट्टी दी गई। सब सरकारी दफ़्र कार्पोरेशन के दफ़्र और कारखाने बंद करवा दिए गए। हिन्दू इससे चिन्तित हुए अवश्य, परन्तु वे इतना कुछ होने की आशा नहीं करते थे जो हुआ और प्रायः हिन्दू अपने-अपने काम पर ऐसे गए जैसे साधारण दिनों में जाते थे। मुसलमानो ने इस दिन हड़ताल घोषित कर रखी थी। हैरिसन रोड पर जब हिन्दुओ की दुकाने खुलने लगीं तो मुसलमान युवकों को यह बात पसन्द नहीं आई। उन्होंने दुकानें बंद करने को कहा और कुछ हिन्दुओं ने व्यर्थ का झगड़ा मोल न लेने के लिए दुकानें बंद कर दीं। कुछ एक को आत्म-सम्मान अधिक प्रिय प्रतीत हुआ। उन्होंने अपनी दुकानें बंद करने से इन्कार कर दिया। इस पर मुसलमानों की एक भीड़ ने इन दुकानदारों पर ईंटे चलानी आरम्भ कर दी। दुकानदार जान बचाकर दुकानें खुली छोड़कर भाग खड़े हुए और दुकानें लुट गईं।

इस प्रकार की घटनाएँ प्रत्येक मुहल्ले और बाजार में होती रहीं। दस बजे एकाएक मुहल्लों पर आक्रमण आरम्भ कर दिए गए। हिन्दुओं के मकानों में घुस-घुसकर लूटमार और स्त्रियों को अपमानित किया जाने लगा। अनिमा और सुधीर कुमार ने आज प्रचार-कार्य पर जाना उचित नहीं समझा था। सुधीर कुमार की स्त्री ने उन्हें इस दिन जाने नहीं दिया। इन लोगों के साथी तो घूम-घूमकर समाचार

एकत्रित कर रहे थे और उस दिन के एकत्रित होने के लिए केन्द्र स्थान सुधीर कुमार का घर ही बना रखा था। इस प्रकार पल-पल पर लोग बाहर जा रहे थे और नगर के समाचार ला रहे थे। लगभग दस बजे यह समाचार आया कि हैरिसन रोड पर लूटमार मच रही है। फिर समाचार आया कि अलीगंज में हिन्दू मुहल्लों को आग लगा दी गई है। कुछ काल पश्चात् एक ने बताया कि धर्मतल्ला में मुसलमानों का एक झुण्ड खड़ा है और राहगीर हिन्दुओं को मार-काट रहा है। लगभग तीन बजे समाचार मिला कि सरकस रोड पर हिन्दुओं का कत्ले-आम हो रहा है।

इस प्रकार के समाचार आ रहे थे। घर के सब लोग दाँत पीस-पीस कर रह जाते थे। तीन बजे के लगभग सुधीर कुमार का छोटा भाई, जो कॉलेज होस्टेल में रहता था, आया। सुधीर की स्त्री उसे देख चिन्तित हो पूछने लगी, "निवारण ! क्या बात है ? यहाँ किस लिए आए हो ?"

"भाभी ! किसी ने यह विख्यात कर दिया था कि ग्रे स्ट्रीट में आग लग रही है। मुझे आपकी चिन्ता लग गई थी। इससे चला आया हूँ।"

"इतनी दूर तुम कैसे आ सके हो ? हमने तो सुना है कि चित्तरंजन एविन्यू के बाहर कत्ले-आम हो रहा है।"

"हाँ, परन्तु भाभी ! यह देखो।" इतना कह उसने अपनी जेब से रूमी टोपी निकाल सिर पर टेढ़ी कर रख और कोट के नीचे से बिस्तर की चैखानी छपी चादर निकाल अपनी धोती के ऊपर तहमत की भाँति पहन एक हट्टे-कट्टे मुसलमान की सूरत बना दिखा दी। "जब मेरे सामने एक हिन्दू परिवार को गुण्डे घसीटकर मकान से बाहर लाए और उनकी हत्या करने लगे तो मैंने अल्लाहू-अकबर का नारा लगा दिया। इससे सब गुंडे उस परिवार पर कुत्तों और चीलों की भाँति झपट पड़े। इस प्रकार रास्ता साफ देख मै वहाँ से खसक

आया। सड़कें मृत शवों से पटी पड़ी हैं और मैंने यहाँ तक आते-आते बीसियों मकानों को जलते देखा है।"

अनिमा ने इन समाचारों को सुन बेचैन हो कहा, "मैं समझती हूँ कि कुछ करना चाहिये, इस प्रकार अपमानित होने से तो लड़ते-लड़ते मर जाना अच्छा है।"

इस समय सुधीर के मकान के ऊपर की मंजिल पर रहनेवाले किराएदार का लड़का श्यामाचरण हाँफता हुआ बाहर से आया और बोला, "गली के बाहर लगभग दो सौ मुसलमानों की भीड़ खड़ी है। सब लाठियों-बरछों और तलवारों से सुसज्जित हैं। राह चलते लोगों को नंगा कर देखते हैं कि मुसलमान है या कोई और। हिन्दू होने पर तुरंत मार डालते हैं।"

अनिमा की आँखें क्रोध से लाल हो रही थीं। रक्त का प्रवाह उसके सिर को चढ गया था। उसने तमतमाते माथे पर त्योरी चढ़ाकर पूछा, "कितने घर हैं इस मुहल्ले में?"

"पाँच सौ से ऊपर हैं।"

"तो क्या पाँच सौ आदमी यहाँ एकत्रित नहीं हो सकते? देखो श्यामजी और निवारणचन्द्र, मैं लोगों को इकट्ठा करने जा रही हूँ। बताओ, तुम मुहल्ले की रक्षा के लिए अपने को पेश करते हो या नहीं?"

श्यामाचरण की माँ और पिता ऊपर की मंजिल से नीचे उतर आये थे और अनिमा का प्रस्ताव सुन रहे थे। यह सुन श्यामाचरण की माँ ने कहा, "यह क्या लड़ेगा? धोती की चोन निकालनी तो आती नहीं इसे?"

श्यामाचरण ने एक क्षण तक अनिमा का मुख देखा और फिर अपनी माँ की ओर देखकर कहा, "पर माँ! चूहों की भाँति बिल के अंदर घुसकर मरना भी तो मैं नहीं जानता।"

इतना कह उसने निवारण की बाँह में बाँह डाली और उसे घसीटता हुआ मकान के बाहर ले गया। श्यामा के पिता ने अपने लड़के

को पीछे से आवाज दी, "श्याम ! श्याम !! ओ श्याम !!! परन्तु वे दोनों घर से बाहर निकल चुके थे। श्याम की माँ की आँखों में आँसू दिखाई देने लगे थे। उसने चीख मार और माथे को पीटते हुए पुकारा, "कहाँ गया मेरा श्याम ?"

अनिमा ने कुछ डाँटकर कहा, "चुप रहो बहिन। बच्चों को हतोत्साह न करो। सुधीर बाबू अपना पिस्तौल भर लो।" इतना कह अनिमा ने अपने सोने के कमरे में जाकर अपने बिस्तर पर सिरहाने के नीचे से एक छुरे को निकालकर अपने आँचल के नीचे छुपा लिया। इस प्रकार अपनी रक्षा के लिए तैयार हो सुधीर कुमार से बोली, "आइए मेरे साथ।"

ये दोनों भी घर से बाहर निकल गए। सुधीर बाबू की स्त्री अवाक् मुख खड़ी इनको देखती रह गई। श्याम बाबू की माँ तो वहीं भूमि पर बैठ गई और सिर को घुटनों में दे रोने लगी। श्याम बाबू का पिता अपने लड़के के पीछे-पीछे मकान के बाहर चला गया।

अनिमा मकान के नीचे उतरी तो श्याम और निवारण के प्रयत्नों का फल निकलने लगा था। लोग लाठियाँ और छुरियें ले-लेकर अपने-अपने मकानों से बाहर आ रहे थे। पचास के लगभग युवक एकत्रित हो चुके थे। अनिमा ने उनको देख हाथ के संकेत से अपनी ओर बुलाकर कहा, "वीरो! देख रहे हो न, कि क्या हो रहा है ? तुम चाहते हो कि तुम्हारे मकानों को आग लगा दी जावे, तुम्हारा माल-असबाब लूट लिया जावे, और तुम्हारी माँ-बहिनों का अपमान किया जावे ?"

उनमें से एक ने अपने हाथ की लाठी को ऊँचा उठाकर जोर से कहा, "नारा बजरंगी।" सबके मन जोश से उबल रहे थे। बजरंगी की ललकार सुन सब बोल उठे, "हर-हर महादेव।"

इस पर अनिमा ने अपने आँचल से छुरी निकाल ली और छुरी

वाला हाथ उठाकर बोली, "जिनको मरने से भय नहीं लगता, मेरे पीछे आ जावो।"

इतना कह उसने बजरंगबली का नारा लगाया और गली के बाहर की ओर चल पड़ी। युवक 'हर-हर महादेव' का नारा लगाते हुए भागकर अनिमा के चारों ओर हो गए और सब गली के बाहर को बढ़े। एक स्त्री को इस प्रकार मौत के मुख में भागकर जाते देख युवकों के जोश का वारापार नहीं रहा। वे गली के बाहर मार-काट करते हुए मुसलमानों पर बिजली की भाँति टूट पड़े। मुसलमानों ने समझा था कि हिन्दू कायरों की भाँति अपने-अपने मकानों में छुपे रहेंगे और वे राहगीरों को समाप्त कर एक-एक मकान से इनको निकालकर मौत के घाट उतार देंगे! उनको स्वप्न में भी यह आशा नहीं थी कि एक औरत युवको को साथ ले उन पर टूट पड़ेगी।

एक क्षण तक तो वे समझ ही नहीं सके कि यह क्या आफत है। इतने में अनिमा के साथियों ने तीन-चार मुसलमानों को लाठियों से घायल कर धराशायी कर दिया था। कुछ मुसलमान एक हिन्दू को नङ्गा कर रहे थे और वह हिन्दू नीम के पत्ते की भाँति काँप रहा था। मुसलमान अपने साथियों को मरता देख लड़ने को बढ़े, परन्तु अनिमा की पुकार, "शाबाश बहादुरों" ने उनके हृदय कम्पायमान कर दिए और वे भाग खड़े हुए। मुसलमानों की संख्या दो सौ के लगभग थी और अनिमा के साथियों की पचास से कुछ ऊपर। ये [illegible] अनिमा को निर्भयतापूर्वक लड़ाई में कूदते देख विपुल उत्साह से भर, यम-दूतों की भाँति, मुसलमानों पर पिल पड़े थे। मुसलमान अभी तक बिना विरोध के हिन्दुओं की मार-काट कर रहे थे। अब मुकाबिले के लिए उत्साह और निश्चय से भरे हुए हिन्दू युवकों को देख घबरा गए और भाग खड़े हुए।

मुसलमानों को भागते देख अनिमा ने अपने साथियों को उनके पीछे जाने से रोक दिया और कहा कि 'हमारा काम उनको मारना नहीं

प्रत्युत अपने मोहल्ले की रक्षा करना है।' इस समय घायलों की देख-भाल की गई। अनिमा के साथियों में से केवल तीन को साधारण घाव लगे थे। दूसरी ओर मुसलमानों मे से तीन को तो भारी चोटें आई थीं। वे भागनेवालों के साथ जा नहीं सके थे और अचेत वहाँ पड़े थे। उस स्थान पर राह जाते बारह के लगभग हिन्दू मारे जा चुके थे और दो को वे अधमरा छोड़ गये थे। एक के आधे कपड़े उतारे जा चुके थे। अनिमा ने अपने साथियों को कहा कि घायलों को भीतर ले चले और मृत शवों को वहीं छोड़ दें। श्यामबिहारी के पिता जोगेश बाबू भी मोहल्ले के कुछ प्रौढ़ों को लेकर आ गए। वे लोग भी मोहल्ले के युवकों को लड़ते देख जोश में आ गए थे।

घायलों के भीतर आ जाने पर अनिमा देवी ने गली के बाहर पेहरा बैठा दिया। उसने उनके हाथ में एक घड़ियाल देकर कह दिया कि यदि तो पुलिस आवे तो घड़ियाल को तीन बार बजावे और यदि मुसलमान आवें तो घड़ियाल को कई बार बजावे। पुलिसवालों के आने की सूचना पर सब लोग अपने-अपने घरो में छुप जावें और मुसलमानों के आने की सूचना पर सब लोग गली के फाटक पर एकत्रित हो जावें और मुसलमान आक्रमणकारियों को भीतर न घुसने दें।

पुलिसवाले तो दिन में एक बार भी नहीं आए परन्तु मुसलमान दिन में तीन बार आए और मार-मारकर भगा दिए गए।

[२]

रात को कलकत्ता की स्थिति अति विकट हो गई। अनिमा और उसके साथियों ने घर की छत पर चढ़कर देखा कि कलकत्ता में सैकड़ों स्थानों पर आग धू-धू करती हुई जल रही है। "अल्ला-हू-अकबर" के कानों को फाड़ देनेवाले नारों का गर्जन चारों ओर से सुनाई दे रहा था।

ये लोग चारो ओर जलती हुई अग्नि के प्रकाश में एक दूसरे का मुख देख रहे थे। निवारणचन्द्र कॉलेज होस्टेल में वापस नहीं जा सका था। समीप से ही "अल्ला-हू-अक्बर" की घोर गर्जना हुई। अनिमा इन नारो को सुन-सुन व्याकुल हो रही थी। अब उससे चुप नहीं रहा गया। वह कह उठी, "कौन इस भीर के समय अनाथ हिन्दुओ की रक्षा करेगा?"

सुधीर कुमार का कहना था, "अनिमा बहिन! कुछ करना चाहिए, यदि यह आज न किया गया तो बृटिश-साम्राज्य का दूसरे नम्बर का नगर एक दो दिन में कोयलों का ढेर हो जावेगा। मज़ेदार बात तो यह है कि कांग्रेसी जो मुसलमानों पर अगाध श्रद्धा और विश्वास रखते थे और जिनको अँग्रेज़ो से सुरक्षा की पूर्ण आशा थी, अब अपने घरों में छुपे बैठे हैं।"

अनिमा अनेको अग्नि-काडों से हुए रक्त वर्ण आकाश की ओर देखकर, एक लम्बी साँस ले बोली, "हमें अपना कर्तव्य करना है। वे क्या कहते थे और क्या कर रहे हैं, इससे हमें कोई प्रयोजन नहीं। मैं समझती हूँ कि अपनी ही परछाईं से डरे हुए सिंह को एक बार सचेत करने की आवश्यकता है। यदि हम सफल हो गए तो कलकत्ता कल तक बच जावेगा। भैया निवारण, कॉलेज होस्टेल में जा, विद्यार्थियों को एकत्रित कर, कुछ तो करना चाहिए।"

"मैं भी यही सोच रहा हूँ। भेष बदलकर ही जा सकूँगा।"

"पर कैसे होगा?" श्यामाचरण ने पूछा।

"हम मोहल्ले-मोहल्ले में जाएँगे और लोगों को ऐसे ही तैयार करेंगे जैसे इस गली में किया है।" अनिमा का उत्तर था।

"पर बहिन अनिमा! तुम्हारे जाने की क्या आवश्यकता है? हम लड़के जाकर भी तो यह काम कर सकते हैं।"

"नहीं, भैया निवारण! मुझसे यह ताण्डव और अधिक नहीं देखा जा सकता। मैं तो भेष बदलने में भी बहुत विश्वास नहीं रखती।

चलो, सुधीर भैया ? मेरा मन कहता है कि कल का कलकत्ता आज से भिन्न होगा।"

सुधीर ने अपने पिस्तौल को खोलकर गोलियों को देखा। सब ठीक थीं। फिर इसे बन्द कर जेब में रख लिया। कुछ और कारतूस जेब में रख लिए और अनिमा के साथ जाने को तैयार हो गया। अनिमा ने भी अपनी कटार अपने आँचल के नीचे छुपा ली और सुधीर के साथ घर से बाहर निकल गई। घर से निकलते ही अनिमा ने निश्चय कर लिया था कि उसने अपना काम कहाँ से आरम्भ करना है।

निवारण और श्यामाचरण कॉलेज होस्टल की ओर चले गए। ये दोनों मुसलमानों के भेष में जा रहे थे। मार्ग-भर में वह जल रहे मकानों को देखते जाते थे। कहीं-कहीं लूट-मार मच रही थी और एक स्थान पर तो उन्होंने औरतों को उठा कर ले जाते हुए लोगों को देखा। ऐसे अवसर पर उनके लिए यह अति कठिन हो गया था कि वे अपने हिन्दू होने को छुपा सकते। दाँत पीसते हुए एक ओर अंधेरे में खड़े हो, अपने मन के भावों को कठिनाई से प्रकट होने से रोक सके।

जब ये कॉलेज होस्टल में पहुँचे तो निवारण की आँखें आंसुओं से तरबतर हो रही थीं। पहिले तो होस्टल का दरवाज़ा ही बहुत कठिनाई से खुला। फिर जब भीतर पहुँचे तो जो कुछ देख चुके थे, वह बताने में अपने को अशक्त पाने लगे। होस्टल के विद्यार्थियों में बहुत जोश फैला हुआ था, परन्तु कोई नहीं जानता था कि उस समय क्या किया जावे। श्यामाचरण ने अपनी गली के बाहर की घटनाओं का वर्णन किया और बताया कि किस भाँति आधे से कम हिन्दुओं ने अपने से दुगने मुसलमानों को भगा दिया। उसने मुसलमानों की कायरता का वर्णन करते हुए कहा, "थोड़े-से साहस से पाँसा पलटा जा सकता है।"

उस होस्टल में डेढ़ सौ के लगभग लड़के थे। सब के सब तैयार हो गए। पचास-पचास के तीन दल बनाए गए और यह निश्चय किया गया कि होस्टल की इमारत के आस-पास तीन हल्कों में चक्कर काटकर एक घटे में पुनः वहीं लौट आया जावे। अपने-अपने दल के लड़कों की गिनती कर पुनः दूसरे हल्कों में दौड़ा किया जावे। इस योजना को सब ने पसन्द किया और तीनों दल तीन ओर को चल पड़े।

नियत समय में दो दल तो लौट आए परन्तु तीसरा दल नहीं लौटा। इससे यह अनुमान लगाया गया कि उससे झगड़ा अधिक हो गया है। अतएव वे दोनों दल भी उसकी ओर ही चल पड़े। सत्य ही उस दल की एक मुसलमान दल से मुठभेड़ हो गई थी। मुसलमान भागे तो उन्होने उनका पीछा किया और अपने निश्चित हल्के से दूर निकल गए। मार्ग में तीन बार मुसलमानो से मुठभेड़ हुई और तीनों बार मुसलमान मारे गए और भाग गए। इससे उस दल के लोग इतने उत्साहित हुए कि वापिस आना ही भूल गए। जब तीनों दल मिले तो वहीं बाज़ार में ही गणना कर देखा गया कि कोई भी लड़का अनुपस्थित नहीं था। लड़ाई करनेवाले दल मे पाँच छै लड़कों को हल्की चोटें आई थीं। सब वहाँ से नए हल्के बना आगे चल पड़े।

इस प्रकार हल्के के बाद हल्के मुसलमानों से ख़ाली होने लगे। दूसरी ओर अनिमा भवानीपुर म जा पहुँची। वहाँ सिक्खों की एक छोटी-सी बस्ती थी। अनिमा कई बार उन लोगों में जाकर उनको अपनी और अन्य हिन्दुओ की रक्षा करने के लिए कह चुकी थी। उसे वे लोग सब से अधिक उत्साही मालूम हुए थे। इससे उसने उनसे ही काम आरम्भ करने का निश्चय किया। वहाँ पहुँच उसने एक मकान का दरवाज़ा खटखटाया। एक वृद्ध ने खिड़की में से झाँककर देखा और पूछा, "कौन है?"

अनिमा का उत्तर था, "एक हिन्दू औरत।"

"क्या चाहती हो ?"

"थोड़े से बहादुर वीरों की सहायता।"

वह वृद्ध खिड़की में से पीछे हट गया। ऐसा प्रतीत होता था कि वह मकान में के दूसरे लोगो से राय कर रहा है। लगभग पाँच मिनट के पश्चात् दरवाज़ा खुला। दरवाज़ा खोलनेवाला वही वृद्ध था। उसने सुधीर की ओर देखकर पूछा, "यह कौन है ?"

"मेरा भाई है।"

"और भी कोई साथ है ?"

"नहीं। हम यहाँ ठहरने के लिए नहीं आए। मैं तो यह कहने आई हूँ कि इस प्रकार मकानों के भीतर बैठे-बैठे जल मरने से बाहर निकल इकट्ठे हो, मोहल्ले और नगर की रक्षा करते-करते मरना ठीक नहीं है क्या ? वीर पुरुषों को डर के मारे घरों मे बैठ रहना अब शोभा नहीं देता।"

"क्या करे हम नहीं जानते।"

"कितने सबल पुरुष हैं यहाँ ?"

"एक सौ के लगभग। मगर हमारे मोहल्ले मे तो कोई आक्रमण करता ही नहीं।"

"तो क्या दूसरे मोहल्लों में, जो माँ-बहिनों की इज्ज़त बिगाड़ी जा रही है, वह आपकी नहीं है ?"

"इसी से तो पूछता हूँ, कि क्या करें ?"

इस समय कुछ और लोग ऊपर से नीचे उतर आए थे। एक ने संदेह-भरी आवाज़ में पूछा, "पर तुम कौन हो ?"

"मेरा नाम अनिमा है। मैं कई बार पहिले भी आपको चेतावनी देने आई थी।" कुछ लोगों ने पहिचान लिया और अचम्भे में बोल उठे, "ओह ! अनिमा बहिन, और ये सुधीर बाबू हैं ?"

एक और बोल उठा, "बहिन, भीतर आ जाओ।"

"नहीं। इसके लिए न समय है और न आवश्यकता।"

इस पर उस वृद्ध ने कहा, "आपके कहने के अनुसार हमने मुहल्ले की रक्षा का प्रबन्ध तो किया है। अब हम सोच रहे हैं कि मोहल्ले के बाहर भी हम अपना प्रबन्ध करें अथवा न ?"

इस समय पड़ोस के मकानों के भी कुछ लोग आकर खड़े हो गए। उनमें से एक युवक बोल उठा, "रक्षा का सब से बढ़िया प्रबन्ध विरोधियों पर आक्रमण नहीं है क्या ?"

"बिलकुल ठीक।" सुधीर का उत्तर था।

"परन्तु" अनिमा का कहना था, "आक्रमण करने में स्त्रियों और बच्चों पर हाथ उठाना तो हमारा धर्म नहीं है न।"

"वाहे गुरू इससे बचाए।" वृद्ध का कहना था।

"परन्तु वे जो ऐसा करते हैं।" उसी युवक ने पूछा।

अनिमा ने यह कहनेवाले की ओर घूमकर कहा, "वीर! हम उनसे अच्छे आदमी हैं।"

इसने सबका मुख बन्द कर दिया। अनिमा ने कुछ सोचकर कहा, "जीवन में कभी ऐसी घड़ियाँ आती हैं जब जीना बहुत ही तुच्छ वस्तु बन जाता है। सिद्धान्तों के प्रबल संघर्ष में व्यक्तियों के जीवन घास-फूस से अधिक दाम नहीं रखते। मैं एक अति निर्बल स्त्री हूँ। मैं अपना जीवन तो बलिदान कर सकती हूँ पर किसी दूसरे की किसी प्रकार से सहायता नहीं कर सकती। इस पर भी मैं पूछती हूँ कि क्या इस जीवन का मूल्य इतना अधिक है कि सब प्रिय वस्तुओं को, धर्म, कर्म और सम्बन्धी, इस पर न्योछावर किए जा सकते हैं। आप मकान की छत पर चढ़कर देखें और सुनें, कितने ही बच्चों, स्त्रियों और निस्सहाय लोगों की चीत्कार सुनाई देगी। ये सब कहीं घोर पशुपन होने का सूचक है। यदि जाति में सबल बहादुर और समझदार लोग जीवन के लोभ में ये सब उपद्रव होते देखते रहें तो संसार जीने के योग्य रह ही नहीं जाएगा।

"अबलाएँ चीख़-चीख़कर सबलों से अपनी रक्षा की पुकार कर रही हैं। अच्छा, तो लो, अब मै चली। जो आपको अपना कर्तव्य समझ आवे करो।"

अनिमा इतना कह चल पड़ी। इस समय एक वृद्ध ने आगे आकर कहा, "बेटी अनिमा! सब कलकत्ता ऐसे ही घूमना चाहती हो। यह नगर बहुत लम्बा-चौड़ा है। ठहरो, मैं अपनी टैक्सी ले आता हूँ।"

इससे अनिमा का काम कुछ सुगम हो गया। सबसे अधिक सफलता अनिमा को कॉलेजों के होस्टेलों में मिली। उसके केवल इतना कहने पर कि हिन्दू स्त्रियों और बच्चों पर बलात्कार और अत्याचार हो रहा है, विद्यार्थी लाठियाँ-छुरियाँ और हाकियाँ लेकर निकल आए।

अनिमा दोपहर के समय घर पहुँची। जब से उनकी गली के बाहर मुसलमानों का आक्रमण हुआ था, वह आराम से नहीं बैठी थी। चौबीस घंटे से ऊपर हो चुके थे और वह भाग-दौड़ कर रही थी, जिससे थककर चूर हो गई थी। घर पहुँची तो उसके पिता घायल हो वहाँ पहुँच चुके थे। उनकी मरहम-पट्टी हो चुकी थी। अनिमा को बताया गया कि मुसलमानों के एक दल ने उनके पड़ोस में आक्रमण कर दिया तो उसके पिता अकेले ही बन्दूक ले अपने मकान की छत पर चढ़ गए और आक्रमणकारियों को एक घंटा तक रोके रहे। जब सब कारतूस समाप्त हो गए तो मकान की छतों पर से कूदते-फाँदते वहाँ से निकल भागने के यत्न में एक मकान को लूट रहे मुसलमानों में जा फँसे। वहाँ पर बन्दूक के कुन्दे से लड़ते हुए निकलने में यह चोट खा गए हैं। इसी समय निवारण कुमार अपने साथियों सहित वहाँ जा पहुँचा और इनको छुड़ा लाया है।

अनिमा इतनी थकी हुई थी कि बातें करते-करते ही सो गई। सायंकाल उठी और स्नानादिक कर भोजन करने जा बैठी। इस समय श्याम बाबू दिन-भर की मेहनत से थका हुआ घर पहुँच गया। उसने यह

समाचार अनिमा को सुनाया कि कलकत्ते की अवस्था में परिवर्तन हो गया है। जहाँ कल केवल अल्ला-हू-अकबर के नारे सुनाई देते थे वहाँ आज हर-हर महादेव, कालीमाई की जै और सत् श्री अकाल की गर्जना सुनाई देती है। धधकती हुई हवेलियाँ शान्त हो रही हैं। अनेकों स्थानों पर हिन्दू-मुसलमानों का डटकर मुकाबिला हुआ था। दो-दो सौ के दल एकत्रित होकर लड़े थे और बिना अपवाद के सब स्थानों पर मुसलमानों ने भागकर जान बचाई थी।

हावड़ा के पुल पर से सैकड़ों के शव गंगा के अर्पण किए गए थे। सहस्रों शव सड़को और नालियों में लुड़क रहे थे। बाज़ार विरान थे। जहाँ मुसलमानों के झुंड हाथों में कुल्हाड़ियाँ, बरछे, लाठियाँ और छुरियाँ लिए घूम-घूमकर उधम मचा रहे थे, वहाँ अब अनिमा और उसके साथियों के प्रयत्नो से दुम दबाकर भागते दिखाई देने लगे थे।

जहाँ तक सुधीर के मोहल्ले का सम्बन्ध था, रात से कोई झगड़ा नहीं हुआ था। मोहल्ले के सब रहनेवाले अनिमा की प्रोत्साहन-शक्ति और साहस से चकित रह गए थे और मुक्त कंठ से उसकी प्रशंसा कर रहे थे।

अगले दिन कलकत्ता से मुसलमान पैदल, बैल-गाड़ियों, छकड़ों, मोटरों और बाइसिकलों पर भागने आरम्भ हो गए। दोपहर तक तो भागनेवालों की संख्या इतनी अधिक हो गई थी कि कलकत्ता से, लोगों की नदियाँ सी, बाहर को बहती दिखाई देने लगीं।

[३]

सोलह अगस्त को प्रातःकाल नसीम और चेतनानन्द ब्रेक-फास्ट पर बैठे हुए समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। चेतनानन्द ने कहा, "सरकार को आज पब्लिक छुट्टी नहीं करनी चाहिए थी।"

"क्यों?"

"इसलिए कि यह आन्दोलन एक ग़ैर-सरकारी अंजुमन की ओर से सरकार के ख़िलाफ़ है।"

"नहीं। आप इस मूवमैंट का मतलब नहीं समझे। यह मूवमैन्ट नहीं है। ऐक्शन है। यह सरकार के ख़िलाफ़ नहीं है। यह हिन्दुओं के ख़िलाफ़ है। फिर बंगाल की सरकार मुसलमानों की है।"

"सरकार तो किसी एक ख़ास फिरके की नहीं हो सकती।"

"हाँ! पर मुसलमान कोई फिरका नहीं है।"

चेतनानन्द हैरानी में नसीम का मुख देखने लगा। नसीम स्टेट्स-मैन पढ़ती हुई बातें कर रही थी, इससे चेतनानन्द ने समझा कि उसने बे ध्यान में यह बात कह दी है। उसने बात के स्पष्टीकरण के लिए पूछा, "प्रिये! क्या तुम भी यही मानती हो कि मुसलमान एक फिरका नहीं है?"

"हाँ। मुसलमान एक क़ौम है।"

"भला यह कैसे और कब से?"

"जब से कांग्रेस ने 'ग्रुपिंग' सिस्टम माना है। एक फिरके के लिए पृथक् राज्य नहीं चाहिए।"

"तो कांग्रेस ने भूल की है? यही बात तो अनिमा देवी कहती थीं।"

"देखिए जी। मैं आपको अपने मन की बात बता देना चाहती हूँ। मैं और हमारा परिवार नेशनलिस्ट मुस्लिम थे। हम मुस्लिम लीग का विरोध करते थे। परन्तु कांग्रेस ने ही मुल्क की तक्सीम मज़हबी बिना पर मानकर हमारी पोज़ीशन को ख़राब कर दिया है। इसी से मैं कहती हूँ कि मुसलमानों के एक क़ौम होने के नतायज को तो मान लें, मगर इस बात को न मानें, यह तो कांग्रेस के नेता ही कर सकते हैं।"

"तो इसका मतलब यह हुआ कि हिन्दू महासभा और मुस्लिम

लीग दोनों एक ही विचार को माननेवाले हैं। तो फिर यह जहाद हिन्दूओं के ख़िलाफ क्यों है ?"

"इसलिए कि अठानवें प्रतिशत हिन्दुओं ने अपने मत कांग्रेस को दिए हैं, जो मुसलमानों को एक पृथक् कौम मानती तो है और उसे एक पृथक् मुल्क देने को भी तैयार है, मगर फिर भी अपने आपको दोनों कौमों की मुतहिदा नुमाइन्दा मानना चाहती है।"

चेतनानन्द इस उत्तर से गंभीर विचार में पड़ गया। वह अपने सामने रखे 'पौरिज' को धीरे-धीरे खाने लगा। नसीम अपना खाना समाप्त कर चुकी थी, इससे पुनः समाचार-पत्र पढ़ने लगी।

चेतनानन्द ने खाना समाप्त किया और उठकर, हाथ धो, कुल्ला कर मकान की खिड़की में जा खड़ा हुआ और बाहर की ओर झाँकने लगा। इस समय भी वह उसी विडम्बना में फ़ँसा हुआ था। वह मन में सोचता था कि उसके पिता ने भी यही बात कही थी, अनिमा भी यही कहती थी और अब नसीम भी कह रही है कि कांग्रेस हिन्दू-मुसलमान दोनों का प्रतिनिधित्व नहीं करती। तो कांग्रेस ऐसा क्यों कहती है ? क्या महात्मा गांधी असत्य कहते हैं अथवा क्या वे बात को समझ नहीं सके।

इन्हीं विचारों में वह देख नहीं रहा था कि मकान के नीचे सड़क पर क्या हो रहा है। लोग जोक दर जोक पैदल एक ओर जा रहे थे। छुट्टी के कारण टैक्सी ट्राम सब बन्द थीं। चेतनानन्द का ध्यान इनकी ओर नहीं था। एकाएक मुसलिम नेशनल गार्ड का एक जत्था, जिसमें लगभग दो सौ युवक, फौजी वर्दी पहिने कवायद् करते आ रहे थे, उस मकान के नीचे से जाते-जाते अल्ला-हू-अक्बर का नारा लगाने लगे। इससे चेतनानन्द का ध्यान टूटा। वह देखने लगा कि मकान के बाहर क्या हो रहा है। उसे अनिमा का कहना स्मरण हो आया कि इस दिन मुसलमान झगड़ा करने की तैयारी कर रहे हैं। अभी तक तो उसे इस बात के कुछ भी लक्षण नहीं दिखाई दिए थे।

वह नसीम के इस कहने को कि उस दिन का प्रदर्शन हिन्दुओं के विरुद्ध है, इस बात का सूचक समझ रहा था कि हिन्दुओ पर प्रभाव जमाने का प्रयत्न प्रत्येक प्रकार से किया जावेगा और प्रत्येक प्रकार में लड़ाई-झगड़ा भी सम्मिलित है। इससे वह इच्छा कर रहा था कि लड़ाई-झगड़ा न हो तो अनिमा का अनुमान ग़लत सिद्ध हो जावे।

अब जलसा पर जानेवाले साधारण लोग भी नारे लगाने लगे थे। इन नारो को सुनते-सुनते उसका जी ऊब गया था। वह खिड़की से पीछे हट पुनः नसीम के समीप आ बैठा। वह समाचार-पत्र समाप्त कर चुकी थी और कुछ चिन्ता मे बैठी चेतनानन्द की ओर देख रही थी। जब वह उसके समीप आकर बैठा तो उसने पूछा, "क्या विचार कर रहे थे आप ?"

"मै यही सोच रहा हूँ कि आज के प्रदर्शन का क्या परिणाम होगा। अनिमा कहती थी कि कलकत्ता में मुसलमान झगड़ा करने की तैयारी कर रहे हैं। तैयारी है अथवा नहीं, यदि कहीं झगड़ा हो गया, तो तैयारी की गई ही मानी जावेगी।"

"तो फिर क्या होगा। किसी मक़सद (उद्देश्य) से तैयारी गुनाह नहीं हो सकती।"

"यह तो ठीक है। मगर देखो न, काग्रेस हिन्दुओं को तैयारी से रोकती रही है, यहाँ तक कि केवल इतना कहनेवाले को, कि अपना बचाव का प्रबन्ध कर लो, काग्रेस के प्रधान ने कैद करवाने का यत्न किया। अब यदि फ़साद हो गया और हिन्दुओ को हानि हुई तो हिन्दू इसके विषय में क्या सोचेंगे ?"

"सोचेंगे क्या ? कांग्रेस नेताओ को कौम के गद्दार कहेंगे। जिन्होंने उनको अपना प्रतिनिधि चुना है, वे उनकी रक्षा में ही बाधा डाल रहे हैं। मै आपको एक और नुक्ता-निगाह (दृष्टिकोण) से देखने के लिए कहती हूँ। पठानों के खान भाइयो ने काग्रेस का साथ यह समझ कर दिया था कि हिन्दू और मुसलमान एक कौम है। जब मजहबी बिना

पर मुल्क की तक्सीम मंजूर कर ली है तो क्या खान भाइयों के और आम-तौर पर पठानों के साथ दग़ा नहीं हुआ ? मैं तो कहती हूँ कि आम हिन्दुओं ने कांग्रेस को वोट दिया है और अब भी कांग्रेस की हमायत कर रहे हैं तो कांग्रेस के लीडरों की, बेवकूफी कहिए या ग़द्दारी कहिए, का नतीजा उनको नहीं भोगना चाहिए क्या ?"

इसका चेतनानन्द के पास कोई उत्तर नहीं था, वह अपने मन मे सोच रहा था कि कुछ न कुछ ख़राबी कहीं है। यह तो वह सोच ही नही सकता था कि महात्मा गाधी भूल कर रहे हैं।

चेतनानन्द को चुप देख नसीम ने कहना जारी रखा, "महात्मा गांधीजी ने हमेशा उन मुसलमानों की मिन्नत व समाजत की है जिन्होंने हिन्दुस्तान में हिन्दू और मुसलमानों को दो कौम होने का दावा किया है। यह ठीक है कि हम नेशनलिस्ट मुसलमान कांग्रेस का साथ देते रहे हैं मगर इसमें भी कोई शक नहीं कि कांग्रेस ग़ैर-नेशनलिस्ट मुसलमानों के नुक्ता-निगाह को समझने की कोशिश करती रही है और आख़िर में उन्हीं की बात को मानकर तो हिन्दुस्तान के तीन हिस्से मंजूर कर बैठी है।"

चेतनानन्द का मस्तिष्क घबडा उठा और वह सोच रहा था कि व्यर्थ में अपने पिता के साथ झगड़ा किया। उसने नसीम की बातों का कुछ उत्तर नहीं दिया। इतने में कुछ लोग भागते और शोर मचाते हुए मकान के नीचे से गुज़रने लगे। चेतनानन्द पुनः खिड़की में जाकर देखने लगा। लोग वापिस भागते हुए लौट रहे थे। कोई-कोई तो यह कह रहा था, "हिन्दू-मुसलिम फसाद हो गया है।"

कुछ ही मिनटो में सड़के खाली हो गईं और लोग केवल बड़े-बड़े जत्थों में लाठियों, छुरियों और बरछों से सुसज्जित, आने-जाने लगे। इस समय नसीम भी खिड़की में बाहर का तमाशा देखने आ खड़ी हुई थी। भवानीपुर में हिन्दू आबादी बहुत ज्यादा थी और फिर उस

स्थान पर, जहाँ चेतनानन्द का मकान था प्रायः अफसर रहते थे, इससे मुसलमानों के जत्थे वहाँ से गुज़र जाते रहे परन्तु वहाँ के किसी आदमी अथवा किसी परिवार पर हाथ नहीं उठाया।

नसीम और चेतनानन्द जब देखते-देखते थक गए तो खिड़की से पीछे हट, बैठने के कमरे में आ गए। दोनो अपने-अपने विचारों में लीन थे और एक दूसरे से बाते नहीं कर रहे थे। चेतनानन्द ने आज आफिस नहीं जाना था और नसीम के लिए भी कहीं बाहर जाना सुरक्षित नहीं था। इससे दोनों बैठे तो थे परन्तु अनुभव कर रहे थे कि उस दिन की घटनाओं के विषय में आपस में मत नहीं मिलता। दोनों डर रहे थे कि उस दिन के विषय पर बात होने पर कहीं झगड़ा बढ़ न जाए।

इसी प्रकार के विचारो में बैठे-बैठे दोपहर के खाने का समय हो गया। नौकर ने 'लंच' के समय की सूचना दी। दोनो उठकर खाने की मेज पर बैठे। खाना आया और वे खाने लगे। खाना अभी समाप्त नहीं हुआ था कि मकान के नीचे भारी हल्ला होने लगा। चेतनानन्द ने नौकर को आवाज़ दी, "नाज़िर, ज़रा देखना क्या हो रहा है?"

नाज़िर खाने के कमरे में आकर बोला, "हजूर! वो सामने के मकान पर लोगों ने धावा बोल दिया है।"

"सामने; किसके?"

"जी फणी बाबू, जिनकी बहुत सी लड़कियाँ हैं और......"

"और क्या?" चेदनानन्द ने माथे पर त्यौरी चढ़ाकर पूछा।

नाज़िर चुप कर गया। वह समझ नहीं सका कि साहब इस सूचना से खुश हो रहे हैं अथवा नाराज़, चेतनानन्द खाना छोड़ उठ खड़ा हुआ और अपने सोने के कमरे में जा अपना पिस्तौल भरने लगा। नसीम समझ गई थी कि वह सोने के कमरे में क्या करने गया है। अतएव वह भी उठ पड़ी और उसके पीछे वहाँ जा पहुँची। उसे

पिस्तौल भर बाहर निकलते देख मार्ग रोक खड़ी हो गई। चेतनानन्द उसका आशय समझ पूछने लगा। "क्यों?"

"आप हिन्दू हैं और उनकी संख्या बहुत अधिक है।"

"मुझे डर नहीं लग रहा। तुम चिन्ता न करो, मैं अभी आता हूँ।"

इतना कह चेतनानन्द नसीम को, एक ओर हटाकर, कमरे के बाहर निकल गया। नसीम मुख देखती रह गई। वह मकान के नीचे उतर आया और भीड़, जिसमें प्रायः आस-पास के बँगलों के बैरे और ख़ानसामे थे, की ओर जाने लगा। उसने देखा लोग मकान के अन्दर घुस चुके हैं। मकान का दरवाज़ा तोड़ दिया गया है और मकान के अन्दर कोहराम मचा हुआ है। कुछ लोग भीतर से सामान निकाल-निकालकर बाहर ढेर लगा रहे थे। एक दो दियासलाई जला उसे आग लगाने का यत्न कर रहे थे। इससे चेतनानन्द को कुछ अचम्भा हुआ। वह समझ नहीं सका कि सामान लूटकर ले जाया क्यों नहीं जा रहा और यदि आग ही लगानी है तो मकान ही को क्यों नहीं आग लगाई जा रही।

चेतनानन्द अभी भीड़ से कुछ अन्तर पर ही था कि उसे दो आदमी एक औरत को ढकेलकर बाहर लाते हुए दिखाई दिए। यह फणी बाबू की सबसे बड़ी लड़की थी। इसके बाहर निकलते ही एक और आदमी एक और लड़की को कंधे पर डाले हुए बाहर निकला। इसके पीछे एक और था। चेतनानन्द अधिक सहन नहीं कर सका। वह वहीं खड़ा हो गया और ललकारकर बोला, "ठहरो। कहाँ लिए जा रहे हो इन्हें?"

भीर ने घूमकर चेतनानन्द की ओर देखा और उसे, अकेले को, इस प्रकार ललकारते हुए देख, सब खिल-खिलाकर हँस पड़े। वे आदमी जो लड़कियाँ उठा लाए थे, बिना चेतनानन्द की ओर ध्यान किए, भीड़ से बाहर निकल एक ओर को चल पड़े। चेतनानन्द ने

भीड़ की हँसी की ओर ध्यान किए बिना उस आदमी की ओर पिस्तौल का निशाना साधा जो मझली लड़की को कंधे पर डाले ले जा रहा था। चेतनानन्द उस लड़की को तड़पते और रोते देख रहा था। उसे अपनी रक्षा का ध्यान नहीं था। उसने गोली चला दी। गोली लड़की ले जानेवाले की कमर में लगी और वह वहीं बैठ गया। लड़की उसके कंधे से लुढ़ककर भूमि पर गिर गई। चेतनानन्द ने तीसरी लड़की को उठाकर ले जानेवाले पर भी फायर किया। यह गोली भी निशाने पर बैठी। अब तक भीड़ को पता चल गया था कि क्या हो रहा है। इससे चेतनानन्द ने भीड़ को सम्बोधन कर कहा, "भाग जाओ। नहीं मार डालूँगा। इतना कह उसने एक गोली उस पर चला दी जो असबाब के ढेर को आग लगाने का यत्न कर रहा था। गोली उसके हाथ मे लगी और वह भाग खड़ा हुआ। उसने एक गोली और चलाई। यह एक की खोपड़ी में लगी। वह तो वहीं चित्त हो गया। इससे भीड़ में भगधर मच गई। फणी बाबू की सबसे बड़ी लड़की भूमि पर बैठ गई थी और उसको ले जानेवाले, उसे वहीं छोड़ भाग गए। दो आदमी एक और लड़की को पकड़े हुए मकान से बाहर निकले। लड़की हाथ-पाँव मारती हुई छटपटा रही थी। चेतनानन्द ने अब भीड़ को भागते छोड़ लड़की उठानेवालों पर पिस्तौल ताना और उनको ललकारा। उन्होंने मकान के बाहर निकल सबको भागते देख लिया था। इससे बिना बहुत कुछ विचार किए, लड़की को वहीं छोड़ भाग गए।

मकान के भीतर अभी भी चीत्कार मच रही थी। चेतनानन्द ने भीड़ को भगाकर मकान की ओर ध्यान किया। वह मकान के भीतर जाने लगा तो नसीम ने जो उसके पीछे आकर खड़ी हो गई थी, उसका हाथ पकड़कर बोली, "भीतर मत जाइए।" परन्तु चेतनानन्द नहीं माना। वह अपने को छुड़ाकर मकान में घुस गया। नीचे की मंज़िल पर कुछ नहीं था। चेतनानन्द भागकर सीढ़ियाँ चढ़ने लगा।

नीचे से नसीम आवाज़ दे रही थी। "ठहरिए, मैं भी आ रही हूँ।" इस पर भी चेतनानन्द नहीं ठहरा। वह सीढ़ियाँ चढ़ता ही गया।

ऊपर की मंज़िल पर पैशाचिक नृत्य हो रहा था। फणी बाबू का शव एक ओर पड़ा था। छुरे से उसका पेट फाड़ डाला गया था। उस के कुछ अंतर पर फणी बाबू की स्त्री भूमि पर चित्त लेटी हुई थी और एक आदमी उससे बलात्कार कर रहा था। दो आदमियों ने उसके हाथ और टाँगें पकड़ी हुई थीं। इसी प्रकार एक लड़की से भी व्यभिचार किया जा रहा था और वह अचेत पड़ी हुई थी। दो छोटी-छोटी लड़कियाँ कमरे के एक कोने में सहमी खड़ी थीं।

चेतनानन्द ने कमरे में दाखिल होते ही उस पर गोली चलाई जो बेहोश लड़की से व्यभिचार कर रहा था। उसको समाप्त कर चेतनानन्द ने अपनी पिस्तौल उन पर तानी जो फणी बाबू की स्त्री से व्यभिचार करनेवाला था, परन्तु पिस्तौल खाली हो चुका था। वे, जो स्त्री के हाथ और पाँव पकड़े हुए थे, अपने साथी को मरता देख, हाथ-पाँव छोड़, उठ, चेतनानन्द पर लपके। चेतनानन्द ने फणी बाबू के पेट में भोंकी हुई छूरी निकाल ली परन्तु पूर्व इसके कि वह छूरी निकाल सीधा हो पाता, एक आदमी ने उसके सिर पर लाठी से वार किया। इसी समय फट्-फट्-फट् तीन गोली चलीं और तीनों बलात्कार करने-वाले घायल हो बेकार हो गए।

चेतनानन्द लाठी के प्रहार से अचेत हो भूमि पर गिर गया था। नसीम, जिसने अन्त में गोलियाँ चलाई थीं कमरे का दृश्य देख काँप उठी। उसकी आँखों के सामने सब कुछ घूमने लगा। वह वहीं बैठ गई और अपने मन को काबू करने का यत्न करने लगी। कितने ही काल के पश्चात् उसे चेतना हुई। मन को कड़ा कर उसने मकान की खिड़की में से अपने नौकर नज़ीर को आवाज़ दी। नज़ीर अपने मकान के नीचे खड़ा अपने साहब का कारनामा देख रहा था। जब बहुत

देर उसके मालिक-मालकिन मकान से नीचे नहीं उतरे तो उसने समझ लिया था कि वे मारे गए होंगे। अब मालकिन को आवाज़ देते देख वह घबड़ाया। फिर सचेत हो फणी बाबू के मकान पर जा पहुँचा।

नसीम ने कहा, "कासिम को बुला, साहब को उठाकर ले चल।" वह स्वयं फणी बाबू की लड़की को सचेत करने में लग गई। इस समय तक दूसरी लड़कियाँ भी वहाँ आ गई थीं। उनकी सहायता से बेहोश लड़की सचेत हो गई। उन सब को और फणी बाबू की स्त्री को साथ ले अपने घर ले आई। नसीम ने चेतनानन्द की मरहम-पट्टी के लिए डाक्टर को बुलाने का यत्न किया, परन्तु कोई भी डाक्टर घर से बाहर निकलने का साहस नहीं करता था। विवश पट्टी उसको स्वयं ही करनी पड़ी।

[४]

झगड़े के दूसरे दिन सायंकाल तक कलकत्ते की अवस्था में भारी परिवर्तन आ चुका था। रात के समय मकान की छत पर चढ़कर देखने पर अनिमा इत्यादि ने देखा कि यद्यपि आग की घटनाएँ कम हो रही थीं, इस पर भी नगर में चारो ओर चीत्कार मचा हुआ था। अन्तर यह आ गया था कि पिछली रात तो केवल 'अल्ला-हू-अकबर' के नारे सुनाई देते थे और इस रात इन नारों के साथ, 'हर-हर महादेव' के नारे भी पर्याप्त संख्या में सुनाई देने लगे थे।

निवारण और श्यामाचरण बहुत रात बीते लौटे। अनिमा ने जब उनसे पूँछा तो उन्होने बताया कि उस समय तक बाजरों में हिन्दुओं के लिए चलना-फिरना सुगम हो गया था। मुसलमान लूट का माल ले-लेकर भागने आरम्भ हो गए थे। इस पर अनिमा ने कहा, "कुछ ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए कि मुसलमान चुराई हुई लड़कियो को न ले जा सकें। इस विचार के उठते ही निवारण पुनः होस्टल जाने को तैयार हो गया। अनिमा छै घंटे सो चुकने के कारण अपने को

सर्वथा सबल और सचेत पाती थी। वह भी साथ जाने को तैयार हो गई।

जब दोनों एक कॉलेज के होस्टल में पहुँचे तो वहाँ कुछ गर्ल्ज कॉलेज की लड़कियाँ इसी प्रयोजन के लिए पहिले ही पहुँची हुई थीं। अनिमा के कहने पर पचास-पचास लड़कों के झुंड दो-दो तीन-तीन लड़कियों को साथ लेकर कलकत्ता से बाहर को जानेवाली सड़कों पर जाकर खड़े हो गए। मुसलमान जो भारी संख्या में बाहर को जा रहे थे, इन विद्यार्थियों के जत्थों से रोक-रोककर देख-भाल किए जाने लगे।

अनिमा अभी घर आकर बैठी ही थी कि किसी ने आकर बताया "भवानीपुर में सिक्खों ने मुसलमान अफसरों के मकानों पर धावा बोल दिया है।"

"क्या वहाँ कोई मुसलमान अफसर रहता भी है?"

"कई हैं। सुना है कि एक ने तो अपने पड़ोसी हिन्दू अफसर की सात लड़कियों को घर में डाल लिया है।"

"कौन है वह?"

"नाम नहीं जानता। सुना है कि कोई पबलिसिटि आफिसर है।"

"अरे! वह तो हिन्दू है।"

"आप भूल तो नहीं रहीं?"

"नहीं! उसका नाम चेतनानन्द है।"

"तब तो गजब होनेवाला है। बहुत से सिक्ख लोग कह रहे थे कि आज रात को उसके घर हल्ला बोला जावेगा।"

अनिमा यह समाचार पा बैठी नहीं रह सकी। वह तुरन्त उठकर चलने को तैयार हो गई। सुधीर भी साथ चल पड़ा। उसी गली में एक आदमी की अपनी मोटर-गाड़ी भी। जब नगर में मुसलमानों का डर कम प्रतीत हुआ तो वह अपनी मोटर में अनिमा

को ले जाने को तैयार हो गया। दोनों उसकी गाड़ी में सवार होकर भवानीपुर में जा पहुँचे।

सत्य ही सिक्खों के एक जत्थे ने चेतनानन्द के मकान को घेरा हुआ था। और घर के भीतर से बाहर भीड़ पर गोली चलाई जा रही थी। सिक्ख लोगों में से गोली चलने से दो तो मौत के घाट उतर चुके थे और तीन से अधिक बुरी तरह घायल हो गए थे। अनिमा के आने से पूर्व सिक्खों में निराशा फैल रही थी। इसे आया देख उनमें पुनः उत्साह भर आया और 'सत् श्री अकाल' के तथा, 'अनिमा देवी की जै' के नारे लगाने लगे। अनिमा देवी के पूछने पर उन्होंने बताया, "हमें बताया गया है कि उस सामनेवाले मकान के बाबू की सात लड़कियाँ इस पंजाबी मुसलमान ने अपने मकान में छुपा रखी हैं।"

"पर वह तो मुसलमान नहीं है।"

"नहीं बहिन जी। आप नहीं जानतीं। वह मुसलमान है और हमें मालूम हुआ है कि यहाँ के प्रीमियर साहब का सम्बन्धी है।"

"भाई जी ! मै उसे जानती हूँ। वह हिन्दू है।"

"पर उसने मेरे भाई को मार डाला है। मैं उसकी जान लिए बिना नहीं छोड़ूँगा।"

"नहीं, यह नहीं होगा।"

इस समय मकान के भीतर से एक गोली और चली और अनिमा के पास खड़े उस सिक्ख को लगी जो कह रहा था, "मै अपने भाई का बदला लिए बिना नहीं मानूँगा।" हा ! कर वह वहीं लोट गया।

अनिमा ने देखा कि मकान के भीतर से गोली चलनी बन्द करवानी चाहिए, अन्यथा फसाद बढ़ जावेगा। सिक्खों ने समझा कि गोली अनिमा देवी पर चलाई गई है। इससे क्रोध और जोश में भरकर सिक्ख मकान की ओर लपके। अनिमा उनको रोकने के लिए ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगी। "ठहरो ! ठहरो ! वीर भाइयो ! ठहरो।"

इस पर भी जब वे नहीं ठहरे तो अनिमा भागकर उन सब के आगे जा खड़ी हुई। मकान में से गोलियाँ चल रहीं थीं और सिक्ख धराधर घायल हो गिर रहे थे। इस पर भी अनिमा देवी ने साहस नहीं छोड़ा और भागकर सीढ़ियों पर जा पहुँची। एक सिक्ख उसके आगे था और हाथ में नंगी करपान लिए सीढ़ियो पर चढ़ रहा था। अनिमा ने नीचे से उसकी टाँग पकड़ ली, वह सिक्ख नीचे लुढ़क गया। इससे अनिमा सब से आगे हो गई। उसने भुजाओं को फैलाकर सीढ़ियों का मार्ग रोककर अपने पूरे जोर से चिल्लाकर कहा। "वीरो, ठहरो! क्यो व्यर्थ मे अपनी जान गँवा रहे हो। यह हिन्दू का घर है। क्यों आपस में लड़कर एक दूसरे की हत्या कर रहे हो लौट जाओ। मै गोली चलनी बन्द करवाती हूँ।"

सिक्ख अनिमा के कहने पर रुक गए। इस पर भी एक ने कहा, "पर वे जो गोली चला रहे हैं।"

"तुम सब मकान से दूर हट जाओ। मैं उनको मना करती हूँ। जल्दी करो, पीछे हट जाओ।"

अनिमा की आँखों से विशेष चमक निकल रही थी। सिक्ख इसे देख कुछ सहम गए और सीढ़ियों से नीचे उतर मकान से दूर हट गए। परन्तु ज्यों ही अनिमा ने सीढ़ियो पर चढ़ने के लिए मुख मोड़ा कि सीढ़ियो के ऊपर से किसी ने गोली चला दी और यह अनिमा के कंधे पर लगी। अनिमा ने ऊपर को देखा। नसीम सीढ़ियों के ऊपर खड़ी हाथ में पिस्तौल लिए सीढ़ियों की रक्षा कर रही थी। गोली लगने से अनिमा की आँखों के सामने तारे घूमने लगे। इस पर भी उसने दीवार का आश्रय लेकर कहा, "नसीम बहिन। यह क्या कर रही हो? देखो। मैं कौन हूँ। जल्दी मुझको ऊपर आने दो। नहीं तो सब बिगड़ जावेगा।"

नसीम ने अनिमा को देखा और पहिचान लिया। उसके मुख से एकाएक निकल गया, "तुम?" फिर एक क्षण में यह समझ कि वही

आक्रमण करनेवालों की नेता है, बोली, "देखो। मैं कहती हूँ। लौट जावो नहीं तो गोली चला दूँगी।"

अनिमा समझ रही थी कि उसका विश्वास नहीं किया जा रहा। इस पर भी उसने कहा, "नसीम, बहिन! मैं तुम्हारी शत्रु नहीं हूँ। देखो, वे लोग फिर आ जावेंगे। मुझे मकान की खिड़की में से उन्हें समझाने दो।"

पर नसीम समझ नहीं रही थी। उसने फिर कहा, "बहिन नसीम! मैं तुम लोगों को बचाने आई हूँ। पीछे हट जाओ। देखो मै पहिले ही घायल हो गई हूँ। कहीं ऐसा न हो जावे कि उनको हटाए बिना ही बेहोश हो जाऊँ।"

नसीम को इस पर भी विश्वास नहीं आया। उसने पिस्तौल तान लिया और कहा, "हट जावो। नहीं मार डालूँगी।"

पूर्व इसके कि वह अनिमा पर दूसरी गोली चलावे, पीछे से किसी ने हाथ पकड़ लिया। यह चेतनानन्द था। उसके सिर पर पट्टी बँधी थी। चेतनानन्द ने नसीम को कहा, "नसीम डीयर। घबराओ नहीं। इसे आने दो। अकेली ही तो है।"

नसीम एक ओर हट गई। अनिमा ऊपर की मंज़िल पर पहुँची तो चेतनानन्द ने उसके कंधे से रक्त बहते देखा और पूछा, "ओह! घायल हो गई हो अनिमा देवी! इधर आओ, रक्त बन्द होना चाहिए।"

"ठहरो। मैं नीचे खड़े लोगो को शान्त कर लूँ। मुझे न देख वे उपद्रव करने लगेंगे।"

अनिमा खिड़की में चली गई। उसने देखा कि नीचे के लोग जोश मे उतावले हो रहे हैं। उसने हाथ मे रुमाल पकड़कर, लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए हिलाया और अपने पूर्ण बल से ऊँची आवाज़ में कहा, "वीरो! मैं आपको कहती हूँ कि यह एक हिन्दू का घर है। वे लड़कियाँ यहाँ सुरक्षित हैं।"

अनिमा ने चेतनानन्द से लड़कियों के विषय में पूछा। चेतनानन्द ने लड़कियों को वहीं बुला दिया। अनिमा ने उन लड़कियों को अपने साथ खिड़की में खड़ा कर नीचे खड़े लोगों से कहा, "ये वे लड़कियाँ हैं। इनको बाबू चेतनानन्द ने मुसलमानों से छुड़ाया है। इनके पिता को कल कुछ गुंडे मुसलमानों ने मार डाला था। तब से ये लड़कियाँ इस घर म रक्षा पा रही हैं।"

नीचे खड़े लोगों ने अनिमा देवी की जै के नारे लगाए और फिर अपने घायलों और मारे गए लोगो को उठाकर चल दिए। इस समय सुधीर बाबू भी ऊपर आ गए और अनिमा के कंधे से रक्त-स्राव होता देख चिंतिन्त हो बोले, "अनिमा, ये देखो खून है।"

चेतनानन्द ने पट्टी करने का सामान लाकर अनिमा के पट्टी कर दी और उसे वहीं ठहर जाने को कहा। अनिमा वापस घर जाना चाहती थी। इससे वह बोली, "नहीं अब मुझे जाने दीजिए। दो दिन से गिरीश बाबू का कोई समाचार नहीं मिला। मै उनका पता पाने जा रही हूँ।"

"उनको यहीं बुला लो न?" नसीम ने मुस्कराते हुए कहा।

"यह है तो ठीक, परन्तु मार्ग में उनकी रक्षा कौन करेगा?"

[५]

कलकत्ता में फसाद के समाचारों को सुन सिंध के एक मुसलिम लीगी नेता ने प्रसन्नता से फूलते हुए कहा, "अब हिन्दुओं को पता चला है कि मुसलिम लीग की राय न मानने का क्या परिणाम हो सकता है। हम आशा करते हैं कि इससे हिन्दुओ के होश ठिकाने आ जावेगे।"

फसाद के पहिले दो दिन के समाचारों पर तो मुसलमान बगले बजाते रहे, परन्तु दूसरे दिन की रात और तीसरे दिन के समाचारों से उनके मुख विवर्ण हो गए। अब उन्होंने हिन्दुओं को गाली देनी

आरम्भ कर दी। वे कहने लगे कि फसाद हिन्दुओं ने आरम्भ किया था; उनकी बहुत तैयारी थी; इत्यादि।

तीसरे दिन बंगाल के प्रीमियर और कांग्रेसी नेताओं को हिन्दू-मुसलमानों में सुलह करवाने की चिन्ता होने लगी। बंगाल के गवर्नर बहादुर ने भी अपना वक्तव्य दे डाला। प्रीमियर साहब और कुछ काग्रेसी नेता मोटर मे घूम-घूम कर ऐक्यता रखने के पाठ देने लगे।

बंगाल के नेता तो इस डायरैक्ट ऐकशन से घबरा उठे और वे इस घटना की जाँच की माँग करने लगे। इसके कुछ ही दिन पीछे दिल्ली में काग्रेसी नेताओं ने वाइसराय के कौंसिल की मैम्बरी स्वीकार कर ली। अतएव यह प्रश्न देश में बल पकड़ने लगा कि भारत सरकार की ओर से इस घटना की जाँच होनी चाहिए। भारत-सरकार और बंगाल-सरकार में इस विषय पर क्या-क्या बातचीत हुई, कहना कठिन है। इतना स्पष्ट है कि कलकत्ता के फसाद की जाँच करने के लिए बंगाल की सरकार ने ही एक कमेटी नियत कर दी। देश-भर के हिन्दुओं को इस पर असंतोष था। वे चाहते थे कि जाँच भारत-सरकार की ओर से हो। इस फासद के मामले मे वे बगाल-सरकार को भी दोषी मानते थे। इससे उनका कहना था कि एक अपराधी भला अपनी क्या जाँच करेगा।

बंगाल से बाहर के मुसलमानो को पहिले तो यह समझ आया कि कलकत्ता के हिन्दुओ की भारी दुर्गति हुई है। इस पर उन्होंने भारी खुशियाँ मनाई। एक मुसलमान नेता ने तो यहाँ तक कह दिया कि हिन्दुओं को अपनी दुष्टता का फल मिला है। परन्तु ज्यो-ज्यो लोगों को पूर्ण-समाचार मिले तो वे गम्भीरतापूर्वक सोचने लगे। वे जो कुछ देखते थे वह उनके विचार में अनहोनी घटना थी। उनके लिए मुसलमानों का पीटा जाना एक असम्भव बात थी। छोटे दर्जे के मुसलमान तो भयभीत थे और ऊँचे दर्जे के मुसलमान नेता डायरैक्ट ऐकशन की असफलता का बदला लेना चाहते थे।

इस विषय पर तार भेजे गए, गुप्त गोष्टियाँ की गईं और कलकत्ता से अधिक अनुकूल क्षेत्र ढूँढ़ा गया। बंगाल के पूर्वी भाग में नोआखाली के थाना बेगमगंज, रामगंज और लखीमगंज इस नवीन हत्याकांड के लिए चुने गए। बंगाल के मुसलमानो को इस काम के लिए योग्य न समझ पंजाब और सूबा सरहद से गुंडो को लाया गया।

जब महात्मा गाधी अपनी अहिंसात्मक नीति का पाठ हिन्दुओं को दे रहे थे और भारत-सरकार की अंतरिम वाइसराय की कौंसिल के कांग्रेसी नेता राजधानी में पार्टियाँ उड़ा रहे थे, डायरैक्ट ऐकशन की दूसरी कढ़ी सम्पन्न की गई। नोआखाली में हिन्दू स्त्रियों और लड़कियों के साथ भारी सख्या में बलात्कार किया गया और उनका अपहरण किया गया। गाँव के गाँव जला दिए गए। इस हत्याकांड में भी बंगाल के सरकारी अफसरो ने भारी सहायता की। वाइसराय की अंतरिम सरकार मुख देखती रह गई। बगाल का मज़दूर गवर्नर दार्जिलिंग की ठंडी हवाएँ लेता रहा। बंगाल का प्रीमियर दंगा रोकने में अपनी विवशता प्रकट कर दार्जिलिंग में गवर्नर से मिलने चला गया।

कांग्रेस के प्रधान श्री कृपलानी जी हवाई जहाज मे उन इलाकों के ऊपर घूमने गए जहाँ बलवा हो रहा था और उन्होने मुसलमानों के ज़ोरों-ज़ुल्म (हिंसा और अत्याचार) का विवरण समाचार-पत्रों में प्रकाशित किया। परन्तु सरकार ने न तो वास्तविक अपराधियो को पकड़ने का यत्न किया और न ही भविष्य में होनेवाले दंगों को रोकने का कोई उपाय। देश-भर के हिन्दू, सरकार की और कांग्रेसी नेताओं की अकर्मण्यता देख तिलमिला उठे।

इस समय कई लड़कियाँ नोआखाली से भगाकर बिहार के ज़िला आज़मगढ़ में लाई गईं। हिन्दुओ को संदेह हो गया और झगड़ा हो गया। परिणाम यह हुआ कि बिहार के कई ज़िलों में फसाद हो गया।

बिहार में हिन्दुओं की संख्या अधिक थी। इस कारण मुसलमान बहुत बुरी भाँति पिटे। इस समय बिहार की प्रान्तीय-सरकार और केन्द्र की सरकार ने दंगे को रोकने का पूरा प्रयत्न किया। अंतरिम-सरकार के उप-प्रधान पंडित जवाहरलाल नेहरू, हवाई जहाज में पटना पहुँचे और उनके आदेश से झगड़ेवाले क्षेत्रों मे सेना भेजी गई। तीन दिन में झगड़ा शान्त हो गया। केन्द्र की सरकार ने प्रान्तीय-सरकार पर दबाव डालकर लाखो रुपये पीड़ित मुसलमानो की सहायता के लिए स्वीकार करवा दिए।

बङ्गाल-सरकार की ओर से कलकत्ता में झगड़े की जाँच आरम्भ तो हुई परन्तु वह जाँच पूरी नहीं हो सकी। चेतनानन्द इन सब घटनाओं को देख रहा था। नसीम की अवस्था विचित्र थी। वह यूँ तो कांग्रेस की नीति को ठीक नहीं समझती थी, तो भी उसे कलकत्ता और नोआखाली मे मुसलमानो से किए गए हत्याकाड अरुचिकर हुए थे। चेतनानन्द इन दिनों गम्भीर विचार में मग्न रहता था। कार्यालय में सब काम मशीन की भाँति करता रहता था। परन्तु काम में अब उसकी रुचि नहीं रही थी। घर पर वह खाना खाता और सोता था और उसे सब कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों स्वप्न है। नसीम अपने पति के मन की अवस्था को समझ रही थी और एक दिन झगड़ा होने की आशंका कर रही थी। वह तो चाहती थी उनका पति-पत्नी का सम्बंन्ध राजनीतिक कीचड़ से ऊपर रहे परन्तु उसके मन में भय था कि ऐसा रह नहीं सकेगा। इससे वह भी चिन्तित रहने लगी थी। एक समस्या और उत्पन्न हो गई थी। उसके पेट मे तीन महीने का बच्चा था।

चेतनानन्द दंगे के दूसरे दिन अनिमा से मिला था और उसके पश्चात् वह उसे देख नहीं सका था। उसके मन में उससे मिलकर उसके विषय मे अधिक जानने की लालसा दिन-प्रतिदिन बढ़ रही थी। वह अपने कार्यालय से अनिमा के घर का पता मालूम कर उस

का पता करने गया, परन्तु वह मकान जलकर भस्म हो चुका था। आस-पास के लोगो से पूछने पर यह पता नहीं चला कि अनिमा और उसके पिता कहाँ गए हैं।

एक दिन उसे सुधीर के दर्शन हुए। वह रॉयल काफे में चाय पी रहा था। सुधीर को काफे में आकर एक खाली मेज पर बैठते देख चेतनानन्द स्वयं उठकर उसके पास जा पहुँचा।

"नमस्कार।" कह चेतनानन्द उसके सामने की कुर्सी पर जा बैठा। सुधीर उसे पहिचान नहीं सका। इससे नमस्कार का उत्तर देकर प्रश्न-भरी दृष्टि म उसकी ओर देखने लगा।

"आपने मुझे पहिचाना नहीं?" चेतनानन्द का प्रश्न था।

"क्षमा करें। मुझे स्मरण नहीं आ रहा कि आप को कहाँ देखा है।"

"आपने मुझे कभी नहीं देखा?"

"नहीं ऐसा नहीं। कहीं देखा तो है परन्तु याद नहीं आ रहा कि कहाँ?"

"देखिए। मैं आप को याद दिलाता हूँ। सत्रह अगस्त की रात को आप एक लड़की के साथ मेरे मकान मे मुझको सिक्खो के एक खूंखार जत्थे से बचाने आए थे। मै उन दो दिन की बातों को भूल नहीं सकता। उन दिनो की सब घटनाएँ और सब देखे लोग मुझको भली-भाँति याद हैं।"

"ओह! आप बाबू चेतनानन्द हैं। क्षमा करे। उन दिनो मे मैंने जो कुछ देखा था वह इतना अधिक था कि सब कुछ याद रखना न तो मै उचित ही समझता हूँ और न ही सम्भव।"

"विचित्र है। खैर छोड़िए इस बात को। आप अनिमा देवी का पता बता सकते हैं क्या?"

"अनिमा देवी?" सुधीर ने विस्मय में पूछा। "तो आप उस

लड़की को जानते थे, जो आपकी रक्षा करते-करते आप की बीवी के हाथों ही घायल हुई थी ?"

"पबलिसिटि डिपार्टमेन्ट में वह मेरी स्टेनो थी।"

"वह आजकल दिल्ली में है। उसके पिता का देहान्त हो गया था और उससे प्रेम करनेवाले गिरीश बाबू दंगे के दिनों में आग की झपट में आ, इस प्रकार झुलस गए थे कि अपनी आँखें खो बैठे हैं। उनके पिता अब उनको चिकित्सा के लिए वियाना ले गए हैं। अनिमा उनके साथ जाना चाहती थी, परन्तु उसकी माँ नहीं मानी।"

"आपको उसकी कोई चिट्ठी आती है ?"

"नहीं। मेरा उससे सम्बन्ध उसके पिता के कारण था। वे बंगाल के पुराने क्रान्तिकारी थे। मै उनका मान करता था। पर वह लड़की ठीक अपने पिता के समान ही काम मे निष्ठा रखती थी।"

"मै उसका पता जानना चाहता था।"

"मुझको बहुत शोक है। मैं स्वयं नहीं जानता।"

उस रात चेतनानन्द ने अपना, नौकरी छोड़ने का निश्चय नसीम से कह दिया। नसीम इस घोषणा को अपने उससे सम्बन्ध के टूटने का प्रथम चरण समझती थी। उसने विस्मय मे त्योरी चढ़ाकर पूछा, "क्यो ?"

"इस नौकरी में मैं अपनी आत्मा की हत्या कर रहा हूँ।"

"नौकरी तो नोकरी ही है न। अपने को कुछ तो दूसरो के अधीन करना ही होता है।"

"कुछ की बात नहीं। यहाँ तो अपना सर्वस्व ही देना पड़ रहा है। देखो प्रिये ! इन हिन्दू-मुसलमान दंगों को देखकर तो मेरी यह धारणा बन गई है कि अभी हिन्दू मुसलमान एक कौम नहीं बन सकती। इसके लिए अभी कुछ सदियाँ और व्यतीत होनी चाहिएँ।"

"यह तो ठीक है, परन्तु इसका नौकरी से क्या ताल्लुक है। लोग

अँग्रेजी नौकरी भी तो करते हैं। लोग देश-विदेश में नौकरी करने जाते हैं। आप ऐसा ही समझ लीजिए।"

"यह ठीक है, परन्तु एक ऐसी कौम की, जिससे जंग छिड़ जावे नौकरी नहीं हो सकती। उसके देश मे या तो कैदी होकर, या जासूस बनकर रहा जा सकता है। मै कैदी बनकर रहना नहीं चाहता और मै जासूस का काम करने के सर्वथा अयोग्य हूँ।"

"पर हिन्दू-मुसलमानों मे जंग कबसे छिड़ी है?"

"जब से मुस्लिम लीग ने डायरैक्ट ऐकशन को आरम्भ किया है।"

"पर देखिए! महात्मा गाधी भी तो इन दगों की निन्दा कर रहे हैं। और कांग्रेस के नेता लोग बिहार में हिन्दू-मुसलिम सुलह कराने की कोशिश कर रहे हैं।"

"नहीं! उनके करने से ऐक्य नहीं होगा। न ही यह ऐक्य का ढंग है। इससे तो मुझे एक बात ही समझ आ रही है। भारत में दो पक्ष हैं। एक मुसलमान और दूसरे हिन्दू। अँग्रेज़ी राज्य तो समाप्त हो चुका है। इसलिए अँग्रेज हिन्दू-मुसलमान की शक्ति हथियाने के लिए जंग में एक पक्ष लेकर देश में फूट डलवाने का यत्न कर रहे हैं। वे मुसलमानों का पक्ष ले रहे हैं। कांग्रेस अपनी बे-समझी के कारण मुसलमानो का पक्ष ले रही है। इस समय हिन्दू अपने नेताओं से दग़ा दिए जाने पर अकेले हो गए हैं और स्थान स्थान पर पिट रहे हैं।

"इस जंग में मैं वही अभिनय नहीं करना चाहता जो कांग्रेस कर रही है। यह अपने लोगों से, हिन्दुस्तान के बहुमत से, दग़ा है।"

"तो फिर आप क्या करेगे? खाना-पीना कहाँ से चलेगा? और यह," उसने अपने पेट में के बच्चे की ओर संकेत कर कहा, "भी तो कुछ माँग कर रहा है।"

"मजदूर, भंगी और चमारों के भी तो बच्चे होते हैं। उनका भी

तो पालन-पोषण होता है। जो उनकी देख-भाल करता है वह इसकी और हमारी भी देख-भाल कर सकता है।"

"मुझसे तो गरीबी का जीवन व्यतीत नहीं हो सकता।"

"तुम्हारे लिए मैं अपने पिता जी से क्षमा माँग सकता हूँ। मुझे पूर्ण आशा है कि वे तुम्हारे लिए और इस होनेवाले बच्चे के लिए रहन-सहन का प्रबन्ध कर देंगे।"

"तो ऐसा करिए। कुछ दिन की छुट्टी लेकर लाहौर चलिए और वहाँ अपने पिता जी से सफाई कर लीजिए। जब सब बात स्पष्ट हो जावे तो नौकरी छोड़ दीजिएगा।"

"मेरी पिता जी से सफाई से नौकरी का कोई सम्बन्ध नहीं है। नौकरी से तो मैं कल त्याग-पत्र दे दूँगा। पिताजी मुझको क्षमा करते हैं या नहीं; इसका नौकरी से सम्बन्ध कैसे हो सकता है?"

"यदि उन्होंने क्षमा न किया तो?"

"तो मैं कोई काम कर लूँगा। दिल्ली में वकालत करने का यत्न करूँगा।"

"और यदि न चली तो?"

"जैसी भी चलेगी वैसा ही निर्वाह करेंगे।"

तबलीग़

[१]

सदाशिव और ख़नीज़ा खुशीराम के घर खाने पर आए और दोनों पक्षो में परिचय बढ़ने लगा। खुशीराम ने लक्ष्मी की खोज दर-गाह पीर शाह मुराद में करवाने का प्रयत्न तो किया ही था, साथ ही ख़नीज़ा से जो कुछ भी मालूम हो सके जानने का यत्न जारी रखा। इस अर्थ से ख़नीज़ा और सदाशिव से घनिष्टता बनाए रखी। राधा और ख़नीज़ा की परस्पर मेल-मुलाकात दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। इसके साथ ख़नीज़ा की माँ से भी भेंट होने लगी।

एक दिन राधा ख़नीज़ा के यहाँ आई हुई थी कि ख़नीज़ा की माँ भी वहाँ आ पहुँची। दोनो मे बहुत स्नेह का बर्ताव उत्पन्न हो चुका था। इस कारण ख़नीज़ा की माँ राधा से हर्ष से मिली और दोनो ख़नीज़ा को अपने बीच मे बैठाकर बात करने लगीं।

"आप से कई दिन से मिलने को मन कर रहा था, सो बहुत अच्छा हुआ कि आप मिल गई हैं।"

"मैं आपकी बहुत आभारी हूँ कि आप भी मुझे याद करती हैं। ख़नीज़ा तो कहती है कि उसका मुझसे स्नेह हो गया है, अब आपके स्नेह की भी मैं पात्र बन रही हूँ, यह सुन बहुत खुशी हो रही है।"

"राधा देवी! तुमसे कौन मुहब्बत नहीं करेगा। मगर मै तो एक ख़ास बात तुमसे करने के लिए सोच रही थी। तुम यह तो जानती हो कि वली इब्राहीम साहब ने ख़नीज़ा को अपनी लड़की बनाया हुआ है और वही इसकी बचपन की हालत से देखभाल कर रहें हैं। इस

वक्त भी जो कुछ तुम देखती हो वह सब उन्हीं की बदौलत है। इससे वह देखते रहते हैं कि किस-किस से इसकी मुलाकात होती रहती है। इसलिए वे आपके विश्रय मे कई बातें पूछते रहते हैं। मुझको आपकी कोई बातों का पता नहीं और उनके जानने की ख़्वाहिश दिल में बन जानी क़ुदरती है।"

"पर मेरी तो कोई बात छुपी नही और ख़नीजा प्रायः सब कुछ जानती है।"

"इस पर भी बहुत कुछ जानने योग्य रह जाता है। मसलन आपने इसलाम क्यों छोड़ दिया है?"

"रसमी तौर पर तो मैंने इसलाम नहीं छोड़ा। हाँ इसलाम की कुछ बुरी बातें जरूर छोड़ बैठी हूँ। साथ ही जात-पात को मैं नहीं मानती। मै एक परमात्मा को मानती हूँ। मैं बुत-परस्त नहीं हूँ। इस तरह इसलाम की बहुत-सी अच्छी बाते तो मैं अब भी मानती हूँ।"

"पर तुमने अपना नाम क्यों बदल लिया है?"

"राधा कहना ज्यादा आसान और मीठा है इसलिए।"

"तुम मुहम्मद साहब पर इमान रखती हो क्या?"

"मैं उनकी सब बातों को नहीं मानती। मसलन जिमियो को दोजख़ की आग़ में जलना पड़ेगा, यह मैं ठीक नहीं समझती।"

"यह तो मुश्किल है। हजरत पर इमान का भी बँटवारा कर दिया है तुमने!"

"इसी लिए लोग मुझको मुसलमान नहीं कहते। मगर में अपने को न तो काफर समझती हूँ न ही इसलाम से बाहर। देखो दीदी! हम इन्सान हैं। इन्सानियत हमारा मज़हब है। अगर वह इसलाम है तो मैं मुसलमान हूँ और अगर वह हिन्दू धर्म है तो मैं हिन्दू हूँ। इन्सान का सबसे बड़ा खासा अक़्ल से काम लेना है। यह खुदा ने ही दी है और अक़्ल यही कहती है कि हर बात को सोच-समझकर मानना चाहिए।"

"मगर हिन्दुओं की बहुत-सी बाते बेवकूफी की हैं।"

"मैं ऐसी बातों को नहीं मानती। देखिए, हिन्दुओं मे छूआछूत है। मैं इसमें यकीन नहीं रखती। हिन्दुओं में ऊँच-नीच का मसला है। मेरा उसमें एतकाद नहीं है।"

"तो हिन्दू आपको अपने से बाहर नहीं कर देते क्या?"

"हिन्दू क्या कोई अहाता है या कोई घेरा है, जिससे बाहर कोई किया जा सकता है? यह तो एकनहायत ही वसीह मैदान, या यूँ कहो कि एक फ़िज़ा है जिसकी हद-बन्दी नहीं हो सकती। और जिसकी हद-बन्दी नही, उसके भीतर और बाहर का सवाल ही पैदा नहीं होता।"

"मगर हिन्दू लोग अपने ख़्याल से नापाक लोगों को अपने से बाहर कर देते हैं। मेरी अपनी ही कहानी है। मैं एक ब्राह्मण की लड़की हूँ। तुम सुनकर हैरान होगी कि मैं अपनी बचपन में लघु-कौमदी पढ़ती रही हूँ। मुझे संगीत का बहुत शौक था। पिताजी के पास इतना धन नहीं था कि मेरी संगीत सीखने की लालसा पूरी कर सकते। हमारे पड़ोस में एक शादी में एक पेशावर गाने-नाचनेवाली आई। लोगों ने सैंकड़ों रुपये नजराना मे उसको दिए। दो दिन वह हमारे गाँव में रही और दो दिन तक मैं उसका गाना और नाचना सुनती, देखती रही। दूसरे दिन सायंकाल की बात है कि वह शादीवाले मकान के दरवाज़े पर खड़ी थी और मै मकान के दरवाज़े से निकल अपने घर को जा रही थी कि हमारी आँखे मिलीं तो मेरे मुख पर मुस्कराहट दौड़ गई। उसने पूछा, 'क्या है बीवी?' मैंने कहा, 'तुम बहुत अच्छा गाती हो। तुम्हारा 'बहार' मुझे बहुत पसन्द आया है।

"मेरी उमर उस समय बारह साल की थी और मेरे मुख से राग के पहिचानने की बात सुन वह हैरानी से मुझको सिर से पाँवो तक देखने लगी। मैंने समझा कि शायद राग पहिचानने में मुझसे गलती हो गई है। पीछे मैंने सोचकर कहा, 'आपने बहार ही तो गाया था न?' मैंने वही बोल जो उसने गाया था, 'पनिया भरन कैसे जाऊँ'

गाकर सुना दिया और साथ ही उसकी सरगम गा दी 'सनीपमपग्मरेस... म। पधनीस। धनीप मप मग। म...'

"उसने मेरी पीठ पर हाथ रखकर कहा, 'शाबाश! गाना कहाँ सीखती हो?' मैंने उत्तर दिया, 'अब कहीं भी नहीं।' तो बोली, 'मेरे साथ चलो; मै सिखाऊँगी।' मैने कहा, 'बाबा नहीं जाने देंगे।' इस पर उसने कहा, 'तो उनको मत बताना। हम कल प्रातःकाल की गाड़ी से जा रहे हैं। स्टेशन पर आ जाना।

"रात-भर मुझे नींद नहीं आई। गाड़ी प्रात. चार बजे खुलती थी और रात के तीन ही बजे खाट मुझे काटने लगी। मै समझती थी कि मुझे नहीं जाना चाहिए। मै यह भी समझती थी कि शायद उस गानेवाली ने मुझसे मज़ाक किया है पर कोई छुपी हुई ताकत मुझको धकेलती हुई गाड़ी के वक्त से पहिले ही स्टेशन पर ले गई। घर के सब लोग सो रहे थे और मैं उठकर चल दी। स्टेशन पर वह गानेवाली मुझे देखकर चकित रह गई। मैंने तरल आँखों से उसकी ओर देखते हुए कहा, 'मुझे ले चलोगी न?'

"उसने एक क्षण तक मेरी आँखो में देखते हुए कहा, 'मेरा कहना मानोगी?' मैंने बिना सोचे-समझे कह दिया, 'हाँ! मानूँगी।'

"'तो चलो।' उसने कह दिया।

"'मेरे पास दाम नहीं हैं?'

"इस पर उसने अपने पास से अपने साथ आए सारंगी बजानेवाले को दाम देकर मेरे लिए रेल का टिकट ख़रीद लिया। मेरे भाग जाने की खबर घरवालो की मिली तो मेरे पिता मुझे ढूँढ़ते हुए बम्बई पहुँचे और मुझे पकड़कर वापस ले गए। परन्तु गाँववालो ने उनका हुक्का-पानी बन्द कर दिया। मेरे साथ मेरे माता-पिता और मेरे बहिन भाई भी, खने-पीने के लिए, लाचार हो गए। मेरे पिता ने घर पर पंचायत बुलाई। उसमें मुझसे पूछा गया कि मैंने माँस खाया है या नहीं। मैंने सत्य बात बता दी, 'हाँ खाया है।' इस पर पंच बोल

उठे, 'जब तक यह लड़की घर पर रहेगी, आपका हुक्का-पानी नहीं खुल सकता। यह गोमास खा चुकी है। यह अब भ्रष्ट हो गई है।'

"गाँव मे एक ही कुआँ था और उस पर पचायत ने पहरा बैठा दिया था। गाँव के बाहर एक तालाब था। उसमें गाँव के गाय-भैंस और दूसरे जानवर पानी पीते थे। वहीं से बाबा पानी भरकर लाते थे। वह हम छानकर पीते थे। मैं समझ रही थी कि मेरे कारण ही घरवालो को कष्ट हो रहा है। एक रात मेरी माँ पिता जी से कह रही थीं कि वे मुझे वहीं समुद्र में क्यों नहीं बहा आये? पिताजी चुप थे। अगले दिन प्रातःकाल उठ मैं उसी गाड़ी में सवार हो बम्बई पहुँच गई। मेरा ख़्याल है कि जब मै घर से आने लगी थी तो मेरा बड़ा भाई जागता था परन्तु उसने मुझे रोका नही। इसके बाद भी मेरी टोह लेने कोई नहीं आया। सात साल के कठोर अभ्यास से मैं बम्बई की मशहूर गाने और नाचनेवाली बन गई।

"रक़ासा का काम प्रलोभनों से भरा हुआ होता है। अच्छा खाना, अच्छा पहिनना और सज-धजकर रहना, यह सब बासना की ओर ले जानेवाली बाते हैं। इसी वजह से रक़ासा और रंडी एक ही मायनेवाली दो बाते हैं। इन्हीं दिनों मुझे मेरे गुरू मिले। श्री केवलेश्वर राजवाड़े का संगीत सुन मै उन पर मुग्ध हो गई। यह ख़नीज़ा उन्हीं की पुत्री है। मेरे बहुत आग्रह पर उन्होने यह सन्तान देनी स्वीकार की। जब मुझे गर्भ ठहर गया तो उन्होंने मुझसे वचन लिया, कि यदि लड़की होगी तो उसका विवाह किसी हिन्दू-सन्तान से करूँगी और यदि लड़का हुआ तो उसको किसी हिन्दू को पालन-पोषण के लिए दे दूँगी।

"ख़नीज़ा के जन्म होने के बाद मेरी इच्छा और सन्तान पाने की नहीं हुई। परन्तु उस जीवन में बचकर रहना बहुत मुश्किल था। इस कारण जब वली इब्राहीम साहब ने मुझे अपने पास रखने की ख़्वाहिश जाहिर की तो मैंने फ़ौरन मान ली। दस साल से ऊपर हो गए हैं कि

मैं उनकी ख़िदमत में हूँ। उन्होंने मुझको अपनी औरत मानकर रखा हुआ है और इस लड़की के साथ वे अपनी लड़की का सा व्यवहार करते हैं। मेरे इसरार पर उन्होंने इसका एक हिन्दू की सन्तान से विवाह कर दिया है। इस पर भी वे फिकरमन्द हैं कि कहीं यह हिन्दुओं की नफरत का शिकार न बन जावे। आप और आपके घर-वाले के व्यवहार से वे खुश तो हैं पर इसकी वजह नहीं जान सके।"

यह वृत्तान्त सुन राधा ने अपनी सफाई देने के लिए कहा, "जो कुछ आपके माता-पिता के साथ बीती है, वह किसी प्रकार भी सराह-नीय नहीं है। इस पर भी यदि आपके माता-पिता के मन में चोर न होता तो वे गाँववालों के दबाव से दबते नहीं। मै अपनी बात बताती हूँ। जब लाहौर में मुसलमानों को मालूम हो गया कि मै हिन्दू हो गई हूँ, तो एक के बाद दूसरा मेरे पास आने लगे और मुझको मजबूर करने लगे कि मैं या तो उनको तलाक़ दे दूँ या उनको नमाज़ पढने मस्जिद में जाने को कहूँ। जिनके घर में मै पली थी वे मेरे पास आकर कहने लगे कि मै जब तक उनको गोमास नहीं खिलाती तब तक वे हिन्दू ही रहेंगे। मझे समझ नहीं आता था कि मै क्या करूँ। हमारे एक मधुर चाचा थे। वे बहुत किताबें लिखा करते थे। एक दिन मैंने उनसे ही पूछा। उन्होंने सारी बात सुनकर कहा, 'देखो बेटी! इंसान का सबसे बड़ा पथ प्रदर्शक उसका मन है। मन की चाहना तालीम और तरबीयत (संस्कारों) पर मबनी (स्थिर) है। संस्कार एक दिन मे नहीं बनते। इससे मै कहता हूँ कि तुम वही करो जो तुम्हारा मन चाहता है।' मैंने उनसे कहा, 'पर मैं तो उनको किसी बात के लिए मजबूर करना नहीं चाहती।' इस पर उन्होंने पूछा कि 'वे क्या चाहते हैं।' मैंने कहा, 'मै उनसे पूछना उनका अपमान करना समझती हूँ।' इस पर उन्होंने कहा, 'तो बेटी! अपने दिल को मजबूत करो। जो ठीक समझती हो, वही करो। याद रखो, पुण्य वही है जो मन भावे।'

"इससे मै कहती हूँ कि यदि मेरी तरह आपके माता-पिता होते और वे समझते कि तुम्हें घर रखना ठीक है तो गाँववालो का विरोध करते। ऐसा करने से वे भी मेरी तरह कामयाब होते।"

"आपकी बातो से तो मैं कुछ भी नहीं समझी। क्या आप हिन्दू रहना ठीक समझतीं हैं या क्या आप सदाशिव को मुसलमान हो गया समझतीं हैं?"

"मै तो हिन्दू-मुसलमान के झगड़े मे नही पड़ना चाहती। मैं एक नेक औरत हूँ और नेक लोगो की जमायत में रहना चाहती हूँ?"

"तो फिर तुम मुसलमानों को हिन्दू बनाने में मदद क्यों देती हो।"

"मैं नेक बनने में मदद देती हूँ। हिन्दू होने से नेक बनने में मदद मिलती है। इसी से मैं लोगों को हिन्दू बनने के लिए कहती हूँ। इस पर भी हिन्दुओं में जो कुछ भी खराबी है, वह स्वीकार करने के लिए मैं किसी को नहीं कहती। हिन्दू बनने से कोई मुसलमानों की, ईसाइयों, यहूदियो, पारसियों और बौद्धों की बाते मान सकता है। यहाँ तक कि अपने को मुसलमान और इसाई वगैरा तक कह सकता है, मगर एक मुसलमान और इसाई मत में रहता हुआ हिन्दुओं की बातें नहीं मान सकता। एक आदमी गोमांस खाता हुआ हिन्दू रह सकता है, मगर सूअर खाकर मुसलमान रहना मुश्किल है। राम और कृष्ण को गालियाँ देकर भी कोई हिन्दू रह सकता है मगर मुहम्मद को रसूलिल्लाह न माननेवाला मुसलमान नहीं हो सकता। इससे मैं कहती हूँ कि जब मैं किसी को हिन्दू बनने में मदद देती हूँ तो मैं उसके दिमाग के तालों को खोल देती हूँ। मैं उसे आजाद कर देती हूँ। बताओ इसमें कौन बुरी बात करती हूँ।"

खनीज़ा की माँ इन तत्त्व की बातों को सुनकर चकित रह गई। वह जानती थी कि दरगाह में हर जुम्मे के दिन हिन्दुओं को मुसलमान बनाया जाता है और कल्मा पढ़ाने से पहिले उनको गोमांस खिलाया जाता है। औरतों को मुसलमान बनाने से पहिले उनसे जनाह करा

कर उनको अपनी नज़रो में गिरा दिया जाता है। उसे अपनी बात अभी याद थी कि जब वे पहिली बार बम्बई में आई थी तो उसे भी एक दिन बहुत अच्छा खाना खिलाकर कहा गया था कि उसमें गोमांस था। उस समय वह नाबालग़ थी और अंजान थी। इससे वह इस हरकत का अर्थ नहीं समझी थी। अब वह विचार करती थी कि यदि उसे वह न खिलाया जाता तो शायद गाँववाले उसके माता-पिता पर उतनी कठोरता न करते।

आज उसके दिमाग में अनेकों नये तथा पुराने विचार आने लगे थे। एक बात उसके मन में सूझी उसने समझा कि शायद इसका जवाब राधा नहीं दे सकेगी। उसने पूछा, "भला बताओ तो कि मैं हिन्दू हूँ या मुसलमान?"

"मुझको तो हिन्दू दिखाई पड़ती हो।"

"यह, भला कैसे! मेरा नाम रसूलन है। मैं एक मुसलमान की बीवी हूँ। गोमास खा चुकी हूँ और शायद अब भी कभी-कभी खाती हूँ।"

"देखो दीदी! तुमने एक उदारता की बात तो यह की है कि अपनी लड़की का विवाह एक हिन्दू से कर दिया है। दूसरी बात यह है कि तुम मेरी इसलाम पर टीका-टिप्पणी धैर्य से सुन रही हो। फिर तुम अपने वायदे को इसलाम और अपने पति की इच्छा से भी ऊँचा समझती हो।. यह बातें मुसलमानों की सी नही। इसलाम में मज़हब को सर्वोपरि पदवी दी जाती है। इसके विपरीत हिन्दुओं में अपनी निज की शुद्धता और पवित्रता पर अधिक बल दिया जाता है। यहाँ वचन को पूरा करना ही धर्म है। प्रतिज्ञा पालन और धर्म दो भिन्न-भिन्न बातें नहीं हैं इस कारण तुम तो मुझको हिन्दू ही प्रतीत होती हो।"

"बहुत विचित्र बात है। काश कि दूसरे भी ऐसा ही समझते।"

"इसका अर्थ मैं यह समझी हूँ कि आप अपने को हिन्दू माना जाना चाहती हैं, पर कुछ हिन्दू आपको ऐसा मानने को तैयार नहीं।"

ख़नीजा की माँ ने तो ऊपर का वाक्य बिना सोचे समझे ही कह दिया था, परन्तु जब उसे अपने कहने का यह अर्थ समझ आया तो वह स्वयं चकित रह गई। वह अपने मन के भावों को गम्भीरतापूर्वक मनन करने लगी।

[२]

इस वार्तालाप में ख़नीज़ा ने कोई भाग नहीं लिया था। इस पर भी राधा के कहने ने उसके मन मे भारी हलचल मचा दी थी। जब माँ को गम्भीर विचार में डूबा देखा तो उसने साहस कर पूछा, "राधा जी, विवाह मे क्या एक मज़हब का होना ज़रूरी है?"

"मज़हब तो अपना-अपना होता है, लेकिन मज़हब और अदब (संस्कृति) दो भिन्न-भिन्न बातें हैं। संस्कृति दोनो की एक जैसी होनीं चाहिये।"

"क्या अदब मज़हब के मातहत नहीं है?"

"नहीं कम से कम हिन्दू ऐसा नहीं मानते। हिन्दुओं में कई मज़हब हैं। मोटे तौरपर सिक्ख हैं, आर्य समाजी हैं, वैष्णव हैं, शाक्त हैं, वेदांती हैं, और अन्य कई मत हैं। आपस में विवाह होते हैं और इसके लिए झगड़ा नहीं होता। कभी-कभी तो बहुत मज़ेदार बात होती है पति मास खाता है और पत्नी नहीं खाती। पति आर्य समाज मन्दिर में जाता है जहाँ निराकार की पूजा होती है और पत्नी सत्य-नारायण का व्रत रखती है, पूजा करवाती है और पूजा का प्रसाद लाकर पति और उसके बच्चों को खिलाती है। यह है मज़हब के विषय की बात। इसमें कोई दूसरे की बात में दख़ल नहीं देता। मगर एक बात रहन-सहन का ढंग है जो वे पति-पत्नी में एक समान रखना चाहते हैं। प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त में उठना, दातुन-कुल्ला कर स्नान करना, फिर अपने-अपने इष्टदेव का चिन्तन करना, हाथ धो स्वच्छ जगह पर बैठ भोजन करना, सत्य बोलना, धृति, क्षमा, संयम इत्यादि

गुणों का पालन करना, यह बातें हैं जिनको वे पति-पत्नी में एकसमान देखना चाहते हैं। कितनी सरल बात है। यही व्यवहार है जिस कारण हमारा आपस में कोई झगड़ा नहीं होता। उन्होंने मुझे कभी नहीं कहा कि मैं नमाज़ न पढ़ूँ विवाहित जीवन के आरम्भ में मैं नमाज़ पढ़ती थी और अब मैं सध्या करती हूँ। इस परिवर्तन से उनके मेरे साथ व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं आया।

इस दिन राधा ने सदाशिव के घर में क्रान्ति की नींव डाल दी। ख़नीज़ा की माँ तो इसलाम और हिन्दुत्व में फरक़ जान चकाचौंध रह गई। उसे अपने पूर्ण जीवन पर सोचने का एक नया मार्ग दिखाई देने लगा था।

इस वार्तालाप के कई दिन पीछे की बात है कि ख़नीज़ा की माँ, रसूलन, खुशीराम के घर आई और अपनी परेशानी बताने लगी। "बहन राधा, तुम्हारी उस दिन की बातों ने तो मुझे दोज़ख़ की आग में झोंक दिया है। मैं अब अपने आस-पास होनेवाली बातों को एक नई रोशनी में देखने लगी हूँ। जो बात मुझे पहिले अच्छी और सवाब मालूम होती थी, वही अब नफ़रत पैदा करनेवाली मालूम होने लगी है।

"कल जुमेरात थी। हमारी दरगाह में की मसजिद में हर जुम्मे को हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिए लाया जाता है। अकसर मुसलमान बननेवाली औरतों और मरदों को जुम्मे रात के दिन वहाँ की सराय में रखा जाता है। कल दो औरतें मुसलमान होने के लिए आईं। उनमें से एक पूना के एक ब्राह्मण परिवार की विधवा थी रात दो गुंडे उनसे बदफेली करने के लिए भेज दिए गए। उस विधवा ने बहुत चीखो-पुकार की। यहाँ तक कि उसकी चीख़ों की आवाज़ हमारी आरामगाह तक आने लगी मैं चौंककर उठी और जब मुझे मालूम हुआ कि आवाज़ सराय में से आ रही है तो मैंने हजरत वली साहब को जो मेरे बिस्तर पर ही सो रहे थे, जगाया और उनसे उस

बेचारी को बचाने के लिए कहा। वे बोले, "सो जावो मेरी जान! सब खुदा का फज़ल है।" इस पर मैंने कहा, "नहीं हजरत! कोई रो और चीख़ रहा है।" वे बोले, "आओ मेरे पास सो जावो। अभी खुदा की रहमत नाज़ल हो जावेगी!"

मैंने उनके गले में बाँह डालकर इसरार किया कि उस औरत को छुड़ाया जावे। वे मेरी बात मान गए और हम दोनों कपड़े पहन सराय म जा पहुँचे। मुझे कहते हुए शरम आती है कि हम देरी से पहुँचे। हमारे पहुंचने से पहिले वह प्राण छोड़ चुकी थी। उससे बदफेली करने वाले आदमी से मैंने पूछा कि क्या हुआ है? उसने बताया कि वह पहिले उसे हाथ लगाने से मना करती रही, पीछे उसकी हरकतों की मुखालफत करने लगी और जब उसने उससे जबरदस्ती करनी चाही तो उसने चीख़ोपुकार मचा दी। इस पर भी जब वह नहीं माना तो एका-एक वह चुप कर गई। उसने समझा कि बेहोश हो गई है और उसे होश में लाने की कोशिश करने लगा। इस पर पता चला कि उसका इन्तकाल हो गया है। मै उसका बयान सुन सन्न रह गई। मेरे रुएँ ~डे हो गए और मैंने काँपती हुई आवाज मे पूछा, "तुमने जबरदस्ती क्य की?"

"हजरत का हुक्म है।"

मै उस औरत का खुला मुख और ऊपर चढ़ी हुई आँखे देख काँप उठी और वहाँ से भाग अपनी आरामगाह में आ गई। हज़रत कुछ देर बाद आए। मैं औंधे मुँह अपने पलंग पर लेटी हुई थी। हज़रत ने मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा, "उस रहीम और करीम परवर दिगार को याद करो वह सबके दुख-दर्द मिटा देने की ताकत रखता है।"

"मगर मैं उनका हाथ लगते ही काँप उठी। मुझे ऐसा मालूम हुआ, गोया कि कोई गरम लोहे की सलाख़ मेरी पीठ पर रख दी गई है। मै चीख़ मारकर उठ पड़ी और पागलो की भाँति हजरत का मूँह

देखने लगी। उन्होने मेरे पास बैठकर समझाने के लिए कहा, "देखो .....' पर मैं उनके अपने पास बैठते ही कूद कर और चीख़ मारकर दूर जा खड़ी हुई। हज़रत मेरी हालत देख बहुत परेशान हुए और बहुत हलीमी से बोले "रसूलन क्या हो गया है तुम्हें? क्या चाहती हो?"

मैंने कहा, 'मुझे अकेली छोड़ दीजिए। इस वक्त मेरी तबियत ठीक नहीं"

वे दूसरे कमरे में जाकर सो रहे और मै पागलो की तरह अपने कमरे में चक्कर काटती रही। दिन चढ़ने पर मुझे होश आई और मैं समझने लगी कि इस कत्ल के भेद की बात जानकर मेरी जान भी ख़तरे मे है। क्या जाने मेरे रात के रवैये से हज़रत मुझ पर अपना एतबार खो दे और अपनी और दरगाह की इज्ज़त बचाने के लिए मुझे भी इस दुनिया से बाहर कर दे। इस ख्याल के आते ही मै होश मे आ गई और अपनी जान बचाने के लिए नाटक मे ऐक्टिंग करने की तरह बाते करने के लिए अपने को तैयार कर बैठी। इस तरह 'ऐकटिंग' करने की आदत तो हम नाचने गानेवालियों को खूब होती है।

जब हज़रत, मेरे पास, आज सुबह आए तो मैंने उनके गले में हाथ डालकर अपने रात के रवैये के लिए मुआफी माँगी। वे मेरे इस सुलूक से खुश होकर पूछने लगे, 'क्या हुआ था मुझे?' मैंने उनके साथ सट कर कहा, "उस औरत की खौफ़नाक शकल देखकर बदहवास हो गई थी।" उन्होने बहुत मुहब्बत से अपने बग़लगीर कर मुझे कहा, "इसलाम की तबलीग़ के लिए मैं यह सब कुछ करता हूँ। इसी लिए खुदा की रहमत मुझ पर बनी रहती है।"

'मेरी रात की बात को हज़रत ने छोड़कर मुझे कहा कि मैं ख़नीज़ा से मिलने जाऊँ। उनका ख़्याल था कि मैं वहाँ जाने को पसन्द करूँगी और इससे मेरा दिल बहल जावेगा। हकीकत में वे उस लाश का

इन्तजाम करना चाहते थे। मैंने भी यही ठीक समझा और मैं चली आई।

"अब लड़की की बात सुन लो। उसको जब मैंने रात का क़िस्सा बताया तो कहने लगी, 'मेरे ख्यालात तो बिलकुल बदल गए हैं। मैं बहुत-सी बातो को जानती ही नहीं थी। अब राधा जी के बातो ने तो मेरी आँखो के सामने से पर्दा हटा दिया है। उसकी बातों से तो यह मालूम होता है कि हम मुसलमान हैं ही नहीं। मैं एक हिन्दू की लड़की और एक हिन्दू की नाती हूँ। हमतो हिन्दू इसलिए हुए थे कि कुछ हिन्दू भूल से हमारा बायकाट कर बैठे थे। उनको ऐसा करने का अधिकार नहीं था। मगर यह कोई वजह नहीं थी कि हम भी वही भूल करते जो दूसरे कर रहे थे। किसी ने कह दिया कि हम मुसलमान हो गए और हम मान गए कि हम मुसलमान हैं। यह भी भला कोई बात थी? अब हमें भूल का ज्ञान हो गया है और पता चल गया है कि हिन्दुओं मे भी ऐसे लोग हैं जो हमे मुसलमान नहीं समझते।

"'मगर अम्मी, अब तो राधा जी की एक और बात का सबूत तुम ले आई हो।' वे कहतीं थीं कि वे लोगो को हिन्दू बनने को कह उनको नेक बनने के लिए कहती है। हज़रत ने मुझको कई बार यह कहा था कि मज़हब की बातों में अक़ल को दख़ल नही। वे कहा करते थे कि खुदा की बातों को इन्सान समझ नहीं सकता। राधा जी का कहना था कि अक़ल भी खुदा की दी हुई चीज़ है और इसका इस्तेमाल करना खुदा को खुश करना है। हिन्दू होने से अक़ल के इस्तेमाल करने की आज़ादी मिलती है और मुसलमान बनने से अक़ल के इस्तेमाल में बन्दश। मैं आज़ादी पसन्द करती हूँ।

"'अब एक और बात दिमाग़ में साफ हो गई है। तुमने कहा है कि रात की वारदात को हज़रत, इसलाम की तबलीग़ के लिए, समझते हैं। मैं सोचती हूँ कि अगर इसलाम नेकी है तो इस किसम की बुरी बातें कैसे इसलाम की तबलीग कर सकती हैं। दो में से एक बात ही

सिरफ ठीक हो सकती है। या तो यह कि इसलाम नेकी नहीं है या इस क़िस्म की बातें इसलाम की तरक्की नहीं कर सकतीं। दरगाह की बातो से तो मै यही जानती हूँ कि फ़ाशा औरतो की खि़दमत इसलाम की तबलीग़ के लिए कामयाब हथियार साबित हो रही हैं। इससे मैं इस नतीजे पर पहुँची हूँ कि राधा का कहना ठीक है कि इसलाम से हिन्दूपन नेकी के ज़्यादा नज़दीक है।'

"मै तो लड़की की बाते सुनकर सन्न रह गई हूँ। मेरे पाँवतले से मट्टी खसक गई है। जो कुछ मै अभी सोच ही रही थी, खनीज़ा उसे सोच नतीजे पर भी पहुँच गई है। उसकी बाते सुन मुझको तो उसके गुज़र की फिकर होने लगी है। मैने उससे पूछा, 'यह अभी किसी से कहा तो नहीं। कही हज़रत साहब को पता चल गया तो सब ऐशो आराम खतम हो जावेगा।' इस पर उसने कहा है, 'अम्मी, अभी तो नहीं कहा, मगर आज की बात सुन तो मैंने फ़ैसला कर लिया है कि उनसे सब बात बता दूँगी। मैं अपने को हिन्दू समझती हूँ और हिन्दू बनकर रहूँगी।''

"मैने उसको कहा कि अगर उसकी यह बात आली हज़रत को पता चल गयी तो सदाशिव की नौकरी छूट जावेगी। खनीज़ा इसकी परवाह नहीं करती थी। इस पर मैने कहा कि सदाशिव तो इस बात की परवाह नहीं करेगा। वह ग़रीबी में पला है इसलिए उसको इससे तकलीफ नहीं होगी। इसके विरुद्ध वह चान्दी और सोने के बरतनों में खाती-पीती रही है। ग़रीबी उसके लिए दुर्भर हो जावेगी।

"आज मैं आपके पास आई हूँ। मुझको तो सब ओर विनाश ही दिखाई देता है। पीर साहब के पास जाने को तबीयत नहीं करती। सदाशिव की नौकरी छूटती मालूम होती है। खनीज़ा जवानी के जोश में जो कहती है कर लेगी, मगर उसके नतायज को सह सकेगी या नहीं, कहना कठिन है। राधा बहिन यह आग तुमने ही लगाई है। अब तुम ही इसके बुझाने का यत्न करो।"

राधा अपनी छोटी-सी बात का इतना बड़ा नतीजा पैदा हो गया देख चकित रह गई। वह इस परिस्थिति को वश में करने का उपाय नहीं जानती थी। सदाशिव को एक हज़ार रुपया मासिक वेतन और एक प्रतिशत लाभ में भाग और साथ रहने को मकान, यह इतने बड़े प्रलोभन थे जो अन्य किसी तरह पूरे होने कठिन थे। सदाशिव क्या चाहेगा और ख़नीज़ा इसमें क्या करना चाहेगी। यही तो मुख्य बातें थीं।

राधा केवल यह कह सकी, "इश्क जब सिर पर सवार होता है तो फिर इस किस्म की गिनती-मिनती नहीं रहती। आदमी भवसागर में कूद पड़ता है और अपनी किश्ती को परमात्मा के भरोसे पर छोड़ देता है।"

[४]

खनीजा नहीं मानीं। उसने अपने मन के भावों को सदाशिव को बता दिया। परिणाम यह हुआ कि रसूलन ने पीर साहब का मकान छोड़ दिया और अपनी लड़की के पास आकर रहने लगी। बहाना यह बनाया कि लड़की के दिन चढ़ गए हैं और उसका उसके पास रहना नहायत ज़रूरी है। उसने अपना संगीत का अभ्यास आरम्भ कर दिया। उसको ऐसा समझ आने लगा था कि शायद उसको फिर अपनी जीविका के लिए नाचने-गाने का काम करना पड़ेगा।

सदाशिव अपने असेम्बली के काम में लीन था और राधा तथा खुशीराम ने ऐसे समय में उनसे अपनी घनिष्ठता बनाए रखना ही ठीक समझा। जो सम्बन्ध लक्ष्मी को ढूँढ़ने के लिए बनाया गया था वह अब अपने लिए दृढ़ होने लगा था। राधा को माँ और बेटी में विशेष गुण प्रतीत होने लगे थे।

राधा एक दिन सदाशिव के घर जा पहुँची। वहाँ उसे एक और ही समस्या का सामना करना पड़ा। पीर इब्राहीम साहब एक दिन पूर्व

सदाशिव से मिलने आए थे। बातों ही बातो में कहने लगे कि सदाशिव का नाम कम्पनी के काग़ज़ो में बदल कर करीम इलाही कर दिया है। इस पर सदाशिव ने बताया कि ज़्यों ही लोगों को पता चला कि वह मुसलमान हो गया है तो उसकी असेम्बली में मेम्बरी समाप्त हो जावेगी। हज़रत इब्राहीम का यह कहना था कि मोतबिर ज़रीए से मालूम हुआ है कि पाकिस्तान बने बिना नहीं रहेगा और बम्बई हिन्दुस्तान में रहेगा। पीर साहब अपनी कुल जायदाद कराची में भेज देना चाहते थे वहाँ यह जायदाद अपने नाम में जमा न कर सदाशिव के नाम करना चाहते थे। उनका ख्याल है कि पाकिस्तान में किसी हिन्दू का रहना मुमकिन नहीं, इसलिए सदाशिव अभी मुसलमान हो जावे तो जायदाद पर उसका कबजा रह सकता है और वह जायदाद का भोग कर सकता है।

पीर साहब की जायदाद एक करोड़ रुपये से ऊपर थी। जिसमें से पचास लाख से ऊपर तो वे अभी कराची में भेजने का प्रबन्ध कर रहे थे। यह इतना बड़ा प्रलोभन था कि सदाशिव कुछ उत्तर नहीं दे सका। वह चुपचाप बैठा रहा। पीर साहब तो यह कह कर चले गए परन्तु घर में तीनो प्राणी इस प्रलोभन से संघर्ष कर रहे थे। राधा को आया देख रसूलन ने शान्ति अनुभव की। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि मन से बोझा उतर गया है। उसने प्रसन्नता प्रकट करते हुए राधा से सब बात कह पूछा, "राधा बहिन। अब तुम ही बताओ कि हम क्या करें?"

राधा की राय तो त्याग की थी, परन्तु वह नहीं जानती थी कि सदाशिव और ख़नीज़ा का मन कितना दृढ़ है? उसने उनके मनकी बात जानने के लिए पूछा, "सदाशिव क्या चाहते हैं?"

"वे दोनो एक मत नहीं हो सके। सदाशिव ने पीर साहब के कहने पर विचार किया है। उसका कहना है कि जायदाद ख़नीज़ा के नाम कर दी जावे। परन्तु लड़की कहती है कि वह जायदाद अपने नाम नहीं कराना

चाहती। सदाशिव को जरूरत है तो अपने नाम करवा ले। इतने धन के मुकाबिले में कौंसिल की मेम्बरी की कुछ हकीकत नहीं।"

राधा हँस पड़ी और पूछने लगी, "कहाँ है ख़नीज़ा?"

"भीतर कमरे में सो रही है और, मैं समझती हूँ कि, अभी भी सोच रही है।"

"या यह कहो कि अपने मन के लालच से कुश्ती कर रही है।"

रसूलन हँस पड़ी। "ज़रा भीतर जाकर उसकी मदद कर दो न।"

"सदाशिव घर पर नहीं हैं क्या?"

"नहीं। वे तो कौंसिल के इजलास के लिए गए हुए हैं।"

राधा भीतर चली गई। ख़नीज़ा फर्श पर चटाई बिछाकर घुटनों के बल बैठी हुई नमाज़ पढ़ रही थी। नमाज समाप्त की तो उसे सामने राधा बैठी दिखाई दी। इधर-उधर की बातों के बाद राधा ने बात पूछ ही ली। "ख़नीज़ा बहिन! यह अम्मी क्या कह रही है?"

"तो उन्होंने बताया है आपको?"

"हाँ। क्या फ़ैसला किया है आपने?"

वे तो कहते हैं कि वे अपना हिन्दू नाम नहीं बदलेंगे और यदि पाकिस्तान बना तो वे वहाँ नही जावेंगे। रही नौकरी की बात। उसकी बाबत उन्होंने यह फ़ैसला कर लिया है कि इस महीने के आखीर में इससे स्तीफ़ा दे देंगे।

"मैं कुछ शशो-पंज में थी। मगर ख़ुदा परवर दिगार ने मुझको रोशनी बख़्शी है और मैं इस नतीजे पर पहुँची हूँ कि वह सब की परवरिश करनेवाला है। हमें तो अपना फ़र्ज़ अदा करना है। मेरा फ़र्ज़ है कि मैं उनके साथ रहूँ।"

"मगर नौकरी छूटने पर यह मकान भी तो ख़ाली करना पड़ेगा?"

यह हमने सोच समझ लिया है। माँ के कुछ ज़ेवर दरगाह में रखे हैं। वे उनको ले आवेंगी और उनको बेचकर किसी मकान का इन्तज़ाम कर लेंगे। 'मेराईन ड्राईव' में एक मकान पाँच हजार पगड़ी

पर मिल रहा है। माँ वहाँ संगीत सिखाने का स्कूल खोल लेंगी और एक कमरा हम अपने रहने के लिए ले लेंगे।"

"आपका इरादा तो ठीक ही मालूम होता है। मगर ज़िन्दगी बहुत कठिन हो जावेगी।"

"आप क्या समझती हैं कि मुहब्बत उस मुश्किल पर गालिब नहीं आ सकेगी?"

"यह तो मुहब्बत की गहराई पर मुनहसिर है। कितना बोझा वह सह सकती है, यह तो आप ही जान सकतीं हैं।"

"मैं तो समझती हूँ कि हम मुश्किल पार कर सकेंगे। आप क्या समझती हैं?"

"देखिये खनीज़ा देवी! ख़्यालात ही इन्सान की ज़िन्दगी पर हुकूमत करते हैं। यह हिन्दुस्तान हमारा मुल्क है। हमें इसकी हफाज़त और बहबूदी के लिए सब कुछ कुरबान करने को तैयार रहना चाहिए। यह सब ख़्यालात हैं। इन ख़्यालात की मज़बूती पर ही, सुख-दुख में और मुश्किल आसान में, कोई अपने इरादे पर कायम रह सकता है। मैं तो समझती हूँ कि सदाशिव का ख़्याल हिन्दुस्तान में रहने का बहुत मुबारिक है।"

"तो मेरा फ़ैसला ठीक है?"

"आपके इस फ़ैसले से मेरी नज़र में आपकी इज्ज़त बहुत बढ़ गई है।"

"हम लोग आपकी मदद पर बहुत भरोसा करते हैं। आपने ही हमें रोशनी दिखाई है।"

"यह तो भगवान् की कृपा है। हम तो सदा आपसे स्नेह करते रहे हैं।"

इस पर ख़नीज़ा कुछ सोचने लगी। अब वे चटाई पर से उठी और राधा को साथ लेकर बाहर अपनी माँ के पास आ गई। उसे

अपने समीप एक सोफा पर बैठा कर कहने लगी। "जब से आप ने कहा था कि हिन्दू धर्म एक वसीह फ़िज़ा है। मैं मन ही मन हिन्दू होने की ख़्वाहिश रखती थी। अब आज मुझे बताइये कि यह कैसे हो सकेगा।"

"यह हिन्दू बनना कैसे हो सकेगा—क्या ? इस में कोई मुश्किल नहीं। आप अपना नाम हिन्दुस्तान की ज़बान में रख ले। बस आप ज़ाहरा तौर पर हिन्दू हो गयीं। जहाँ तक मन की बात है वह तो आहिस्ता आहिस्ता ही होगा। आप हिन्दी ज़बान पढ़ ले। फिर उस में लिखी हिन्दू धर्म की कताबे पढ़े। हिन्दू धर्म एक बहुत ही वसीह चीज़ है। इस की पूरी जानकारी तो विरले ही लोगों के है। सब लोग ज़्यादा से ज़्यादा जानने की कोशिश करते रहते है। कोई दस कदम आगे है तो कोई दस कदम पीछे। इस पर भी ये सब लोग एक ओर को मुख किए हुए चल रहे हैं। सब से पहिली बात जो एक हिन्दू कहता और करता है वह हिन्दुस्तान को अपनी पाक (पुण्य) भूमि मानना है। यही वजह है कि सदा शिव इतने धन के लोभ पर भी हिन्दुस्तान को छोड़ कर जाना नहीं चाहता।"

"तो मैं अपना क्या नाम रखूं ?"

"जो आप को सब से ज़्यादा पसन्द हो।"

"आप कोई तजवीज़ करिए।"

"शान्ति देवी। बहुत अच्छा नाम है।"

"शान्ति देवी ? बहुत खूब है। मुझे पसन्द है।"

"मेरा नाम तो पहिले ही है। मुझे सब रामी कहते थे।" ख़नीजा की माँ ने कहा।

"रामी। बहुत अच्छा नाम है। पूरा नाम राम प्यारी होगा।"

ख़नीज़ा ने पूछा, "मगर आप ने किसी ब्राह्मण वग़ैरह को बुला कर कोई रसम अदा करने को नहीं कहा।"

"मैं इस की ज़रूरत नहीं समझती। मुसलमान से हिन्दु होने के लिए ख्यालात का बदलना ही सब कुछ है। सो वह आप के बदल चुके हैं।"

[५]

महीना ख़तम होने पर सदाशिव ने पिछले महीने का वेतन ले लिया और नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया। उसी सायं अपना निजी सामान लेकर वह अपनी स्त्री और सास के साथ 'मेराईन ड्राईव' पर मकान में चला गया। उसी सायं खुशीराम और राधा उन से मिलने आए। ख़नीज़ा जिस ने अपना नाम शान्ति देवी रख लिया था, राधा को आया देख बहुत अनुगृहीत हुई। उस ने कहा, "आप का बहुत शुक्रिया है कि आप आज आई हैं।"

"हम तो यह देखने आए हैं कि हम आप की किस बात में सहायता कर सकते हैं। आज आप नये मकान में आए हैं। अभी तो सब वस्तुओं की आवश्यकता होगी। क्या मै आपका घर देख सकती हूँ?"

"हाँ। क्यों नहीं? आइये। अम्मी दरगाह से अपने भूषण ले आई थी और उस को बेच कर बीस हज़ार के लगभग रुपया मिल गया है। उस में से पाँच हज़ार तो मकान खाली करने का, पहिले किराए दार को और दो हज़ार मलिक मकान को दिया इस पर भी संतोष ही है कि अच्छा बड़ा मकान मिल गया है और दो हज़ार रुपया अम्मी अपने स्कूल के लिए साज़ों पर खर्च कर रही हैं। एक हज़ार रूपया स्कूल के लिए इश्तहार पर खर्च देने का विचार है। शेष दस हजार रुपया हम ने कुछ देर तक गुजर करने के लिए रख लिया है।"

यह कहती हुई शान्ति देवी राधा को कमरे दिखा रही थी। यह बैठक, स्कूल का कमरा होगा। इस बैठक के बाहर बाहर ही भीतर के

कमरों को जाने का मार्ग है। उस में दो तो कमरे हैं। एक हम ने अपने सोने का कमरा बना लिया है। एक आने-जानेवालो से मिलने का। मार्ग के इस ओर गुसल खाना है और दूसरी ओर रसोई खाना। यह मकान उतना अच्छा तो नहीं है जितना हमारा पहिला मकान था। इस पर भी यह साफ़ और हवादार है।"

दूसरी ओर सदाशिव खुशीराम को बता रहा था, "मुझ को आशा नहीं थी कि खनीज़ा मेरा साथ देगी। वली का दृष्टि कोण भी ठीक ही था। वह मुसलमान है। उसकी नस नस मे इसलाम समाया हुआ है। जब से उसे विश्वास हुआ है, कि पाकिस्तान बनेगा तब से ही वह वहाँ जाने का प्रबन्ध कर रहा है। मैंने उसे कहा भी था कि हिन्दुस्तान से जाने की ज़रूरत नहीं है। यहाँ इसलाम को पूरी आज़ादी होगी। इस पर उस ने कहा कि वह सिरफ आज़ादी से ही सबर नहीं कर सकता। वह ऐसे मुल्क मे रहना चाहता है जहाँ मुसलमानो के सिवाय और कोई न हो। बचपन से वह यही स्वप्न देख रहा है और अब इस बुढेपे में उस के ख्वाब भर आये हैं। अब वे उनका लुत्फ़ उठाना चाहता है, यह उसकी बहुत महरबानी थी कि इतनी बड़ी जायदाद मुझे देने को तैयार था। एक बार तो मैं चका चौंध रह गया और प्रलोभन में बह चला था परन्तु हिन्दुस्तान छोड़ कर मैं ऐसे मुल्क में जाने के लिए तैयार नहीं हो सका जहाँ पर उनकी हकूमत होगी जिन्होने नोआखाली की वारदात की है।

"मैंने जब अपनी स्त्री से कहा कि वह यह जायदाद अपने नाम करवा ले और वे वहाँ जा कर इस का भोग कर सकती है, तो उसने पूछा कि मैं उसके साथ वहाँ जाऊँगा न? जब मैंने कहा कि मैं हिन्दुस्तान मे रह कर ग़रीबी का जीवन व्यतीत करना पसंद करूँगा और अमीर बन कर भी पाकिस्तान में नहीं रहूँगा तो उसने तुरन्त कह दिया कि वह भी वहाँ नहीं जाएगी। मैंने उसे दो दिन सोचने को दे दिए। दो दिन के बाद वह सो कर उठी और मुझ से बगलगीर

होकर कहने लगी, "मैंने फ़ैसला कर लिया है।" मैंने पूछा, "क्या फ़ैसला किया है मेरी जान !" उस ने खुशी से चमकती हुई आँखों से मेरी आँखों में देखते हुए कहा, "मैने फ़ैसला कर लिया है कि मैं वहाँ ही रहूँगी जहाँ आप रहेगे और मैं उसी हाल में रहूँगी जिस हाल में आप रहेगे।"

"आप अनुमान लगा सकते हैं कि इससे मुझको कितनी खुशी हुई है। खुशीराम जी मै इससे नहायत ही प्रसन्न हूँ।"

"मैं आज इस कारण आया हूँ कि आपने मकान बदला है। इससे क्या कोई सेवा मेरे योग्य है ?"

"आपका धन्यवाद है। इससे भी अधिक मै राधा देवी का कृतज्ञ हूँ। मै समझता हूँ कि मेरी स्त्री में यह परिवर्तन उनके ही कारण हुआ है।"

"मगर सदाशिव जी एक बात जो मैं नहीं समझ सका वह आपका पाकिस्तान न जाने का फ़ैसला है। आप तो हिन्दू-मुसलमान एक ही कौम मानते हैं न। आपके लिए तो 'जहाँ जा लगे वही किनारा हो गया' वाली बात है न ?"

"आपका कहना सत्य था, मगर तब। अब नहीं। कलकत्ता और नोआखाली के बाद मै दूसरे ढंग से सोचने लगा हूँ। मैं अब यह समझ रहा हूँ कि हिन्दू और मुसलमान हैं तो दोनो इन्सान, परन्तु इस वक्त मुसलमानों के मन में शैतानीयत सवार है और इस समय उनके राज्य में जाना अपने को शैतान के हाथ में सौंप देना है। यह करने के लिए मैं तैयार नहीं।"

"आपने क्या यह भी कभी सोचा है कि एक ही मुल्क में रहते हुए, एक ही भूमि का अन्न-अनाज खाते हुए, एक ही पानी पीते हुए और एक ही तरह की हवा मे साँस लेते हुए, यह कैसे हो गया कि एक फ़िरके में तो शैतान घुस गया है और दूसरे में नहीं घुस सका। कौम की कौम एक किस्म के विचारो की हो गई है। आख़िर यह क्यो है ?"

सदाशिव चुप था और सोच रहा था। खुशीराम ने अपना कहना जारी रखा, "यह एक विचित्र घटना है कि नोआखाली में औरतो पर बलात्कार किया गया और सारी की सारी कौम में एक भी तो माई का लाल ऐसा नहीं निकला जो इस पशुपन की निन्दा कर सकता।"

"देखिए खुशीराम जी! मै आपको एक और बात बताता हूँ। दिल्ली से एक आदमी की चिट्ठी बम्बई के प्रीमियर के नाम और उसकी नकल असेम्बली के सब सदस्यों के नाम आई है। उसमें लिखा है कि मुसलिम लीग की वर्किंग कमेटी ने यह निश्चय किया है कि पहिली नवम्बर को बम्बई मे डायरेक्ट ऐकशन शुरू किया जावे। इस सूचना को पहिले तो प्रीमियर ने सत्य मानने से इन्कार कर दिया। पश्चात् जब उसी चिट्ठी की नकल अन्य सदस्यों को भी मिल गई तो सदस्यों ने उनसे पूछना आरम्भ कर दिया। विवश होकर उनको कुछ कार्यवाई करनी पड़ी। परन्तु जानते हैं कि उनकी कार्यवाई का क्या परिणाम हुआ है। कल बम्बई में तीन सौ हिन्दू 'प्रिवेन्टिव डिटेन्शन' के कानून के अनुसार कैद कर लिए गए हैं। लगभग पॉच सौ लोगों की पब्लिक सिक्यूरिटि एक्ट के अधीन जमानते ले ली गई हैं और उनमें चार सौ से ऊपर हिन्दू हैं। मैंने आज प्रीमियर साहब से इस विषय में पूछा तो अचम्भे में मुझसे पूछने लगे कि मैं तो सोश्यलिस्ट विचार का आदमी हूँ फिर हिन्दू-मुसलमान में भेद-भाव क्यो कर रहा हूँ। मैंने कहा भी कि जिनसे शान्ति भंग की आशंका है उनको पकड़ने से ही तो शान्ति रह सकेगी। गरीब बेकसूर लोगों को पकड़ने से क्या होगा। इस पर कहने लगे कि ताली एक हाथ से नही बजती। किसी भी एक तरफ के गुन्डों को पकड़ लेने से शान्ति भग नहीं होगी। अब बताइए इसमे क्या युक्ति है।

"मैं तो लाचार हो गया हूँ। मैं विचार करता हूँ कि महात्मा जी इतने योग्य माने जाते हैं परन्तु उनके सब साथी इतनी थोथी युक्ति

करते हैं कि नहीं जानता कि महात्मा जी की योग्यता पर अविश्वास करूँ अथवा उनकी नेकनीयत पर ? कुछ समझ नहीं आता ।"

"परन्तु पहली नवम्बर तो कल है न। क्या हम कल यहाँ फसाद की आशंका करें ?"

"यह मैं कैसे बता सकता हूँ। हमारे पास तो किसी गुमनाम आदमी ने सूचना भेजी है। उस सूचना की सचाई की कौन गारन्टी कर सकता है। मैं तो उस सूचना पर सरकारी कार्यवाई की बात बता रहा था।"

खुशीराम ने कलाई पर बंधी घड़ी में समय देखा और कहा, "अब हमने एक और काम पर जाना है। किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो बताइए।"

"सब आपकी कृपा है।"

[६]

पाहला नवम्बर को जुम्मे का दिन था और जब नमाज पढकर मुसलमान मस्जिदों से बाहर निकले तो एकाएक हिन्दू मुसलमान झगड़ा आरम्भ हो गया। कोई नहीं जानता कि झगड़ा का आरम्भ कहाँ से और कैसे हुआ। कोई कहता है कि कुछ गुंडे एक औरत को तंग कर रहे थे। दुर्भाग्य से वह गुंडे मुसलमान थे। इससे हिन्दू मुसलमान फसाद आरम्भ हो गया। इसके विपरीत एक और भी कहानी कही जाती है। एक बनिए ने एक लड़के से दाम तो ले लिया परन्तु उसे माल देने के वक्त कह दिया है कि उसने दाम नहीं दिया। दुर्भाग्य से लड़का था मुसलमान और बनिया था हिन्दू। इस कारण हिन्दू-मुसलमान झगड़ा हो गया। इस पर भी यह कहना कठिन था कि अमुक बात ही झगड़े का कारण हुई।

पहिले तो कुछ दुकानें लुट गईं और कुछ चलते-फिरते लोगो के पेटो में छुरे घोपे गए। साथ ही मुसलमान लोग घबराए हुए इधर से

उधर भागने लगे। इस प्रकार फ़साद आरम्भ होते ही बम्बई नगर बन्द हो गया। कारखानो में खबर पहुँची तो उनमें काम छोड़कर मज़दूर बाहर निकल आए। सायंकाल तक यह समाचार भी मिल गया कि आहमदाबाद में भी फ़साद हो गया है। रात को बम्बई सरकार ने तीन दिन का कर्फ़्यू लगा दिया।

इन तीन दिनों में कारखाने बंद रहे और मज़दूर घरों में बेकार बैठे रहे। इन दिनो में बम्बई और आहमदाबाद, दोनों स्थानों पर छुरे घोंपने की घटनाएँ होती रहीं, तीन दिन के उपरान्त जब बम्बई में से कर्फ़्यू उठा तो मुसलमानों ने एक दो ट्राम गाड़ियों घेरकर हिन्दू कत्ल कर दिए और ट्राम गाड़ियें जला दीं। परिणाम यह हुआ बम्बई में बाज़ार फिर बंद हो गए और कारखाने खुले रहने पर भी मज़दूर उसमें काम करने नहीं पहुँचे।

अब कर्फ़्यू सायंकाल पाँच बजे से लेकर प्रातःकाल आठ बजे तक कर दिया गया। इस पर भी कारखाने नहीं खुल सके। कुछ कारखाने कुछ घंटों के लिए काम करने लगे परन्तु कुछ घंटों से कारखाने चलाने में घाटा होने से तुरंत बंद करने पड़े। इस सब समय में छुरे घोंपने की वारदाते होती रहीं। बम्बई में एक विशेष बात यह हुई कि यहाँ के कुछ हिन्दुओं ने भी मुसलमानों की नकल कर मुसलमनों को चलते-फिरते मारना आरम्भ कर दिया। इससे मुसलमान बहुत घबराए।

फ़साद आरम्भ होने के बाद पहिला जुम्मा आया तो मुसलमान नमाज़ पढ़ने के लिए मस्जिदों में एकत्रित हुए। इसके बाद झुंडों के झुंड मुसलमान बाज़ारों में घूमने लगे और हिन्दू सार्वजनिक इमारतों पर आक्रमण होने लगे। एक झुंड आर्यकन्या पाठशाला के बोर्डिंग हौस पर चढ़ आया। खुशीराम इस बात की आशंका कर रहा था इससे उन्होंने बहुत-सी लड़कियों को बम्बई से बाहर अपने-अपने घरो को भेज दिया हुआ था। इस पर भी बीस के लगभग लड़किएँ, जिनको

कहीं नहीं भेजा जा सकता था, वहीं थी। पुलिस से रक्षा के लिए सहायता माँगी गई थी और एक कानस्टेबल बंदूक के साथ वहाँ पर भेजा भी गया था परन्तु उससे इतने बड़े मजमे का रोका जा सकना असम्भव था। वहाँ टेलीफून थी। इससे मुसलमानो के उधर आते ही पुलिस को और खुशीराम को सूचना भेज दी गई। उस दिन बम्बई में बीस ऐसे स्थानों पर आक्रमण किया गया था और सब स्थानों पर से पुलिस से सहायता माँगी गई थी। इस कारण पुलिस की सहायता तुरंत नहीं पहुँच सकी।

जब खुशीराम अपनी मोटर में वहाँ पहुँचा तो कानस्टेबल और संस्था के दोनो चपरासी मोर्चा बाँधे भीड़ को रोकने का यत्न कर रहे थे। खिड़कियो के शीशे टूट चुके थे और चपरासियो के सिर फूट चुके थे। कानस्टेबल भी घायल हो चुका था। कानस्टेबल ने गोली चला दी थी जिससे भीड़ और भी क्रोध से भर गई थी। खुशीराम इमारत के पिछवाड़े से इमारत में जा पहुँचा। लड़किएँ और अध्यापिकाएँ भयभीत पिछवाड़े से भागजाने का विचार कर रही थीं। खुशीराम का कहना था कि उस समय नगर मे बलवा जोरों से हो रहा है और उनका मकान से बाहर जाना अपने को और भी खतरे में डालना होगा। उनको इसी मकान में रहकर आक्रमण करनेवालों का मुका-बिला करना चाहिए। लड़किएँ लड़ने मरने पर तैयार हो गई। वे मकान पर चढ़ गई और मकान की मूँडेर तोड़ नीचे खड़े मुसलमानों की भीड़ पर ईंटो की बौछार करने लगी।

खुशीराम स्वयं कानस्टेबल के पास पहुँचा अपना रिवाल्वर निकाल आक्रमणकारियों पर गोली चलाने लगा। इससे कानस्टेबल का उत्साह बहुत बढ़ गया और छत पर से ईंटों की बौछार ने भी अपना काम किया। इस समय विद्यालय के एक चपरासी ने खुशीराम से कहा कि भीर में सबसे आगे खड़ा हुआ वह आदमी लक्ष्मी के अपहरण के समय आया था। वही राधा बीवी जी की चिट्ठी लाया था खुशीराम

ने उसकी ओर देखा और उसे पहिचान लिया। वह मन्नू था। खुशीराम ने निशाना ताककर उसके घुटने पर गोली चलाई। निशाना ठीक बैठा और वह वहीं बैठ गया। इस समय तक छत पर से इंटों की बौछार के कारण आक्रमण करनेवाले भागने आरम्भ हो गए थे।

खुशीराम ने अपने समीप खड़े कानस्टेबल को लेटे हुए मन्नू को दिखा कर कहा, 'देखो उस घायल को हमने जाने नहीं देना। वह बहुत मार्के का मुजरिम है। भागती भीड़ में से कुछ लोग उसको उठाने आए परन्तु गोलियों की बौछार से उसके समीप आ नहीं सके। परिणाम यह हुआ कि जब भीड़ तितर-बितर हो गई तो खुशीराम ने मन्नू जमादार को उठवा कर अपने अधिकार में कर लिया।

खुशीराम ने देखा कि उसके घुटने की चप्पनी टूट गई है और बिना दस बीस दिन अस्पताल में रखे वह ठीक नहीं हो सकेगा। इससे उसने मन्नू को कहा, "देखो मन्नू! यदि तुम लक्ष्मी का पता बता दो तो मै तुम्हें पुलिस के हवाले नहीं करूँगा और तुम्हारी टाँग को ठीक करने को डाक्टर का प्रबन्ध घर पर कर दूँगा। नहीं तो एक नाबालिग लड़की के भगा ले जाने के जुरम में छै वर्ष की कैद करवा दूँगा।"

मन्नू को भारी वेदना हो रही थी और उसकी टाँग से रक्त बह रहा था। साथ ही खुशीराम की हरासत में होने से वह घबड़ा गया और बक गया। पता मैं बता सकता हूँ मगर वह मेरी बीवी बन चुकी है। और उसको मुझसे छीनने की कोशिश अन्याय होगी।"

"यह ठीक है।" खुशीराम ने कहा। "अगर वह अपनी खुशी से तुम्हारी बीवी बनी है और खुशी से तुम्हारी बीवी रहना चाहती है तो मै उसको तुमसे जुदा नहीं करूँगा। साथ ही तुम्हारा इलाज अपने मकान में करवाऊँगा और उसको तुम्हारी सेवा के लिए तुम्हारे पास रहने दूँगा।"

मन्नू ने संदेह भरी दृष्टि में खुशीराम की ओर देखा। खुशीराम ने अपनी बात दुहराई और उसे कहा, "यदि वह अपनी इच्छा से तुम्हारे पास रहना चाहेगी तो मैं वचन देता हूँ कि तुम्हारे अपराध को भूल जाऊँगा। जल्दी बताओ पुलिस आने ही वाली है। एक बार तुम उनके हाथ मे गए तो मैं बचा न सकूँगा।"

मन्नू नरम हो गया और बोला, "वह मुझसे मुहब्बत करती है और मुझको यकीन है कि मुझसे जुदा होना पसन्द नहीं करेगी।"

"अगर तुम्हे यकीन है तो बताओ मै उसको यहाँ बुला लूँगा और फिर तुम्हारी भी हफ़ाज़त हो जावेगी।"

मन्नू ने बताया कि दरगाह शाह मुराद के पिछवारे में दरगाह के कुछ भाड़े के मकान हैं। उन मकानों में नम्बर ग्यारह के मकान के नम्बर चार का कमरा उसके पास है और वह इस वक्त वहीं पर है।

खुशीराम ने मन्नू को उठवा कर अपनी मोटर में लाद लिया और उसे अपने घर ले गया। राधा खुशीराम को सही सलामत और फिर मन्नू के साथ देखकर बहुत प्रसन्न हुई। खुशीराम का लड़का अपने पिता की तालाश में जाने के लिए बेताब हो रहा था। इस प्रकार उसके आने से मन्नू के विरोधी भाव क्षमा और सहानुभूति में बदल गए। डाक्टर को बुलाया गया, उसकी मरहम-पट्टी करवाई गई, और उसी समय मोटर पर सवार हो खुशीराम, खुशीराम का लड़का और दो और आदमी लक्ष्मी को ढूँढ़ने चले गए।

[७]

लक्ष्मी खुशीराम को देख हैरान रह गई। वह इस बात की किंचित मात्र भी आशा नहीं करती थी। इस कारण जब उसने दरवाज़ा खोला और खुशीराम को कुछ अन्य लोगो के साथ खड़ा देखा तो डर गई। खुशीराम ने कहा, "लक्ष्मी! नहीं पहिचाना मुझको?" लक्ष्मी के मुख

से आवाज नहीं निकली। इस पर खुशीराम ने फिर कहा, "मैं खुशीराम हूँ। मैं तुमको छुड़ाने आया हूँ।"

बड़ी कठिनाई से लक्ष्मी के मुख से निकल सका, "अब यहाँ क्या रखा है। मै अब करीमा हूँ। लक्ष्मी मर गई है।"

"मै जानता हूँ।" खुशीराम ने बात बदलकर कहा। "मन्नू घायल हो हमारे घर में पड़ा है। उसने तुमको बुलाया है।"

"घायल! कहाँ घायल हुआ है। वह तो दरगाह में वली साहब की खिदमत के लिए गया हुआ है। मुझे वली साहब के पास ले चलो।" इतना कह वह बुर्का पहन जाने को तैयार हो गई।

खुशीराम ने नीति से काम लेने का विचार कर कहा, "चलो मै वली साहब से पुछवा देता हूँ।"

"नहीं मै खुद चली जाऊँगी।" लक्ष्मी ने कहा।"

"अरे बाबा कहाँ चली जावोगी। वली साहब भी तो हमारे घर में पहुँचे हुए हैं। तुम नहीं जानती कि बाहर क्या हो गया है आज पुलिस ने दरगाह पर अधिकार कर लिया है। मन्नू और वली साहब भागकर बच निकले हैं। हमारे मकान के सामने कुछ गुंडो ने उनको घेर लिया और वे तो उनको मार ही डालते अगर मैं पिस्तौल लेकर उनको छुड़ाने न पहुँच जाता। इस पर भी दोनो घायल हो गए हैं और मेरे मकान में पड़े हैं।"

लक्ष्मी हैरानी में खुशीराम का मुख देखने लगी। खुशीराम ने बिना उसकी हैरानी की ओर ध्यान दिए अपना कहना जारी रखा। "मन्नू ने स्वयं कहा है कि तुमको बुला दूँ।"

लक्ष्मी ने फिर कहा, "झूठ तो नहीं बोलते ?"

"तुम कुछ पागल हो रही हो लक्ष्मी। अपनी जान को जोखम में डाल कर तुमको लेने आया हूँ और यह सब किस लिए ?"

लक्ष्मी अभी भी अनिश्चित मन खड़ी थी। खुशीराम समझ रहा था कि उसकी तरकीब काम कर रही है। इससे उसने अपनी बात

जारी रखो। "उसने कहा है कि तुम उससे मुहब्बत करती हो। इस पर मैंने उनसे वचन दिया है कि अगर उसका कहना ठीक है तो मैं उनके ठीक हो जाने पर उनको बम्बई से बाहर सुरक्षित स्थान पर पहुँचवा दूँगा।"

इस पर लक्ष्मी साथ चलने को तैयार हो गई। खुशीराम ने कहा बुर्का उतार दो। नहीं तो रास्ता चलते मुसलमान लोग समझेंगे कि हम किसी मुसलमान औरत को भगा कर लिए जा रहे हैं और तुमको लेकर वहाँ पहुँच सकना कठिन हो जावेगा।"

लक्ष्मी मान गई। और वे उसको मोटर में बैठा कर घर ले आए। लक्ष्मी ने मन्नू को पट्टियों में लपेटा हुआ देख संतोष अनुभव किया। मन्नू ने उसको बताया कि खुशीराम ने वचन दिया है कि यदि वह अपनी खुशी से उसके पास रहना पसन्द करेगी तो वे हमारी मदद करेंगे और मेरा इलाज करवाएँगे। या जहाँ मै कहूँगा वहाँ पहुँचा देंगे।"

लक्ष्मी राधा से मिली तो उसने कहा कि जब तक मन्नू ठीक नहीं हो जाता वे दोनों उनके घर रह सकते हैं। इस पर लक्ष्मी ने पूछा, "आप मुझसे घृणा तो नहीं करेंगी?"

"क्यों, घृणा क्यों करूँगी? तुमको क्या हो गया है?"

"मैं......मै......मुसलमान हो गई हूँ।"

"तो फिर क्या हुआ है। हो तो तुम वही लक्ष्मी न जो इस घर में आकर यहाँ से जाना पसन्द नहीं करती थी। तुम्हारे लिए ही तो मैंने मन्नू को घर में रखना पसन्द किया है।"

"मगर वली साहब कहाँ हैं?" लक्ष्मी ने खुशीराम को सामने देख पूछा।"

खुशीराम इस प्रश्न के लिए तैयार था। उसने कहा, "लक्ष्मी देवी! तुम मन्नू से प्रेम करती हो या वली साहब से?"

लक्ष्मी की हँसी निकल गई। उसने पूछा, "आपने वली साहब को देखा है कभी?"

"नहीं। मैं उनको नहीं जानता। हाँ उनकी बाबत सुना बहुत कुछ है। वे पच्हत्तर वर्ष के बूढ़े हैं और पैंतीस वर्ष की एक रसूलन नाम की औरत से प्रेम करते हैं। वे हिन्दू औरतों को भ्रष्ट करने के लिए अपने पास गुंडे रखे रहते हैं। भ्रष्ट करने के बाद जब उनके लिए और कोई चारा नही रह जाता तो उनको मुसलमान बना कर उनकी मुसलमान आदमियो से विवाह कर देते हैं। उनकी और भी बहुत सी बाते मैंने सुनी हैं।"

लक्ष्मी चुप थी और गम्भीर विचार मे पड़ी हुई थी। वह मन ही मन सोच रही थी कि यह सब बाते इनको कैसे पता लग गई हैं। खुशीराम ने लक्ष्मी को चुप देख कहा, "लक्ष्मी देवी! अभी आराम करो। मन्नू अभी कई दिन तक ठीक नहीं हो सकेगा। तब तक वह यहाँ ही रहेगा। तुमको भी यहाँ ही रहना चाहिए। जब वह जाने लायक होगा तब तुम चाहोगी तो उसके साथ जा सकोगी।"

लक्ष्मी अभी भी चुप थी। वास्तव में वह घटनाओं के हेर-फेर को समझ नहीं सकी थी। खुशीराम उसको राधा के पास छोड़ बाहर मन्नू के पास चला गया। मन्नू को भय लग रहा था कि खुशीराम अपना वचन पूरा करेगा या नहीं। खुशीराम इस बात को समझता था। इस कारण मन्नू के चित्त को शान्त करने के लिए वह कहने लगा, "मन्नू भाई! मैने जो वचन तुमसे दिया था वह पक्का है। डाक्टर कहता है कि तुम्हारी पट्टी बीस दिन से पहिले नहीं खुल सकती तब तक तुम हमारे यहाँ रहोगे। तुम्हारी बीवी भी तुम्हारी सेवा सुश्रूषा के लिए यहाँ रहेगी। जब तुम यहाँ से जाने लगोगे तब वह, यदि चाहेगी तो, तुम्हारे साथ जा सकेगी।"

"अगर मैं एक दो दिन में यहाँ से जाना चाहूँ तो?"

"तो सीधे हवालात में जाओगे।"

"क्या मतलब?"

"हम लक्ष्मी को समझाना चाहते हैं और इसलिए कुछ दिन उसके यहाँ रहने की ज़रूरत है। तुमने इतने महीने उसे अपने पास रखकर बहका रखा है। उसे अपना मानसिक सतुलन ठीक करने के लिए कुछ दिन सोचने समझने को चाहिए।"

"वह मुझसे मिल सकेगी या नहीं?"

"मिल सकेगी, मगर मै तुम दोनों पर पहरा बैठा रहा हूँ। बीस दिन से पहिले तुम यहाँ से नहीं जा सकोगे और यदि इतने दिन में भी लक्ष्मी तुम्हारे साथ जाने के विचार पर डटी रही तो निश्चय जानो कि मैं उसको रोकूँगा नहीं।"

मन्नू बहुत परेशान था उसे डर था कि लक्ष्मी को ये लोग बहका लेंगे। इससे वह लक्ष्मी को वहाँ से भगा देने की तजवीज़ सोचने लगा।

लक्ष्मी उसके लिए खाना लेकर आई। कमरे के बाहर महाबीर दल के दो स्वयं सेवक पहरा दे रहे थे। यद्यपि वे मन्नू की बाते सुन सकने में अशक्त थे तो भी मन्नू लक्ष्मी से षडयंत्र कर सकने में कठिनाई पा रहा था। इस पर भी उसने लक्ष्मी को अपने समीप बुलाकर कहा, "करीमाँ, यहाँ से भाग जाओ।"

"क्यो।"

"भाग कर दरगाह में चली जावो और हज़रत से मेरे यहाँ कैद होने की बात कह दो। वे मुझको यहाँ से छुड़ा लेंगे।"

"आपको कुछ कष्ट है यहाँ?"

"कष्ट की बात नहीं करीम। ये लोग तुमको वरगला कर मुझसे जुदा करने की कोशिश करेंगे।"

"पर आप तो कहते थे न, कि अब मुझसे कोई हिन्दू शादी नहीं करेगा?"

"तुमको रखैल तो रख लेगा। मगर तुम से विवाह नहीं करेगा।"

"तो फिर आप डरते क्यों हैं?"

"पर मैं पूछता हूँ कि तुम हज़रत वली साहब के पास जाने से डरती क्यों हो?"

"तो आप नहीं जानते कि मै क्यो डरती हूँ। क्या कोई औरत उनके पास जाकर बिना खराज़ दिए वापस आ सकती है। मुझको यह बात पसन्द नहीं।"

"तुमने उनको ग़लत समझा है करीमाँ। अब तुम मुसलमान हो चुकी हो। अब वे तुम को तग नहीं करेंगे।"

"अभी उस दिन जब मुझे एक हिन्दू औरत से बात चीत करने के लिए बुलाया था तो जानते हो वे क्या कहते थे? मेरी बाँह पकड़ कर कहने लगे, 'करीमाँ बेगम, रसूलन आज-कल नाराज रहने लगी है। वह अपनी लड़की के साथ रहने चली गई है। अगर तुम उसकी जगह मेरे पास रहना पसन्द करो तो मैं तुमको कराची ले चलूँगा और मेरे मरने के बाद पचास लाख की जायदाद की मालिक बनोगी।' मैं अभी सोच ही रही थी कि क्या कहूँ कि उन्होंने मेरी बाँह पकड़ ली और अपनी तरफ़ घसीट कर मेरा मुख चूम लिया। मैंने झटका दे अपने को उनसे छुड़ाया और सीधी अपने घर भाग आई। मै अकेली अब उनके सामने नहीं जा सकती।"

"मगर ये लोग भी तो तुमको मुझसे जुदा कर देंगे।"

"ज़बरदस्ती नहीं करेंगे। मुझे राधा दीदी पर विश्वास है।"

"पर मै कहता हूँ कि यहाँ कैद होकर रहना, क्या अच्छा मालूम होता है?"

"मै समझती हूँ कि हम कैद नहीं हैं। आपकी मरहम पट्टी हो रही है और मैं यहाँ मज़े में हूँ।"

मन्नू को कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि उसकी बीवी में वह बेबसी और नम्रता नहीं रही जो उसमें उसके घर पर थी। इससे वह बहुत घबराया। अगर अपने घर पर होता और चल फिर सकता तो मार-पीट कर उसे ठीककर लेता। परन्तु इस समय बेबस था। इससे चुप कर रहा।

[८]

रात राधा और लक्ष्मी एक ही कमरे में सोयीं। राधा ने बातों ही बातो में उसका अपहरण होने के काल से लेकर उस दिन तक का इतिहास जान लिया। लक्ष्मी मन्नू की स्त्री बनने के लिए बिलकुल तैयार नहीं थी। परन्तु दरगाह की सराय मे जब उससे नित्य बलात्कार किया जाने लगा तो विवश हो उसने मन्नू की बीवी बनना स्वीकार कर लिया। इसके पश्चात् उसको ऐसी कहानियाँ सुनाई गयीं जिससे उसके मन से हिन्दू होकर जीवन व्यतीत करना असम्भव प्रतीत होने लगा। फिर मन्नू ने दरगाह में नौकरी कर ली और वहाँ से उसे बढ़िया से बढ़िया खाने को मिलने लगा। धीरे-धीरे उसके मन में यह अंकित कर दिया गया कि अब इस जन्म में उसके लिए मुसलमान बनकर रहना ही ठीक है। साथ ही भोग-विलास के आनन्द को प्रेम का रूप देकर मन्नू ने उसे अपनी बना लिया।

अपनी पूर्ण कथा सुनाकर लक्ष्मी ने कहा, "दीदी अब इस जन्म में क्या रह गया है? मैं अपवित्र हो गई हूँ और किसी भी हिन्दू के घर में रहने के योग्य नहीं रही। अब तो मैं भगवान से यही प्रार्थना करती रहती हूँ कि मुझे अगले जन्म में पुनः हिन्दू की कोख से उत्पन्न करे और मुझ में शक्ति दे कि मैं हिन्दू के कर्तव्य का पालन कर सकूँ।"

"लक्ष्मी! बहुत ज्ञान की बातें करने लग गई हो, अब तो?" राधा ने कहा।

"मुसीबत ने सब कुछ सिखा दिया है। जिन दिनो मैं दरगाह की सराय में थी और जो दुर्गति मेरी नित्य रात को होती थी वह मैं मरन पर्यन्त नहीं भूल सकती। नित्य कोई नया आदमी मेरे पास भेज दिया जाता था। उन दिनो की बात अब भी याद करती हूँ तो रोगटे खड़े हो जाते हैं। उन दिनों भगवान के सिवाय और आश्रय ही क्या था। एक रात मुझको स्वप्न में भगवान की सी सूरत में एक आदमी ने कहा, "एक की बीवी बनकर रहो। जने खने से बदफैली कराने से तो यही अच्छा है। अगले दिन मैंने मन्नू से मिलने की इच्छा प्रकट की और उससे मुलाकात होने पर उससे विवाह का इकरार कर लिया।"

"मै एक बात कहूँ लक्ष्मी। अभी तुम्हारी उमर सोलह वर्ष की भी नहीं हुई। अगर और सब बातें ठीक रहें तो तुम सत्तर-अस्सी वर्ष की उमर तक जी सकती हो। अभी तो साठ पैसठ वर्ष जीवन और हो सकता है। इससे मैं कहती हूँ कि जो बात तुम आज से साठ वर्ष बाद अर्थात्, अगले जन्म में करना चाहती हो, वह आज से ही क्यों आरम्भ नहीं कर देती?"

"कैसे यह हो सकता है। इस अपवित्र शरीर को कौन ग्रहण करेगा।"

देखो लक्ष्मी! मैं तुम्हें अपनी आप बीती सुनाती हूँ। मैं जन्म से मुसलमान हूँ और बचपन से ही एक मुसलमान अमीर आदमी के घर नौकरी करती थी। इन्हीं नौकरी के दिनों में मेरे विवाह का प्रबन्ध मालकिन के भाई के रसोइये से होने लगा तो मुझको यह पसन्द नहीं आया। वह एक आँख से काना था और अपनी पहिली बीवी को बहुत पीटा करता था। इस समय, यह देवकी नन्दन के पिता से मेरी भेंट हो गई। विवाह तो हमारा हो नहीं सकता था। ये हिन्दू थे और मै एक मतान्ध मुसलमान की नौकरानी। मै इनके साथ भाग गई। हम दिल्ली जा पहुँचे। वहाँ किसी बदमाश से धोखा देकर अपहरण कर ली गई। उन लोगो ने मेरे साथ बहुत बुरा सुलूक किया। वे मुझ

से पेशा करवाने लगे थे। पश्चात् इन्हीं के पास उन बदमाशों ने बेचने का यत्न किया, परन्तु मेरे भाग्य अच्छे थे कि इस छापे खाना के मालिक की चतुराई से मैं बच गई और वे बदमाश पकड़ लिए गए। जिनके घर मे मैं नौकरानी थी वे मेरा विवाह एक मुसलमान से करना चाहते थे। इस पर उन्होने मुसलमान बनना स्वीकर कर लिया और मेरा विवाह इनसे हो गया। अब तुम देख ही रही हो कि मेरा जन्म सुधर गया है। मै समझती हूँ कि तुम्हारे साथ भी ऐसा हो सकता है। सौभाग्य की बात है कि तुम उस नरक मे बाहर आ गई हो।"

उस रात तो इतनी ही बात हुई। राधा उसको सोचने का अवसर देना चाहती थी। लक्ष्मी रात भर अपनी अवस्था पर विचार करती रही। क्या वह विवाह के बिना रह सकेगी। यदि नहीं तो क्या उससे भी खुशीराम जैसा कोई विवाह करने पर राजी हो सकेगा। एक बात वह समझती थी कि मन्नू उसको कई बार मार पीट चुका था और जब भी वह उसे कुछ कहती थी वह उसे फिर सराय मे छोड़ आने की धमकी देता था। कम से कम यहाँ रहते तो उसको इन बातों का भय नहीं था। उसी से उसने मन्नू की बात, कि वह भाग कर पीर साहब को ख़बर दे दे, नहीं मानी थी। इस पर भी वह अभी किसी बात का निर्णय नहीं कर सकी थी।

दो दिन तक उसके मन में संघर्ष चलता रहा और इस समय में राधा अथवा खुशीराम ने उससे कोई बात नहीं की। मन्नू भी सोच रहा था कि लक्ष्मी को मजबूर न किया जावे। कहीं वह बिगड़ ही न जावे परन्तु लक्ष्मी का मन चुप नहीं था। वह भीतर ही भीतर प्रश्नोत्तर कर रहा था। दो दिन के सवाल के पश्चात् भी उसके मन में भविष्य का चित्र स्पष्ट नहीं हुआ। इसलिए वह राधा के पास अपने मन के संशयों के निवारण के लिए जा पहुँची। "राधा दीदी! एक बात

पूछूँ आप सत्य बताएँगी न। अगर मैं अपने खाविन्द को न छोड़ूँ तो आप क्या करेंगी। क्या उनको पुलिस के हवाले कर देंगी।'

'नहीं! देवकी नन्दन के पिता जी ने उनको वचन दिया है कि यदि वे तुमको अपनी बीमारी के दिनों में हमारे पास रहने देंगे तो वे उनको पुलिस के हवाले नहीं करेंगे।'

"इससे आपको क्या लाभ होगा?"

'हम समझते हैं कि हिन्दू रहना तुम्हारे लिए अच्छा है और तुमको समझा कर हम पुन. हिन्दू बना लेना चाहते हैं। इसी लिए तुम पर और उस पर इतना कुछ खर्च कर रहे हैं।'"

"इस पर भी यदि मैं न मानूँ तो आप क्या करेंगे?"

"उसकी टाँग ठीक हो जाने पर तुम दोनों की, जहाँ आपकी इच्छा हो जाने देंगे?"

"इससे तो आपको बहुत हानि होगी?"

'ठीक है, परन्तु हमारा यत्न तो पवित्र है। हम अपने विचार से तुमको हानि से बचने में मदद दे रहे हैं।'

इस रात बात यहीं समाप्त हो गई। लक्ष्मी के मन में अभी भी बात स्पष्ट नहीं हुई थी। वह यह तो समझ गई थी कि उसको हिन्दू बनाने का यत्न किया जा रहा है। मगर क्यों? यह वह नहीं समझ सकी थी। इससे अगले दिन जब मन्नू सो रहा था और खुशीराम काम पर गया था, लक्ष्मी ने बात अपने विषय में कर दी। "आपने कल कहा था कि आप मुझको समझावेंगी। परन्तु आप तो इस विषय में अपने आप बात ही नहीं करती।

"बाते करने से भी भला कोई समझ सकता है? हमने तुमको दूषित वातावरण से निकाल स्वच्छ और स्वतन्त्र वायुमंडल में रख छोड़ा है। इससे भी यदि तुम नहीं समझ सकती तो फिर हम क्या कर सकते हैं? यदि तुमको कोई बात समझ नहीं आती तो तुमको स्वयं पूछना चाहिए।

"पर दीदी। कई बातें हैं। मैं क्या-क्या पूछूँ ? समझ नहीं आता। अच्छा यह बताइए कि आपको मेरे हिन्दू हो जाने से क्या लाभ होगा।"

"जब हम किसी भिखारी को दान देते हैं तो हमे क्या लाभ होता है, कभी तुमने सोचा है ?

"कहते हैं कि पुण्य होता है। इससे हमारा अगला जन्म सुधरेगा।"

"बस फिर यही समझ लो। तुम्हारे हिन्दू होने से तुम सुखी होगी। इससे हमारा भी भला होगा। परन्तु मैं तुमको एक बात और कहती हूँ। यह भला अगले जन्म होगा या नहीं कहना कठिन है, परन्तु इस जन्म में तो अवश्य होगा।"

"यही तो मै जानना चाहती हूँ।"

"तुम जानती हो कि इस समय मुसलमान देश में क्या कर रहे हैं ? वे हमारे देश के एक भाग को पाकिस्तान बनाना चाहते हैं। पाकिस्तान के अर्थ ऐसी जगह है जहाँ कोई हिन्दू न रह सके यह व्यवहार सब मुसलमानो का है और सब मुसलमानी देशो मे और सब कालो मे रहा है। यदि हिन्दुस्तान में मुसलमानों की तादाद बढ़ती गई तो ये एक दिन यहाँ भी पाकिस्तान बनाने के लिए कहेगे। परिणाम यह होगा कि हम यहाँ भी हिन्दू होते हुए नहीं रह सकेगे। इससे हम अपने देश में मुसलमान की संख्या बढ़ने नहीं देना चाहते। यदि तुम एक मुसलमान की बीवी बनी रही तो तुम्हारी संतान मुसलमान होगी और इस प्रकार देश में मुसलमानो की सख्या बढ़ जावेगी यह न तो हमारे, न ही देश के लाभ की बात है।"

लक्ष्मी को यह बात समझ आ गई। वह जानती थी कि मन्नु के संगी-साथी हिन्दुओ को मार कर मिटा देने की बाते करते रहते हैं। आज उसे पता चला कि हिन्दू मुसलमान मे झगड़े की नींव में देश की बात है। इस दृष्टि कोण से सोचने पर उसे अपने एक मुसलमान से शादी कर लेने के दूसरे ही अर्थ निकलने लगे।

लक्ष्मी गंभीर विचार में बैठी रह गई। उसी दिन सायं खाना खाने के समय उसने मन्नु से कह दिया, "मैं सोच रही हूँ कि क्यों मैंने एक मुसलमान से विवाह किया है?"

"तो तुम को मालूम नहीं?"

"मालूम तो है। मेरे से नित्य बलात्कार किया जाता था। उस से बचने के लिए मैंने आप से विवाह कर लिया था। वह मजबूरी की हालत थी।"

"पर तुम तो कहती थी कि तुम मुझ से प्रेम करती हो।"

"वह कहना भी मजबूरी थी।"

मन्नु यह सुन क्रोध से उतावला हो रहा था, परन्तु विवश था। वह अभी हिल नहीं सकता था। इस कारण चुप रहा और दाँत पीसता रहा।

"मैं सोच रही हूँ, कि यदि मैंने विवाह विवशता से किया था तो वह विवशता अब नहीं रही। तुम ने मुझ को कई बार पीटा भी है, परन्तु मैं अपने को निर्दोष समझते हुए भी आप के पास रहने के लिए विवश थी। अब मैं अपने को आप के वश में नहीं पाती। इस से समझती हूँ कि मैं आप की बीवी नहीं हूँ।"

"पर तुम्हारा मुझ से नकाह जो पढ़ा जा चुका है।"

"नकाह पढ़ने से क्या होता है। मैं आप के पास नहीं रहना चाहती।"

जब राधा को पता चला कि लक्ष्मी ने मन्नु को जवाब दे दिया है तो उसने उसे, उसके समीप रखना उचित नहीं समझा। इस कारण लक्ष्मी से कहा, "तुम ने उस के साथ रहने से इन्कार कर दिया है क्या?"

"हाँ। उन लोगों ने मुझ को मजबूर कर दिया था कि मैं मन्नु से विवाह करूँ। अब आप की कृपा से वह मजबूरी नहीं रही। एक बात है। मेरा उससे नकाह पढ़ा गया था। उस का क्या होगा।"

"वह नकाह अनियमित है। उसका अस्तित्व नहीं है। वह जुरम था।"

"तब फिर ठीक है। यदि हो सका तो मैं उस के साथ नहीं जाऊँगी।"

अगले दिन खुशी राम लक्ष्मी को साथ लेकर मन्नु के पास गया और बोला, "मन्नु भाई! मैं जैसा समझता था वैसा ही हुआ है। यह कहती है कि अब तुम्हारे साथ नहीं, जावेगी।"

"क्यों?" मन्नु का प्रश्न था।

उत्तर लक्ष्मी ने दिया, "इस लिए कि आप लोगों ने मेरे साथ भारी अन्याय किया है। आप का मेरे साथ व्यवहार एक भारी जुरम है। मैं अपनी इच्छा से न कभी तुम्हारी बीवी बनी थी और न अब बनूँगी।"

"ख़ुदा की नज़रों में जब एक दफा ख़ाविन्द बीबी बन गये तो हमेशा के लिए बन गये। अब हम को जुदा करने वाला कौन है?"

"यह बात नहीं मन्नु। तुम्हारा इसी से विवाह खुदा की रज़ा-मन्दी से नहीं हुआ। वह तो शैतान की करामात कही जा सकती है।"

"मैं समझती हूँ कि यहाँ मैं आज़ाद हूँ और नकाह हुआ है अथवा नहीं। मैं अब आप के साथ नहीं जाऊँगी।"

"तो तुम ने सुन लिया है न। अब मैं तुम्हें दरगाह में भेज रहा हूँ। अगर तो तुम चुप चाप चले जावोगे तो ठीक है और अगर किसी प्रकार का भी हल्ला किया तो पुलिस के हवाले कर दिये जावोगे। और एक नाबालग़ लड़की के अग़वा (अपहरण) का मुकद्दमा चलाया जावेगा। साथ ही दरगाह मे जो कुछ होता है उसका राज़ फ़ाश कर (भेद खोल) दिया जावेगा।"

मन्नु चुप था। वह सोच रहा था कि किस प्रकार अपनी बीवी को फिर पा सके।

[६]

बम्बई में बलवा जारी रहा। नित्य छुरे पेट में घोपे जाने की घटनाएँ होती रहीं। सरकार की ओर से रात को कर्फ्यू लगा रहा। परिणाम स्वरूप कारोबार में बाधा बनी रही। कभी कभी मुसलमान इकट्ठे मिल कर भी मन्दिरों पर अथवा अन्य हिन्दु सार्वजनिक संस्थाओं पर आक्रमण करते रहे। आर्य कन्या पाठशाला पर तो गुर्खा फौजियो का पहरा बैठा दिया गया था इस समय तक हिन्दू लोग भी जवाबी आक्रमण करने लगे थे। एक दिन बीस हिन्दुओं को पेट में छुरे घोप कर मार डाला गया। दूसरे दिन उतने ही मुसलमानों को मार डाला गया। एक दिन एक हिन्दू मन्दिर पर आक्रमण किया गया तो दूसरे दिन एक मस्जिद पर हल्ला बोल दिया गया। इस से बम्बई में छुरा घोंपने की घटनाएँ कम हो गईं। एक दिन मुसलमानों की भीड़ ने बलेश्वर जी के मन्दिर पर आक्रमण की कोशिश की। उस से अगले दिन हिन्दू लोगों ने दरगाह वली शाह मुराद पर आक्रमण कर दिया। हिन्दु लोग जानते थे कि वहाँ भारी मुकाबिला किया जावेगा। इस कारण इस आक्रमण की भारी तैयारी की गई। लगभग दो सौ हिन्दू युवक भिन्न भिन्न दिशाओं से एक निश्चित समय पर वहाँ पहुँच गए। फाटक पर के दो चपरासियों को मार कर लोग भीतर घुस गए। यह इतना जल्दी जल्दी हुआ कि फाटक पर के चपरासियों को दरगाह के भीतर सूचना भेजने का अवसर ही नहीं मिला। फाटक खोल जब भीड़ दरगाह में प्रवेश करने लगी तो खतरे का घंटा बजा दिया गया। इस घंटे का शब्द सुन कर सराय की ओर से बहुत से लोग हाथों में लाठियाँ ले आते हुए दिखाई दिये। आक्रमण करने वाले भी इस बात के लिए तैयार थे। वे प्रायः सब लाठियें लेकर और उन में से कई बंदूकें लिए हुए थे। परिणाम यह हुआ कि डट कर लड़ाई हो गई। दरगाह के रक्षको के पास भी बंदूके थीं। यदि आक्रमण करनेवालों की संख्या दरगाह की रक्षा करने वालों से बहुत अधिक न होती तो आक्-

मण करने वाले खदेड़ दिये जाते। आक्रमण करने वालो ने भाग कर रक्षाकरने वालो को घेर लिया। पाँच मिनट से अधिक नहीं लगे और दरगाह के रक्षक भाग खड़े हुए। आक्रमण करने वालों ने पीर साहब की आरामगाह में सब रक्षा करने वालो को धकेल दिया। इस मे पीर साहब ने स्वय और दूसरे बंदूकचियो ने मोरचा बाँध लिया। आक्रमण करने वालो ने भी पेड़ो के पीछे बैठ कर आरामगाह पर गोलिये चलानी आरम्भ कर दी। शेष लोगो ने सराय पर धावा बोल दिया।

सराय की रक्षा करने वाले पुरुष तो पहिले ही भाग गये थे और स्त्रियों ने आक्रमण करने वालो के आगे घुटने टेक अपनी जान की भिक्षा माँगनी आरम्भ कर दी। आक्रमण करने वालो को सराय मे कैद पन्द्रह औरते मिलीं। उन्हो ने बताया कि वे हिन्दू हैं और उन को भाँति भाँति के प्रलोभन देकर वहाँ लाया गया और पश्चात् उन को पतित कर उन्हें मुसलमान बनाया गया है और अब उनकी मुसलमानो सें शादी करने का प्रबन्ध किया जा रहा था।

जब सराय की औरते छुड़ा ली गई तो बंदूको से आरामगाह पर गोलिये चलाने वाले और दूसरे आक्रमण करने वाले पीछे हटते हुये दरगाह के फाटक से बाहर निकल गए, और फाटक का दरवाजा बद कर औरतो को साथ ले वहाँ से चले गए।

इस डाके के समाचार ने बम्बई नगर में भारी हलचल उत्पन्न की। मुसलमानो ने·यह विख्यात किया कि दरगाह में से मुसलमान यतीम औरतो और बच्चो को हिन्दू उड़ा कर ले गए हैं। और हिन्दुओ ने यह बात नगर भर में फैला दी कि दरगाह पीर शाह मुराद मे सैकड़ों हिन्दू औरते मुसलमान बनाने के लिए कैद कर रखी थी। वे सब छुड़ा ली गई हैं।

इस घटना का प्रभाव इस के पश्चात् दो दिन तक बम्बई में सैकड़ों छुड़ा घोंपने की वारदातो के रूप में हुआ। मन्नु दरगाह में वापस जा चुका था और उसके बताने पर मुसलमानो ने कई बार खुशी राम के

घर पर आक्रमण किया। एक दिन तो खुशी राम अपने मकान की खिड़की में बैठा हुआ और अपने साथ बीस महावीर दल के स्वयं सेवको की सहायता से आक्रमण कारियों का मुकाबिला करता रहा। अगले दिन वह मकान को ताला लगा कर और अपने परिवार तथा लक्ष्मी सहित बम्बई से बाहर चला गया। मुसलमान आक्रमणकारियों को विदित था कि मकान का मालिक मुसलमान है। इस से मकान को ताला देख आक्रमण बंद हो गए। दरगाहवाली घटना के पश्चात् बम्बई सरकार को शान्ति स्थापित करने में कई दिन लग गए। काग्रेसी क्षेत्रो मे यह कहा जा रहा था कि हिन्दुओ ने यह आक्रमण कर सैंकड़ों लोगों की हत्या करवाई है। जहाँ कहीं ये लोग एकत्रित होते थे वहाँ दरगाह वाली वारदात का उल्लेख अवश्य होता था और हिन्दुओं को मूर्ख और शरारती अवश्य कहा जाता था।

सदाशिव बम्बई असैम्बली की मीटिंग में गया तो अपने साथियो से उक्त बाते सुन कर तिलमिला उठा। एक आनन्द प्रिय देसाई ने तो यहाँ तक कह दिया, "जब तक यह मराठे बम्बई से निकाल नहीं दिये जाते तब तक यहाँ शान्ति नहीं हो सकती।"

इस पर एक श्री गोड़ बोले कहने लगे, "महाराष्ट्रियों की बात नहीं यह तो चितपावन ब्राह्मणों की बदमाशी है।"

इस पर एक और कहने लगे, "अजी पंजाबियों ने बम्बई में आकर यह झगड़ा खड़ा कर दिया है। मैं तो एक प्रस्ताव असैम्बली में रखने वाला हूँ कि सब ग़ैर-बम्बई वालों को पुलिस ऐमरजैंसी पावर्ज़ एक्ट के अधीन बम्बई से बाहर चले जाने की आज्ञा दे दी जावे।"

इन बातों को सुन कर सदाशिव का मस्तिष्क चक्कर खाने लगा, उसने कहा "मुझे बहुत शोक है कि मैं आप जैसे अनभिज्ञ लोगो की पार्टी में हूँ। आपको क्या यह भूल गया है कि दिल्ली से एक खुली चिट्ठी मिली थी? उस मे यह कहा गया था कि मुसलिम लोग बम्बई में डायरेक्ट ऐक्शन करने वाले हैं? उस चिट्ठी में तो इस के आरम्भ

होने की तारीख़ तक दे दी गई थी। इस समय पर की चेतावनी से लाभ न उठाकर हमने मुसलमानो पर प्रतिबन्ध नही लगाये। अब जब मुसलमानों कीं करतूत का हिन्दू विरोध करने लगे हैं तो तुम लोग उन को गाली देने लगे हो?"

गोड़बोले ने मुस्करा कर कहा, "ओह मै भूल गया था कि आप भी चितपावन हैं। परन्तु भाई सदाशिव। तुम तो सोशलिस्ट थे। यह आज क्या हो गया है?"

"और मेरा विचार था कि आप की स्त्री मुसलमान है।" एक और ने कहा।

सदाशिव ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा, 'सोशिलिस्ट होने से क्या न्याय अन्याय जानने की बुद्धि लोप हो जाती है? अथवा मुस-मान बीवी रखने से मनुष्य अंधा हो जाता है? भाई मुझ को आप की युक्ति समझ नहीं आ रही। देखिए झगड़ा मुसलमानो ने आरम्भ किया और जब सब कारोबार बंद होने लगा कारखाने बंद होने से मज़-दूर भूखे मरने लगे और सरकार शान्ति स्थापित करने मे सफल नहीं हुई, तो क्या यह लोगो का कर्तव्य नहीं कि अपनी भी रक्षा कर सके। दरगाह के विषय में मैं जानता हूँ कि सत्य ही वहाँ हिन्दू औरते कैद कर रखी जातीं हैं और उनको मुसलमान बन जाने पर विवश किया जाता है। अगर वहाँ से उन औरतों को छुड़ा लिया गया है तो कौन पाप हो गया है।"

सदाशिव की बात अभी समाप्त भी नहीं हुई थी कि सुनने वाले बिना उस के कहने की ओर ध्यान दिये वहाँ से चल दिये। उसी सायं काल कुछ और सदस्य दरगाह पर हिन्दू लोगों के आक्रमण की निन्दा कर रहे थे। एक कह रहा था, "इन लोगों ने दरगाह पर आक्रमण कर अपने को झगड़ा करने वाला सिद्ध कर दिया है। यह सावरकर पार्टी ही थी जिस का यह काम है। ये लोग सदैव से देश द्रोह करते रहे है। देखो न पंजाब में तो मुसलमानो ने शान्तिमय सत्याग्रह करने

का फैसला कर लिया है और यह हिन्दू अभी तक मूर्खता पर तुले हुए हैं।"

इस पर फिर सदाशिव को क्रोध आ गया। उस ने घूम कर उनसे पूछा, "यहाँ शान्तिमय सत्याग्रह हो रहा था शायद?"

वहाँ पर सब खड़े हुए सदाशिव का मुख इस प्रकार देखने लगे जैसे उस ने कोई युनानी अथवा अर्बी भाषा बोली है। उनको इस प्रकार अपनी ओर देखते हुए पा सदाशिव ने कहा, 'मेरा कहने का अभिप्राय यह है कि मुसलमानों ने बम्बई में तो सशस्त्र लड़ाई फ़साद किया है। इस से यहाँ पर उनका मुकाबिला यदि कोई सशस्त्र करता है तो क्या बुरा करता है? फिर दरगाह में, जो बदमाशी हो रही थी उस का भेद खोलने के लिए जो कुछ किया गया है वह प्रशंसनीय नहीं है क्या? इस बदमाशी को बंद कर तो सरकार की सहायता ही हुई है।"

"पर यह तो कानून को हाथ में लेने के बराबर है।" एक ने कहा

"कानून कहीं है भी? यदि कानून होता तो इतने दिन से चल रहा झगड़ा बद न हो जाता।"

सदाशिव के इस कथन पर सब अचम्भे में उसका मुख देखने लग जाते थे। कई लोग तो यह समझने लगते थे कि झगड़े की किसी घटना को देख कर उस का मन डोल गया है। यह समझ वे उस को वहीं खड़ा छोड़ दूसरी ओर चले जाते थे। सदाशिव उन लोगों का यह व्यवहार देख कर चकित रह जाता था। एक बात उस के मन में अंकित होती जाती थी कि देश की वर्तमान परिस्थिति मे ये लोग राज्य करने के योग्य नहीं। मुसलमानो को इस प्रकार खुली छुट्टी देनी और उन लोगों की निन्दा करनी जो देश में अशान्ति उत्पन्न करने वालों का विरोध कर रहे हैं, देश द्रोह से कम अपराध नहीं। ऐसा समझ

वह अपनी पार्टी के लोगों को खड़ी खड़ी सुनाने का विचार कर रहा था। यह अवसर उसे पार्टी की मीटिंग में मिला।

पार्टी की मीटिंग में बम्बई नगर और अहमदाबाद में शान्ति स्थापित करने मे सरकार की असफलता पर विचार करने के लिए एक प्रस्ताव रखा गया था। इस प्रस्ताव पर सदाशिव ने कई बार बोलने का यत्न किया और बहुत कठिनाई से पार्टी के प्रधान ने इस को पाँच मिनट दिये।

सदाशिव ने कहा, "मेरी बीबी दरगाह शाह मुराद में पली है। पीर वली इब्राहीम ने उसे अपनी लड़की मान कर पाला था। इस कारण जो बाते उस दरगाह के विषय में मैं जानता हूँ वह असत्य नहीं हो सकतीं, मै जानता हूँ कि हिन्दू लड़कियो को चुरा कर और धोखा देकर वहाँ लाया जाता है, उन से बदफेली करने के लिए गुडें उस दरगाह मे खिला-पिला कर तैयार रखे जाते हैं। उन औरतों पर बलात्कार तब तक जारी रखा जाता है, जब तक कि वे मुसलमान से विवाह करने पर राज़ी नहीं हो जातीं। ऐसी अवस्था मे उस दरगाह पर तो आज से कितने ही काल पहिले सरकारी कब्ज़ा हो जाना चाहिये था। हम जो इस समय प्रान्त की सरकार बनाए हुए हैं, प्रान्त में इस दरगाह जैसी संस्थाओ को सहन नहीं कर सकते। मैं चाहता हूँ कि हमारी पार्टी सरकार से यह माँग करे कि इस दरगाह पर सरकार अधिकार कर ले और इस के वली को पकड़ कर इस पर बरदा फरोशी करने का मुकद्दमा चलाया जावे।"

एक कांग्रेसी सोशिलिस्ट सदस्य ने कहा, "यह झूठ है। इस किसम के मज़हबी नेता को इस प्रकार झूठे इलज़ाम लगा कर कैद करने से भारतवर्ष की तमाम मुसलमान जनता को अपने ख़िलाफ कर लेने के बराबर है। इस किस्म की बेवकूफी काग्रेस पार्टी नहीं कर सकती।"

सोशिलिस्ट सदस्य के इस वक्तव्य पर पार्टी के सब सदस्यों ने तालीयें पीटीं। इस बात का उत्तर देने के लिए सदाशिव ने खड़े हो कर समय माँगा तो प्रधान ने कह दिया, कि "बस हो गया।"

[१०]

सदाशिव के पार्टी में इस प्रकार खुल कर मुसलमानों के और दरगाह शाह मुराद के विरुद्ध कहने पर उस की चर्चा नगर भर में फैल गई। कांग्रेसी सदस्य ही उसकी निन्दा करने लगे थे। दूसरी ओर हिन्दु ख्याल के लोग यह जान गए कि दरगाह के भीतर की बाते सत्य ही बहुत भयानक हैं, वे सदाशिव की प्रशंसा करने लगे। उस से कही बातों का समाचार मुसलमानों और पीर इब्राहीम तक भी पहुँचा। वह उसके इस कहने पर कि उस की लड़की से उसकी शादी हुई है जल भुन गया। उसने उसका पता निकाला तो उसके अचम्भे का ठिकाना न रहा। उसे यह मालूम नहीं था कि सदाशिव नौकरी छोड़ कर मकान भी बदल चुका है। उसने उस की खोज आरम्भ कर दी

धीरे धीरे झगड़ा शान्त हो चला था। कुछ लोग तो लड़ते-लड़ते थक गए थे। कुछ मुसलमान यह अनुभव करने लगे थे कि लड़ाई में दूसरे भी चोट कर सकते हैं, और उनकी चोट अधिक गहरी भी हो सकती है। इस के साथ यह भी बात थी कि मुसलिम लीग समझने लगी थी कि उस ने बम्बई और अहमदाबाद के मील मालिकों को काफ़ी नुकसान पहुँचा दिया है। मुसलिम लीग के नेताओं का यह विश्वास हो गया था कि मीलों के मालिक कांग्रेसी नेताओं पर ज़ोर डाल रहे हैं कि मुसलमानों से समझौता कर लें।

इस पर भी एक दिन लगभग बीस मुसलमान गुंडों ने सदा शिव के मकान को रात के दो बजे, जब नगर में कर्फ्यू आर्डर लगा हुआ था, घेर लिया। मकान का दरवाज़ा तोड़ भीतर घुस गए और सदा-शिव के हाथ पाँव बाध कर कमरे के एक कोने में डाल कर उस की

बीवी और सास को पकड़ कर ले गए। अगले दिन पुलिस ने मकान के दरवाजे टूटे हुए देख मकान की तलाशी ली, तो सदाशिव के बंधन खोले। सदाशिव ने थाने में जाकर रिपोर्ट लिखवाई कि उसे यकीन है कि उसके घर में डाका डालने वाले दरगाह के गुंडे थे। पुलिस दरगाह के विरुद्ध रिपोर्ट लिखने में झिझकती थी। सदाशिव ने जब बताया कि वह असैम्बली का मेम्बर है तो उन्होने रिपोर्ट तो लिख ली परन्तु उस पर कार्यवाई करने के लिए तब तक तैयार नहीं हुए जब तक के सदाशिव प्रीमियर से लिखवा कर नहीं लाया। इस मे दो दिन लग गये और जब पुलिस वहाँ पहुँची तो ख़नीज़ा, जिस ने अब अपना नाम शान्ति देवी रख लिया था, और उस की माँ दोनो बम्बई से बाहर लेजाई जा चुकी थीं।

सदाशिव बहुत परेशान था। एक तो उसे पुलिस के सम्मुख और दूसरे प्रीमियर के सामने लज्जित होना पड़ा। दूसरी ओर स्त्री भी नहीं मिली। वह इतने दिन से खुशीराम से नहीं मिला था। अब उसने अनुभव किया कि किसी ग़ैर सरकारी संस्था से सहायता लेनी चाहिए। खुशीराम अब बम्बई में लौट आया था। उसने जब सदाशिव की कहानी सुनी तो कहा कि दोनों औरतें ज़रूर हैदराबाद में हैं। उसका अनुमान था कि पीर साहब के हैदराबाद में बहुत से मुरीद हैं और औरतों के सुरक्षित रखने के लिए उस रियासत से अधिक उपयुक्त स्थान और नहीं हो सकता।

खुशीराम का कहना था कि इस प्रकार की बातों का पता करना सहज नहीं। सरकार, जिसके पास अनन्त साधन हैं वह भी खोज करे तो सफलता निश्चित नहीं।

"पर खुशीराम जी" सदाशिव का कहना था। "मैं यत्न करना चाहता हूँ।"

"मुझे आपकी मनोवृत्ति में यह परिवर्तन देख बहुत प्रसन्नता हुई है। बताइये, मैं आपकी कैसे सहायता कर सकता हूँ।"

"आप ही बताइये न कि मैं क्या करूँ। आप ऐसी बातों में बहुत अनुभव रखते हैं। यदि कुछ धन की आवश्यकता हो तो मेरी सास का कुछ रुपया मेरे पास रखा है। वह खर्च हो सकता है। मैंने दुनियाँ के विषय में भूल की थी और उसका मुझे अभी तक शोक है। यद्यपि उसके न मिल सकने से ही मुझको ख़नीज़ा मिली थी, इस पर भी मैं उसके साथ न्याय नहीं कर सका। वह मेरे ही कारण अपहरण की गई थी।"

"देखिए सदाशिव, एक बात मैं आपको बताना चाहता था, वह आपसे मिल न सकने के कारण अभी तक बता नहीं सका। पिछले झगड़े के दिनो में हम लक्ष्मी को छुड़ाने मे सफल हुए हैं। वह मन्नू के पास थी। उसे उससे मुक्त करा कर मैंने लाहौर भेज दिया है।"

"अच्छा! यह तो बहुत खुशी की बात है। कहाँ से मिली थी वह?"

"दरगाह शाह मुराद के पिछवाड़े में, एक मकान में रहती थी।"

"भाई खुशीराम, इन औरतों को छुड़ाने का भी कोई उपाय बताओ। मुझको विश्वास है कि वे दोनों मेरे साथ रहना पसन्द करेंगी। इस समय जो अत्याचार उन पर हो सकता है, उसका ध्यान कर रोंगटे खड़े हो जाते है?"

खुशीराम गहरी सोच में पड़ गया। कुछ काल तक सोचने के पश्चात् उसने कहा, "अच्छी बात है एक दो दिन में मैं आपसे मिलूँगा। यदि कोई तरकीब निकल सकी, जिससे शान्ति देवी और उसकी माँ छुड़ाई जा सकीं तो हम यत्न करेंगे।"

तरकीब निकल आई और सदाशिव से बता दी गई। उसने एक सहस्र रुपया खुशीराम को देते हुए कहा, मेरे पास कुछ और भी है और दे सकता हूँ। आप इसमें पूरा यत्न करें।"

[११]

उक्त अध्याय में लिखी बात-चीत के दो तीन दिन पीछे की बात है। एक युवक लहु लुहान हुआ दरगाह के फाटक के बाहर अर्ध चेतनावस्था में पड़ा देखा गया। आजकल फाटक बन्द रहता था। आने-जानेवालों के लिए खिड़की खुल जाती थी। भीतर से कोई बाहर आने लगा तो खिड़की खुली और वह आदमी बाहर निकला। खिड़की उसके निकलने के पश्चात् अभी बन्द नहीं हुई थी कि निकलनेवाले की दृष्टि उस घायल पर पड़ी। उसने खिड़की को बन्द नहीं होने दिया और उस घायल के पास जाकर पूछा कि कौन है। जब कुछ जवाब नहीं मिला तो उसने उसके हृदय पर हाथ रख कर देखा कि उसका दिल धड़क रहा है। उसने उसकी तहमत उठाकर देखा और विश्वास कर लिया कि घायल कोई मुसलमान है। पश्चात् उसने खिड़की बन्द करने के लिए खड़े चौकीदार को कुछ कहा। उसने आवाज दी जिससे भीतर से दो और आदमी आ गए और उस घायल को उठाकर भीतर सराय में ले गए।

सराय में ले जाकर देखा गया कि उसके कंधे पर छुरे का घाव है वहाँ उसकी मरहम पट्टी की गई। जब उसे शोरवा इत्यादि पिलाया गया और उसे होश आई तो उसने बताया कि, "मैं बाहर सड़क पर जा रहा था कि एक काफिर ने पीछे से आकर छुरा दे मारा। मैं उसे पकड़ने लगा तो वह भाग गया। खून बहुत निकल जाने के कारण मेरे में कमजोरी बहुत मालूम होने लगी थी। मैंने देखा कि बड़ा-सा फ़ाटक है। अवश्य किसी धनी आदमी की कोठी होगी, इससे सहायता की आशा से बैठ गया। खून बहुत निकल जाने की वजह से मुझमें बेहोशी आने लगी तो मैं लेट गया। मुझको होश आई है तो अपने को यहाँ पाता हूँ।"

"तुम कहाँ के रहनेवाले हो?"

"मैं यू० पी०, लखनऊ का रहनेवाला हूँ। दसवीं जमायत पास की है और तीन दिन से बम्बई में काम की तलाश में आया हुआ हूँ।"

"क्या नाम है ?"

"नज़ीरुद्दीन।"

"यहाँ किस जगह ठहरे हो ?"

"दादर, पंजाबी सराय में।"

"कुछ सामान भी है ?"

"एक छोटा-सा बिस्तर है; वहाँ सरायवाले के पास रखा हुआ है।"

"अच्छी बात है तुम यहाँ ही रह सकते हो। जब ठीक हो जावोगे तो बिस्तर ले आना।"

"पर साहब मैं बेकार हूँ और जेब में रुपये भी सिरफ़ चार रह गए है। इसलिए यहाँ शहर से इतनी दूर रह कर क्या करूँगा ?"

"देखो यहाँ के मालिक आवेंगे तो कहना। वह तुम्हारी बहुत कुछ मदद कर सकते हैं।"

"वे कब आवेंगे ?"

"शाम की नमाज के बाद यहाँ आते हैं। तुम उनसे कहना।"

नज़ीरुद्दीन खंमोश हो गया। मरहम पट्टी करनेवाला चला गया। बाद दोपहर उसको चाय और खाने को भुने चने दिए गए। रात होते-होते पाँच आदमियों के साथ पीर इब्राहीम साहब आये। सराय के सब आदमी उठकर उनकी दुआ लेने के लिए घुटनों के बल होकर उनके चोगे के किनारे को आँखों से लगाने लगे। वे एक हाथ में तसबीह लिए हुए मुख में कुछ बुरबुराते हुए चले आ रहे थे। जब वे नज़ीरुद्दीन के सामने पहुँचे तो उसने भी दूसरो की भाँति उनके चोगे को आँखों से लगाया। पीर साहब उसके सामने ठहर गए। उसे उठने

का संकेत कर कहने लगे, "इन काफरों को छुरा चलाना भी नहीं आता।"

"हजूर", नजीरुद्दीन ने झझकते हुए कहा, "मैं जख्मी हो जाने के बाद भी उसको मार डालने की ताक़त रखता था, मगर वह भाग ही गया।"

"ख़ैर छोड़ो इस बात को। क्या करना जानते हो!"

"दसवीं जमायत तक पढ़ा हूँ। जिसम तो आप देख ही रहे हैं कि वर्ज़िश से कैसा गठ गया है। कहने से मुराद यह है कि कुली के काम से लेकर एक बाबू के काम तक, सब कुछ कर सकता हूँ।"

"बहुत अच्छी बात है। उम्मीद है कि दो दिन तक म्हारा जख़्म ठीक हो जावेगा। तब तक यहीं ठहरो।"

पीर साहब चले गए। नजीरुद्दीन ने अपने पास बैठे आदमी से पूछा, "ये कौन थे?"

"यहाँ के मालिक थे।"

"इस कोठी के मालिक। यह तो कोई खुदा दोस्त मालूम होते थे।"

दूसरे ने मुस्करा कर कहा, "भाई यह कोई कोठी नहीं है। यह तो एक दरगाह है। आप हज़रत वली हैं। इस दरगाह के पीर हैं आपका नाम हज़रत वली इब्राहीम साहब है।"

"दरगाह! मैंने समझा था किसी धनी आदमी को कोठी है। खुदा का शुकर है कि किसी काफर से वास्ता नहीं पड़ा।"

धनी की कोठी की बात सुनकर समीप बैठे सब हँसने लगे। नज़ीरुद्दीन भी हँसने लगा। इस समय एक और ने पूछा, "इस सड़क की तरफ कैसे चले आए थे?"

"मैं समझता था कि इस तरफ बड़े-बड़े लोगों की कोठियाँ हैं। किसी के यहाँ नौकरी मिलने की उम्मीद में घूम रहा था। मुझको लोग कहते हैं कि औरतें मेरी सूरत-शक्ल को पसन्द करती हैं।"

उसकी इस बात को सुन सब हँसने लगे मगर वह सिरफ़ मुस्करा कर रह गया। इस पर एक ने उससे हँसी करने के लिए कह दिया, "दोस्त! बात तो किसी ने ठीक ही बताई मालूम होती है। खुदा ने जिस्म अच्छा गठा हुआ दिया है और देखने में भी नक्श खराब नहीं है, मगर औरतों को बस में करनेवाली चीज़ धन तुम्हारे पास नहीं है। इससे मेरी राय मानो और औरत का तब तक नाम न लेना जब तक जेब में काफ़ी पैसा न हो जावे।"

दो दिन में नज़ीरुद्दीन की मेल-मुलाकात सराय में दूसरे रहने-वालों से खूब हो गई थी। वह हँसोड़ मुख और दूसरों से मज़ाक में उड़ाए जाने को पसन्द करता था। दो दिन में ही वह वहाँ रहनेवाले सब लोगों से हिल-मिल गया और उनके साथ अपनी और उनकी अंतरंग बातें करने लगा था। उसको आए हुए तीसरा दिन हुआ था कि उससे किसी ने पूछ ही लिया, "भाई नज़ीर, तुमसे किसी औरत ने आज तक मुहब्बत की है या नहीं?"

"चुप रहो दोस्त। यह बातें कहने-सुनने की नहीं होतीं।"

"तब तो ज़रूर सुननी चाहिए। मैं तो तुमको अभी बच्चा ही समझता था।"

"तो ठीक ही समझते थे। औरतों के मुहब्बत करने के यह मायने नहीं कि मैंने भी उनसे मुहब्बत की है।"

"तो क्या तुम्हारा इससे यह मतलब है कि तुम्हें क़िसी ने प्यार किया और तुमने उसकी ओर देखा भी नहीं।"

"बिल्कुल यही मतलब है।"

"वल्लाह! हमसे तो ऐसा हो नहीं सकता। और मैं समझता हूँ कि ऐसा होना भी नहीं चाहिए।"

"तुम तो फिर पूरे भैंसे ही हो। भाई जॉन। मन-पसन्द की वस्तु न हो तो कैसे मुहब्बत हो सकती है। यह तो पशुओं की बात हुई। जिस गाय-भैंस को देखा वहीं पर इश्क सिर सवार हो गया।

"मरहबा। बलिहारी हूँ आप पर। पर दोस्त यह तो बताओ कि तुम्हारे पसन्द की अभी कोई मिली भी है या नहीं।"

"नहीं। अच्छा भाई यह तो बताओ कि हमारे पीर साहब ने अपने लिए इतनी बड़ी आरामगाह बना रखी है, क्या अकेले हैं या इनका बहुत बड़ा कबीला है?"

"कबीला तो लम्बा-चौड़ा नहीं, पर हकीकत यह है कि यह आज-कल हिन्दुओं के हमले से डरते बहुत हैं। इसलिए बहुत से आदमी अपनी हिफाज़त के लिए ऐसे ही रख छोड़े हैं। वैसे तो इनकी एक बीवी और एक लड़की थीं। मगर वे एक हिन्दू के चुंगल मे फँस गई थीं। हम सब ने मिलकर उनको छुड़ाया और अब वे कहीं बाहर भेज दी गई हैं।"

"कहाँ?"

"यह तो हमें मालूम नहीं। सुना है कहीं हैदराबाद की तरफ हैं।"

"बहुत खूबसूरत है इनकी लड़की?"

"मैंने इतनी खूबसूरत औरत और कहीं नहीं देखी।"

"तुम्हारी बातें मेरे मन में गुदगुदी पैदा कर रही हैं।"

"बड़े अजीब आदमी हो जी। बिना देखे ही मुहब्बत करने लगे हो।"

"तुमने तो देखी है न?"

"देखी ही नहीं बल्कि उसके ख़ाविन्द के घर से उठाकर मैं ही नीचे मोटर तक लाया था।"

"ओह! तो सचमुच ही वह बहुत खूबसूरत है।"

"वल्लाह। कुछ न पूछो। पर हम ग़रीबों को उसका ख्याल मन में लाकर अपना दिमाग़ ख़राब नहीं करना चाहिए।"

"तो उसकी शादी किसी बहुत अमीर के साथ हुई है शायद।"

"नहीं, बहुत अमीर तो नहीं। परन्तु लड़का बहुत खूबसूरत है। सुना है कि बहुत शरीफ भी है।"

"तो फिर उसको वहाँ से निकाला क्यों है ?"

"वह था हिन्दू। ख्याल यह था कि इनकी लड़की उसे मुसलमान बना लेगी। मगर हुआ इससे उलटा। लड़की और उसकी माँ भी, दोनों खुद हिन्दू हो गईं।"

नज़ीरुद्दीन ने आगे बात नहीं चलाई। वह चुपचाप अपने मन में कुछ सोचता रहा। उससे बातें करनेवाले ने यह समझा कि उस पर इश्क का भूत सवार हो रहा है। इससे मन ही मन मुस्कराता हुआ उसके पास से चला गया।

इससे अगले दिन नज़ीरुद्दीन को पीर साहब ने बुलाया और अपने सामने बैठने को कहकर पूछा, "ज़ख़्म का क्या हाल है ?"

"अब तो ठीक मालूम होता है।"

"तुम मेहनत का काम कर सकोगे ?"

"जी हाँ। मैं समझता हूँ कि अब मैं बहुत अच्छी तरह हूँ।" इतना कहकर उसने अपना ज़ख़्मी हाथ उठाकर और दो तीन बार ऊपर-नीचे हिलाकर दिखाया।

"मेरा मतलब यह नहीं है। मैं तुमको ग़ल्ला ढोने के लिए नहीं लगा रहा। मेहनत से मेरा मतलब है कि सफ़र पर जा सकते हो ?"

"जी हाँ। बख़ूबी जा सकता हूँ।"

"लेकिन तुम पर मैं कितना एतबार कर सकता हूँ ?"

"अज़मा कर देख लीजिए।"

"जो लोग मैंने यहाँ रखे हुए हैं, वे सब बेवकूफ़ हैं। काम कम करते हैं और शोर ज्यादा मचाते हैं। देखो, एक बात मैं तुमको बताता हूँ। जो इन्सान अपने काम से वास्ता रखता है और फ़ज़ूल की बातों की ओर त्वज्जो नहीं करता, वह हमेशा अपने मक़सद में कामयाब होता है। अगर तुम वायदा करो कि रास्ते में औरतों के पीछे नहीं भागते फिरोगे तो मैं तुमको अपने यहाँ नौकर रख सकता हूँ।"

"हुजूर। मैं जब जख्मी होकर इस दरगाह के फाटक पर आया था तो मेरा ख्याल था कि यह किसी अमीर का घर है। पहिले दिन ही जब आप के दीदार हुए थे तो मैं समझता था कि किसी अमीर लाखोंपति से गुफ्तगूह कर रहा हूँ। पीछे मुझको मालूम हुआ कि आप कौन हैं और क्या हैं। जब से मुझको आप की असली सिफ्त मालूम हुई है, तब से ही मेरे मन में हुजूर की खिदमत करने का ख्याल उठ रहा है। अब आप ने मेरे सामने मेरे मन की बात कह-कर मेरे रोएँ-रोएँ को खुश कर दिया है। मै आपकी खिदमत बजा लाने के लिए अपनी जान तक हाजिर करने को तैयार हूँ। हुक्म दीजिए और देखिए कि मैं कितनी जाँ फ़शानी से हुक्म बजा लाता हूँ।"

"तुम बात करने में तो बहुत चालाक मालूम होते हो। अगर काम भी इतनी ही खूबी से कर सको तो मैं तुमको सोने का बना दूँगा।"

"हुजूर, अज़मा कर देखिए।"

"अच्छा तो यह लो। यह तुम इस ऊपर लिखे पते पर ले जाओ और तीन-चार दिन में इसका जवाब लेकर वापस आना चाहिए।"

[१२]

नज़ीरुद्दीन को एक चिट्ठी दी गई थी। उस पर हैदराबाद रियासत हौशंगाबाद का पता लिखा था। उसको आने-जाने और रास्ते में खाने-पीने लायक खर्चा दिया गया और लक्ष्य-स्थान पर पहुँचने का मार्ग तथा रेल का टाइम टेबल दे दिया गया था। उसको यह बता दिया गया था कि उसने अपना काम अथवा लक्ष्य-स्थान किसी को नहीं बताना। नजीरुद्दीन पीर साहब से आज्ञा लेकर जब बाहर आया तो उसका हृदय धक-धक कर रहा था। उसके मन में यह आशा अंकुर पकड़ती जा रही थी कि वह ज़रूर पीर साहब की लड़की के पास चिट्ठी लेकर जा रहा है। उसका बिस्तर सराय से पीर साहब ने

मँगवा लिया था और वह उसे साथ ले जाने को दे दिया गया। दरगाह में से जब वह जाने को तैयार हुआ तो सब उसके आस-पास जमा हो गए और पूछने लगे कि क्या उसकी नौकरी नहीं लगी? क्या पीर साहब ने उसकी मदद नहीं की। उसने यह बताया कि हज़रत ने उसको कुछ रुपये दिए हैं जिससे वह बम्बई में कुछ दिन रह-कर काम ढूँढ़ सके। अब वह काम ढूँढ़ने की कोशिश करेगा।

"आज बम्बई में फ़साद की वजह से बेकारी बढ़ गई है और काम मिलना मुश्किल है।" उनमें से एक ने कहा। सब लोग उसके चले जाने से अफ़सोस कर रहे थे। वह तीन दिन में ही सब का प्रिय हो गया था। एक ने तो यहाँ तक कहा कि वह उस दिन न जावे और उस शाम को हज़रत के आने पर वे सब उसकी सिफ़ारिश करेंगे। परन्तु नज़ीरुद्दीन का यह कहना था कि अब वह हज़रत से वायदा कर आया है कि नौकरी ढूँढ़ने की पूरी कोशिश करेगा।

सराय में रहनेवाले लोगों की संख्या ग्यारह थी और नज़ीरुद्दीन के जाने से सब शोक अनुभव कर रहे थे। नज़ीरुद्दीन ने सबसे हाथ मिलाया और कई लोगों से गले मिला। इस प्रकार सबसे सलामालैकुम कर दरगाह से बाहर निकल सीधा विक्टोरिया टर्मिनस की ओर चल पड़ा।

अगले दिन वह होशंगाबाद जा पहुँचा। चिट्ठी पर लिखे पते पर पहुँच उसने देखा कि एक आलीशान मकान है। मकान के चारों ओर एक अहाता है। अहाते के फाटक पर चौकीदार ने उसे रोक लिया। "कहाँ जा रहे हो?"

"बीबी फ़ातिमा के नाम की चिट्ठी है।"

"कहाँ से आए हो?"

"बम्बई से।"

"भीतर जा सकते हो।"

नजीरुद्दीन अहाते में से गुजरकर सामने तीन मंज़िली इमारत की ड्योढ़ी पर जा पहुँचा। वहाँ ख़ाकी वर्दी पहिने चपरासी खड़ा था। उसके पास पहुँच उसने कहा, "भाई! बीवी फ़ातिमा की चिट्ठी है।"

उसने भी वही प्रश्न किया जो बाहर चौकीदार ने किया था। चपरासी ने उसका उत्तर सुन कहा, "चिट्ठी मुझको दे सकते हो।"

"हुक्म है कि बीबी फ़ातिमा को ही दी जावे।"

"तब तो यहाँ रहना पड़ेगा। जब तक मालिक नहीं आ जाते वे चिट्ठी लेने बाहर नहीं आ सकती। मालिक शहर से बाहर गए हुए हैं।"

"मजबूरी है। चिट्ठी तो उनको ही दे सकता हूँ। हाँ! आप के मालिक की इन्तज़ार कर सकता हूँ। वे कब तक आवेंगे?"

"मोटर से गए हैं। रात को आ सकते हैं। नहीं तो कल आवेंगे।"

"तब तक तो बहुत देर हो जावेगी। पर मै कर भी कुछ नहीं सकता। यहाँ कोई और नहीं जो उनको यहाँ ला सके?"

चपरासी ने सिर हिला दिया। इस पर नज़ीरुद्दीन ने कहा, "तो भाई, कहाँ ठहरूँ? कल का चला हुआ हूँ। सफर की थकावट से चूर-चूर हो रहा हूँ।"

"नाम क्या है?" चपरासी ने पूछा।

"नज़ीरुद्दीन।"

"अच्छी बात है। तुम उस सामने के कमरे मे आराम कर सकते हो।"

"कुछ खाने-पीने और गुसल वग़ैरा का भी बन्दोबस्त हो सकेगा?"

"हाँ। कमरे के साथ सडास है। कमरे के पीछे नल लगा है। वहाँ एक और चपरासी है। उससे कहना। वह तुम्हारे खाने-पीने का बन्दोबस्त कर देगा।"

नज़ीरुद्दीन ने बिस्तर कंधे पर रखा और बताए स्थान पर जा पहुँचा। सत्य ही वहाँ एक और चपरासी बैठा था और उसने भी वही सवाल किए जो चौकीदार ने और पहिले चपरासी ने किए थे। उसने भी पहिले की भाँति ही उत्तर दिए। उसके उत्तरों से संतुष्ट हो इसने उसको बताया कि मालिक फारम पर गए हुए हैं और अगले दिन सुबह आवेंगे। तब तक वह इस मेहमानख़ाने में रह सकता है। इसके पश्चात् वह उसे कमरे के भीतर ले गया। उसको एक खाट पर बिस्तर रख, गुसल वग़ैरा करने के लिए कह, पूछने लगा, "अभी सुबह से कुछ खाया है या नहीं?"

"भाई, बिना टट्टी-पेशाब किए खाने को तबियत नहीं की।"

"तो आप इस से फ़ारिग़ हो जावें, तब तक मैं खाने के लिए जो कुछ इस वक्त मिल सकता है लाने की कोशिश करता हूँ।"

नज़ीरुद्दीन ने स्नानादिक से छुट्टी पा कपड़े बदल लिए। चपरासी तीन तन्दूरी रोटियाँ और उस पर सलूना रखकर उसके लिए ले आया। नज़ीरुद्दीन ने बाँए हाथ मे रोटी पकड़ ली और दाहिने हाथ से खाने लगा। वह चपरासी उसके लिए मट्टी के मटकैने में पानी भर लाया। पानी उसके सामने रख स्वयं भी उसके सम्मुख बैठ गया। नज़ीरुद्दीन धीरे-धीरे रोटी चबाते हुए चपरासी से बातें करने लगा, "बहुत बड़ी कोठी है आपके मालिक की।"

"हाँ! क्यों न हो। साहब पाँच सौ गाँवों के मालिक हैं।"

"ओह! यह ईस्माईल मंज़िल उनके अपने नाम पर है?"

"नहीं! यह उनके वालिद शरीफ़ का नाम था। इन का नाम अब्दुल करीम खाँ है। बहुत बहादुर आदमी हैं। शेर से कम का शिकार नहीं करते। साथ ही चार बीवियाँ और दस लौंडियाँ हैं। दो बाँदियाँ तो अभी-अभी बम्बई मे लूट के वक्त मिली हैं।"

"ओह! तो हिन्दनी हैं दोनों!"

"हाँ। सुना तो यही है। एक तो, सुना है, नहायत ही खूबसूरत है।"

"किस से सुना है?"

"मेरी बीवी ज़नान खा़ने में काम करती है। वह भीतर की सब बातें बताया करती है।"

"तब तो तुम बहुत खुशनसीब हो। तुम्हारे मालिक अच्छे हैं या बेग़में।"

"मालिक तो फ़रिश्ता हैं। जब भी मैंने कोई सवाल किया है, उन्होंने इन्कार नहीं किया। आज से दो साल की बात है। मैंने उनकी सब से बड़ी बेग़म की बाँदी सुखिया को अपनी बीवी बनाने की इजाज़त माँगी। हुजूर ने मेरा सवाल मन्जूर कर लिया और उसका मुझ से नकाह पढ़ा दिया गया। हम दोनों बड़े मज़े में हैं।"

"तो तुम्हारी बीवी अभी तक बड़ी बेग़म की ख़िदमत में हैं।"

"हाँ। सुना है कि मझली बेग़म नहायत ही ज़ालिम है।"

"यह फ़ातिमा नई बाँदी ही तो नहीं।"

"तो तुम नहीं जानते? वही तो है। सुना है कि पीर साहब ने डाके में उड़ाई हुई औरतों में से इन को इतना खूबसूरत पाया कि खाँ साहब के लिए भेज दिया है।"

"क्या पीर साहब ने इनका दाम वसूल किया है? कितना दाम लिया होगा।"

"यह तो मुझको पता नहीं। हाँ, इतना मैं जानता हूँ कि हमारे मालिक पीर साहब के मोतकिद हैं और दरगाह के लिए एक लाख रुपया सालाना देते हैं।"

"लाहौलविला। तब तो इनका क्या दाम लिया होगा।

"मगर यह क्या है कि फ़ातिमा बीवी की चिट्ठी बिना मालिक के उनको नहीं दी जा सकती।"

"सब बेग़मों के लिए यही हुक्म है। अगर तुम चिट्ठी चपरासी को दे देते, तो वह मालिक के आने पर उनको दे देता और वे खुद जनाने में ले जाकर दे देते। जब तुम ने कहा कि चिट्ठी फ़ातिमा के हाथ में देनी है तो मालिक की इज़ाजत के बिना ऐसा नहीं हो सकता।"

नजीरुद्दीन समझ गया कि इस जगह पर अभी तक सतरहवीं सदी के रिवाज चल रहे हैं। इस से वह ज़नानखाने के विषय में और सवाल करने लगा। उसने पूछा, "क्यों साहब! ये बेगमें लड़तीं नहीं। इतनी इकट्ठी कर रखी हैं, कि समझ नहीं आता कि इनका होता क्या होगा। बेग़मो के अलावा कई बाँदियाँ भी है।

"अजी मालिक बहादुर आदमी हैं। सब बेगमे और सुना, है, बाँदियाँ भी खुश हैं।"

"इस बात पर यकीन करना जरा मुश्किल है।"

"मालिक की शकल और कद्दोकदामत देखोगे तो शक की गुंजा-इश नहीं रहेगी।"

"तो फातिमा बीवी खुद चिट्ठी लेने आवेंगी।"

"कह नहीं सकता। ऐसा कभी पहिले नहीं हुआ। होता यह है कि मालिक खुद चिट्ठी ले लेते हैं और बेग़म के पास ले जाते हैं। वहाँ से जवाब ले आते हैं और चिट्ठीलाने वाले को दे देते हैं।"

"तब तो बहुत मुश्किल होगी। मुझे तो हुक्म है कि चिट्ठी बीवी फ़ातमा के हाथ मे ही दूँ। एक बात तुम कर सकते हो।"

"क्या।"

"तुम अपनी बीवी के हाथ फ़ातमा को कहला दो कि बम्बई से उसके लिए कोई चिट्ठी लाया है। मै समझता हूँ कि वे खुद मालिक से कहकर चिट्ठी खुद वसूल करने की कोशिश करेंगीं।"

"मगर यह नमकहरामी होगी। मुझ से यह नहीं हो सकेगा।"

"इस में क्या नमकहरामी है? चिट्ठी तो भीतर ले जानी नहीं। सिरफ़ इतना करना है कि उनको बता देना है। अगर उनको मालूम हो जावे कि उनकी चिट्ठी आई है और उनके सिवाय और किसी को नहीं मिलेगी तो वे अपनी मुहब्बत के जोर से शायद चिट्ठी खुद पाने की कोशिश कर सकें।"

"पर इस काम के लिए मुझको क्या मिलेगा?"

"भाई, मेरे पास तो कुछ है नहीं। हाँ अगर फ़ातिमा बीवी खुश हो गईं तो वे तुम्हारी बीवी को खुश कर सकती हैं।"

'मै अपनी बीवी से राय करके ही बता सकता हूँ।"

"ख़ैर तुम अपनी बीवी से कह देना। उसकी ख़्वाहिश होगी तो उनको खुश कर सकेगी। और फिर कभी फाइदे की त्वक्को की जा सकती है।"

चपरासी की बीवी फातिमा बीवी को खुश करने के लिए राज़ी हो गई।

[१३]

नज़ीरुद्दीन ने, जब वह अकेला था, चिट्ठी को निकाला और उसको बहुत ध्यान से देखा। उसने जेब से कलम निकाला और बहुत ही बारीक अक्षरो में लिफ़ाफे के पिछली ओर एक कोने म कुछ लिख दिया। ऐसा मालूम होता था कि उसने अपने हस्ताक्षर किये हैं। पश्चात् उसने लिफ़ाफे को फिर अपने बटुए में रख लिया और गम्भीर हो पीर साहब की लड़की को देख सकने की आशा करने लगा।

अब्दुल करीम खाँ उस रात नहीं लौटे। अगले दिन प्रातःकाल जब वे आए तो सीधे स्नानादिक के लिए भीतर चले गए। उस दिन तीसरे प्रहर नजीरुद्दीन की पेशी हुई। उसने निवेदन कर दिया, "मै हजरत इब्राहीम साहब पीर दरगाह शाह मुराद के पास से आया हूँ

मेरे पास उनकी लिखी एक चिट्ठी बनाम फातिमा बीवी है। मुझे हुक्म है कि वह चिट्ठी मैं उनके हाथ में ही दूँ

अब्दुल करीम खाँ यह सुन हैरान रह गया। उनको पीर साहब से यह उम्मीद नहीं थी। इस पर भी पूछने लगे, "क्या मुझ पर बेइत-बारी है ?"

"हुज़ूर, मैं यह नहीं जानता। गुस्ताख़ी के लिए मुआफी चाहता हूँ। मगर एक वफ़ादार नौकर की तरह वही करना चाहता हूँ। जो मालिक ने करने को कहा है।"

"लेकिन हमारे घर की औरतें कभी भी गैर-मर्द के सामने नहीं आईं।"

"तो हुजूर एक बात हो सकती है। मैं आज वापस बम्बई चला जाता हूँ और वहाँ से हज़रत की इजाज़त ले आता हूँ। तब ही चिट्ठी किसी दूसरे के हाथ में दे सकता हूँ।"

"हम तुमसे जबरदस्ती छीन ले तो ?"

"तो यह मजबूरी हो जावेगी। बेवफाई नहीं होगी। मैं आपके सामने खड़ा हूँ। आप किसी को हुक्म दे दीजिए कि मुझसे चिट्ठी छीन ले। मैं अपनी तरफ से पूरी कोशिश करूँगा कि वह छीन न सके। मगर आपके दरबार में हाजि़र हूँ। आप कई आदमियों को लगा दीजिएगा तो चिट्ठी देने पर मजबूर हो जावूँगा। मैंने अपना हक अदा कर दिया होगा और आपको चिट्ठी मिल जावेगी।"

"तो तुम महात्मा गांधी की तरह सत्याग्रह करोगे।"

"नहीं हुजूर ! मैं लड़ूँगा-झगड़ा करूँगा और कोशिश करूँगा कि मेरे जीते जी, चिट्ठी न छिन सके।"

"शाबाश। क्या नाम है तुम्हारा ?"

"नज़ीरुद्दन। हजूर !"

"क्या तनख़ाह पाते हो ?"

"अभी कुछ मुकर्रिर नहीं हुई। हज़रत फ़रमाते थे कि खाना खा लिया करूँ और छः महीने में नये कपड़े मिल जाया करेंगे।"

"हमारी नौकरी करोगे?"

"पहिले इस चिट्ठी का जवाब दे आऊँ।"

"हमारा मतलब यह है कि अगर तुम चिट्ठी दे दो तो हम तुमको नौकर रख लेंगे।"

"पर हुज़ूर, मेरा मतलब यह है कि चिट्ठी का जवाब बम्बई पहुँचा दूँ और पीछे अगर आपकी ख्वाहिश हो तो खिदमत में हाजिर हो जाऊँगा।"

"क्या तनख्वाह लोगे?"

"जो हुज़ूर, खुश होकर दे देंगे।"

"कुछ पढ़े-लिखे भी हो?"

"जी हाँ! उर्दू, हिन्दी, अंग्रेजी और दसवीं पास कर चुका हूँ"

"अच्छा तो भाई नजीर! चिट्ठी तो हम लेंगे। हाँ, हम तुमको नौकर रख सकते हैं। पचास रुपया महीना और खाना। बताओ मंजूर है।"

"चिट्ठी की शर्त के बिना नौकरी मंजूर है।"

"तो फिर तुम जा सकते हो। चिट्ठी इस तरह से नहीं ली जा सकती। रही तुम्हारी नौकरी। उसकी बाबत चिट्ठी वापस कर आना तो सोच लिया जावेगा।"

नज़ीरुद्दीन ने झुककर सलाम की और कमरे से बाहर निकल आया। मेहमानखाने के कमरे में पहुँच, अपना बिस्तर बाँधने लगा। इस समय चपरासी आया और पूछने लगा, "क्यों जी, जा रहे हो? काम हो गया क्या?"

"अजी साहब कहाँ? बैरंग वापस जा रहा हूँ।"

"मेरी बीवी ने तो फातमा बीवी से बात कह दी थी।"

"नज़ीरुद्दीन ने बिस्तर बाँध लिया और उसको उठाकर चपरासी से सलामालैकुम की और कोठी के फाटक की ओर चल पड़ा। फाटक पर चौकीदार ने उसका रास्ता रोक लिया और कहा, "जाने का हुक्म नहीं।"

"क्यों?"

"मैं क्या जानूँ।"

"किस का हुक्म कह रहे हो?"

"यहाँ सिरफ एक का ही हुक्म चलता है। मालिक का हुक्म है कि तुमको न जाने दिया जावे। अगर ज़बरदस्ती करो तो गोली से मार डाले जावोगे।"

"ज़बरदस्ती करने की क्या जरूरत है। मैं यहाँ बैठा हूँ।" इतना कहकर वह वहीं फाटक के एक ओर होकर भूमि पर बैठ गया। चौकीदार अपने स्थान पर बंदूक लिए खड़ा रहा। कुछ काल के उपरान्त कोठी का चपरासी आया और नजीररुद्दीन से बोला, "चलो, मालिक बुलाते हैं।"

"क्यो, क्या बात है?"

"हम दलील नहीं किया करते। मालिक से तकरार नही हो सकती। चलो।"

नज़ीरुद्दीन उठा और चपरासी के साथ हो लिया। वह बैठकख़ाने में, जहाँ उसकी पहिले मालिक से भेट हुई थी, ले जाया गया। अब्दुल करीम खाँ वहाँ उसके इन्तज़ार मे खड़ा था। उसे आया देख बोला, "लो भाई, तुम जीते और मै हारा। मैने एक और तरकीब निकाली है। वे चिक के पीछे तुम्हारे सामने आकर खड़ी हो जावेगी। तुम वह चिट्ठी उनको दे देना। मैं तुम्हारे पास खड़ा रहूँगा।"

"मुझे मंजूर है।"

इस पर मालिक नज़ीरुद्दीन को लेकर ज़नानख़ाने मे चला गया। वहाँ एक कमरे में ले जाकर उसको एक चिक के सामने खड़ा

कर दिया और कहा "अभी फ़ातमा बीवी आवेंगी। तुम यह चिट्ठी उनको दे देना।"

यह कह अब्दुल करीम खाँ पीछे हट एक कुर्सी पर बैठ गया। उसको दो मिनट से अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। चिक हिली और उसके पीछे से आवाज़ आई, "क्या चाहते हो?"

"हुज़ूर। एक चिट्ठी फ़ातमा बीवी के लिए बम्बई से लेकर आया हूँ। हज़रत का हुक्म है कि चिट्ठी उनके ही हाथ में दी जावे। मैं आपको जानता नहीं, पहिचानता नहीं। इससे खुदा परवर दिगार की कस्म देकर कहता हूँ कि अगर यह चिट्ठी आप की है तो यह ले लीजिए।" इतना कहकर उसने चिट्ठी चिक की तरफ़ बढ़ा दी। चिक के पीछे से एक हाथ निकला और चिट्ठी को लेकर पीछे हट गया। नजीरुद्दीन ने चिक की तरफ़ मुख कर और झुककर सलाम की और फिर मालिक-मकान की ओर देखकर बोला, "हुज़ूर! अब गुलाम को हुक्म दीजिए।"

अब्दुल करीम खाँ ने उसे यह कह कि वह बाहर बैठक में इन्तज़ार करे, स्वयं चिक के पीछे चला गया। फातमा शान्ति देवी ही थी और उसने अब्दुल करीम खाँ को भीतर आते देख चिट्ठी बिना खोले ही उसको दे दी। अब्दुल करीम ने लिफाफ़ा खोल चिट्ठी निकाल ली और उसको पढ़ने लगा। चिट्ठी पढ़कर पुनः लिफाफे में डालकर उसको देते हुए बोला, "तुम्हें पढ़कर अमल करने के लिए है।"

शान्ति देवी ने चिट्ठी ले ली और अपने कमरे में चली गई। वहाँ जाकर उसने चिट्ठी खोल पढ़नी आरम्भ की। उसमें लिखा था, "मुझ को यह जानकर बहुत खुशी हुई है कि अब तुम अब्दुल करीम खाँ साहब से बीवी बना ली गई हो। मेरी दुआ है कि तुम फूलो-फलो। अपने पिछले कामों को भूलकर अपनी जिन्दगी को खुशी और खुदा के नूर से पुर कर लो। तुम्हारी शादी, खाना आबादी

करनेवाली साबित हो। मैं कुछ दिनों में वहाँ आऊँगा। तुम्हारी माँ को ले जाऊँगा और तुम को इस ज़िन्दगी के फ़ायदे बताऊँगा। कभी-कभी इन्सान अपने भले की बात खुद नहीं सोच सकता। उसे पकड़-कर सीधे रास्ते पर लाने की ज़रूरत होती है। सो मैंने तुम्हारे लिए यह कर दिया है। खुदा हाफ़िज़।"

चिट्ठी पढ़कर उसने क्रोध में टुकड़े-टुकड़े कर डाली और फेंक दी। लिफाफा उसके हाथ से नीचे गिड़ गया था। उसका ध्यान उस तरफ नहीं गया। वह पलंग पर लेट गई और उसकी आँखो से आँसू बहने लगे। कितनी ही देर तक वह पलंग पर लेटी-लेटी रोती रही। उसकी माँ आई तो उसने मुख पर चादर डाल उसे छुपा लिया। माँ को मालूम नहीं था कि उसके पास बम्बई से कोई चिट्ठी आई है। इससे वह उसके पास बैठकर उसके सिर पर हाथ फेरकर पूछने लगी, "बेटी, क्या कोई नई बात हुई है?"

इससे शान्ति देवी और भी विह्वल होकर रोने लगीं। माँ ने बहुत ही प्यार से फिर पूछा, "क्या है बेटी? क्यों रोती हो? क्या वह पाजी फिर आया था?"

शान्ती देवी ने करवट बदलकर अपना मुख घुटनों में दे लिया और रोती रही। उसकी माँ भी दुखी हो रोने लगी थी। रोते-रोते उसकी नज़र नीचे गिरे लिफाफे पर पड़ी। उसने उसको उठाकर देखना चाहा कि कहाँ से आया है। उर्दू भाषा में पता लिखा था। वह पता उनके वहाँ का था। चिट्ठी शान्ति देवी के वहाँ के नाम, फ़ातिमा के नाम थी। उसने लिफाफे को उलटकर देखना चाहा कि कहाँ की मुहर लगी है। मुहर कहीं की नहीं थी। चिट्ठी दस्ती आई मालूम होती थी। एकाएक उसकी नजर बहुत बारीक अक्षरो में एक लिखावट पर गई। उसने लिफाफे को रोशनी में ले जाकर देखा। हिन्दी में नाम लिखा था। उसने बचपन में हिन्दी पढ़ी थी

और सदाशिव के घर मे रहकर उसका अभ्यास किया था। इससे उसने पढ़ा, लिखा था, "सदाशिव की नमस्ते।"

वह पढ़कर चकित रह गई। उसने समझा कि वह चिट्ठी सदाशिव की आई है। इससे उसने शान्ति देवी को हिलाकर कहा। "अरी कहाँ है यह चिट्ठी। क्या लिखा हैं उसने। और फिर कैसे आई है उसकी चिट्ठी।"

शान्ति देवी ने लेटे रहने पर हठ किया। वह समझती थी कि उसकी माँ पीर साहब की चिट्ठी के विषय में पूछ रही है। माँ ने फिर उसे हिलाकर कहा, "बेटी अगर यहाँ पता चल गया कि सदाशिव की चिट्ठी आई है तो बहुत बुरी होगी। लानेवाले की शामत आ जावेगी।"

सदाशिव का नाम सुनकर शान्ति देवी अचम्भे में अपनी माँ का मुख देखने लगी। माँ उसकी ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देख रही थी। शान्ति देवी ने पूछा, "कहाँ हैं वे ?"

"अरी पगली उनकी चिट्ठी आई है न।"

"कहा आई है ?"

"इस लिफाफे में। देखो न उनकी नमस्ते लिखी है।"

"नमस्ते ! कहाँ लिखी है ?" वह उठकर बैठ गई। माँ ने लिफाफे पर हिन्दी में लिखा दिखा दिया। शान्ति उसको पढ़कर एक दम गम्भीर विचार में पड़ गई। बहुत देर तक वह उस लिखावट को देखती रही। आखिर बोली, "यह उनकी लिखावट नहीं है। पर यह किस ने लिखा है ?"

"यह लिफाफा यहाँ पड़ा था।"

"पर यह पता तो हजरत की लिखावट में लिखा है। यह नहीं देखा तुम ने माँ ?"

माँ ने पुनः उर्दू की लिखावट को गौर से देखा और कहा,

"ठीक है, यह उस दुष्ट की ही लिखावट है। पर यह सदाशिव की नमस्ते कैसे आ गई?"

"मै समझ गई हूँ। जो इस चिट्ठी को लाया है वह शायद मुझ को जानता है और उन से मेरे सम्बन्ध को भी जानता है। नहीं तो उनकी नमस्ते न लिखता। अब मुझ को समझ आया है कि क्यों वह इस बात पर हठ कर रहा था कि चिट्ठी मेरे हाथ में ही दे।"

माँ उसकी बातो को नहीं समझी। उसने पूछा, "तुम क्या कह रही हो? मैं कुछ नहीं समझ रही।"

एकाएक शान्ति के मन मे एक विचार आया। उसने माँ से कहा, "ज़रा ठहरो, अभी आती हूँ।" इतना कह वह उस नौकरानी की खोज मे चली गई जो उसको यह कहने आई थी कि बम्बई से आई चिट्ठी को वह खुद लेने की कोशिश करे। अब उसे सब बात साफ-साफ समझ आ रही थी। वह नौकरानी बाहर से आती दिखाई दी। उसने उसको रोककर कहा, "ज़रा मेरे कमरे में आओ।"

वह नौकरानी डर गई। उसका ख़्याल था कि उसने जो बाहर की ख़बर बताई थी वह नहीं बतानी चाहिए थी। इसके लिए उसको डाँट पड़ेगी। इससे काँपती हुई वह शान्ति के पीछे-पीछे उसके कमरे में जा पहुँची। शान्ति ने उसको अपने सामने भूमि पर बैठने को कहा। वह बैठने से डरती थी। काँपते हुए उसने कहा, "हुज़ूर, मेरा कसूर नहीं है। मैं तो..."

"चुप रहो! देखो किसी से कहना नहीं। वह आदमी जो चिट्ठी लाया था चला गया, या है?"

"अभी मेहमान खाने मे ठहरा है।"

"तुम ने मुझको बताकर कोई बुराई नहीं की। वे मेरे बाप का भेजा आदमी है। मैं उससे कुछ पूछना चाहती हूँ। पूछ दोगी?"

नौकरानी घबराई हुई सामने खड़ी रही। उसके मुख से आवाज़ नहीं निकलती थी।

शान्ति ने फिर कहा, "देखो, अगर तुम इस चिट्ठी का जवाब ला दो तो तुम को एक रुपया दूँगी।"

नौकरानी ने जब यह बात सुनी तो उसकी जान में जान आई। उसकी मुस्कराहट निकल गई। उसने कहा, "बेग़म साहबा! हम ग़रीब आदमी हैं। हमको रुपये की बहुत ज़रूरत रहती है। मगर मेरी बात किसी से न कहना। नहीं तो नौकरी छूट जावेगी।"

"नहीं, डरो नहीं। मैं बड़ी बेग़म से तुमको अपने लिए माँग लूँगी और तुमको इतना कुछ दूँगी कि तुम मालामाल हो जावोगी। बताओ करोगी?"

"बताइए।"

शान्ति ने वही लिफाफा फाड़कर उसके एक छोटे से टुकड़े पर हिन्दी में लिख दिया, "तुम कौन हो?" यह कागज़ का टुकड़ा उसने नौकरानी को देते हुए कहा, "देखो सुखिया! अगर तुम वफ़ादारी से मेरा काम करोगी तो मै तुमको मालामाल कर दूँगी।"

सुखिया ने वह कागज़ का टुकड़ा अपनी आँटी में छुपा लिया और बोली, "अभी कुछ देर मे बड़ी बेग़म के काम से बाहर जाऊँगी, तो जवाब ले आऊँगी।"

उसे भेज शान्ति वापस अपने कमरे म आई और विस्मय में बैठी अपनी माँ को सब बात समझाकर बोली, "माँ, कोई उनका आदमी मालूम होता है।"

[१४]

अब्दुल करीम ....ख़ाने से बाहर आया तो बैठक में प्रतीक्षा कर रहे नज़ीरुद्दीन से बोला, "देखो नज़ीर। मैं तुम्हारी कारगुज़ारी देखकर बहुत खुश हूँ। शायद उस चिट्ठी का जवाब बेग़म साहिबा देना चाहेंगी। वह तुम लेकर चले जाना। मगर मैं चाहता हूँ कि अगर हज़रत तुमको नौकर रखना ना चाहें तो तुम यहाँ चले आना। मैं तुमको नौकर रख लूँगा।"

"हुज़ूर की ऐन अनायत है। यूँ तो मैं अभी हज़रत वली साहब का पक्का नौकर नहीं हूँ। फिर भी मै चाहता हूँ कि आपकी ख़िदमत में आने से पहिले उनको बता दूँ।"

"ठीक है, ठीक है ! मैं भी यही चाहता हूँ। पीर साहब की चिट्ठी का जवाब कल तक मिलेगा। तब तक तुम ठहरो।"

नज़ीरुद्दीन सलाम कर बैठक घर से बाहर आकर मैदान में खड़ा होकर मकान की बनावट को देखने लगा। कुछ देर तक देखकर वह मेहमानख़ाने को चला गया। वहाँ जाकर वह अपनी खाट पर लेट छत की तरफ देख उसकी धन्नियाँ गिनने लगा। इतने में वहाँ का चपरासी आया और उसको मकान से वापस आया जान पूछने लगा, "तो तुम चिट्ठी दे आए हो ?"

"हाँ भाई ! मालूम होता है कि बेगम साहिबा ने ख़ान साहब को राज़ी कर लिया है। मेरी तजवीज़ कामयाब हो गई है।"

"तो चिट्ठी तुमने अपने हाथ से दी है।"

"हाँ, वे चिक के पीछे आ खड़ी हुई थीं। मैंने खुदा की कसम डालकर कहा कि अगर आप फ़ातिमा बीवी हैं तो चिट्ठी ले लें। चिक के पीछे से हाथ निकला और मैंने चिट्ठी दे दी।"

"तो तुम ठग लिए गए हो। वह ज़रूर कोई नौकरानी होगी। यहाँ बेग़मों के इस तरह बाहर आने का रिवाज नहीं है।"

"कुछ हो मेरा तो ज़मीर साफ है। मैंने तो कसम देकर बात पक्की कर ली थी।"

"कुछ भी हो। हमारे मालिक बहुत होशियार हैं।"

"आपकी बीवी से पता चल जावेगा कि चिट्ठी वे खुद लेने आई थी या कोई नौकरानी।"

"उसको कैसे पता चलेगा। वह तो उस वक्त यहाँ पर थी। अभी-अभी गई है।"

"नौकरानियों के पेट में बात नहीं समाती। जब खाली बैठेंगी तो ज़रूर बातचीत होगी। और आपकी बीवी हमें असली बात बता देगी।"

रात का खाना खाते समय सुखिया आई और नज़ीर से कहने लगी, "फ़ातिमा बीवी को आपकी चिट्ठी मिल गई है। आपको उसने यह बात लिखकर भेजी है और आपसे जवाब माँगा है।" इतना कह उसने वही लिफ़ाफ़े का टुकड़ा उसे दे दिया जो शान्ति देवी ने दिया था।"

नज़ीर ने लिफ़ाफ़े के टुकड़े को उसके हाथ से ले लिया और पढ़ा। पढ़कर उसको बहुत खुशी हुई। वह समझ गया कि उसका लिफ़ाफ़े की पीठ पर लिखा उन्होंने पढ़ लिया है। उसने जेब से एक टुकड़ा निकाला और पेंसिल से उस पर बहुत ही बारीक अक्षरो मे लिख दिया, "उनका एक मित्र। उनके ही काम से आया हूँ।" नज़ीर ने वह काग़ज़ का टुकड़ा सुखिया को देते हुए कहा, "देखो। बेग़म साहिबा से कहना कि तुमने इनाम का काम किया है।"

"यह तो उन्होंने खुद ही कहा था।"

प्रातःकाल अब्दुल करीम फ़ातिमा के कमरे में आया और उससे पिछले दिन की चिट्ठी का उत्तर माँगने लगा, "क्या तुम भी चिट्ठी सीधे उसी के हाथ मे दोगी ?"

"मै इसकी ज़रूरत नहीं समझती। मैं आपसे डरती नहीं, क्योंकि मै कोई नाजायज़ बात नहीं कर रही। जो मै समझती हूँ वह आपको कहती हूँ और वही लिख दिया है। आप पढ़िएगा क्या ?"

"अगर तुम दिखाओ तो।"

फ़ातिमा ने अपने तकिए के नीचे से चिट्ठी निकालकर खाँ साहब के हाथ पर रख दी। उसने पढ़ी। लिखा था। "मुहतरम वालिद साहब। आपकी चिट्ठी मिली। आपकी दुआ के लिए शुकरिया। आपने पहिली शादी पर भी दुआ दी थी। दोनो में इख़्तिलाफ़ हो

गया है। देखूँ कौन-सी दुआ बर आती है। आपने बुढ़ापे में एक नौजवान लड़की की उमर बरबाद कर दी है। मगर यह तो आपका शेवा ही है। इसलिए गिला करने की गुंजाइश नहीं है। आपने जिस आदमी से मेरी शादी की बात कही है वह न तो मेरे लायक है और न ही किसी भी औरत से शादी करने के लायक। वह हक़ीकत में जेल का दारोग़ा है या भेड़-बकरियों को पालनेवाला गडरिया। इस पर भी मुझको खुदा ने इतनी समझ दी है कि जैसा वह रखे वैसा सबर से रहना चाहिए। आख़िर रंडी की बेटी तो हूँ ही। माँ की ख़्वाहिश थी कि एक नेक औरत बन जिन्दगी बसर करूँ मगर आपकी दुआ से एक पेशावर की जिन्दगी बन गई है। खुदा आप का भला करे।

"माँ को लेने के लिए आने की जरूरत नहीं। वे आपके साथ नहीं जावेंगी।

"कभी-कभी लिखते रहिएगा। आपकी चिट्ठी देखने से बचपन की वे सब बातें याद आ जातीं हैं जो आपकी आरामगाह में दिल को मुसर्रत बख़्शती रही हैं।"

इस चिट्ठी को पढ़कर खाँ साहब खिलखिलाकर हँस पड़े। चिट्ठी को बहुत एतयात से लपेटकर उससे कहने लगे, "तुम्हारी तारीफ़ के लिए शुक्रिया। अरे मैं गडरिया तो तुम भेड़ तो बनी। मैं जेल का दारोगा तो तुम चोर तो बनी। देखो फ़ातिमा! मुझको मजाक़ बहुत पसन्द है। पीर साहब के नौकर ने मज़ाक किया। उसने कहा कि चिट्ठी सीधे तुम्हारे हाथ में देगा, मैंने कहा ठीक है, वह मेरी बीवी का हाथ देख सकता है। उसने अपने मालिक की वफादारी में मेरी बेअदबी की। मैंने उसको अपना ही नौकर बना लिया। पीर साहब ने रोटी-कपड़े पर रखा था मैंने पचास रुपये साथ देने कबूल कर लिए हैं। अब तुम मुझको किसी भी औरत के लायक नही समझती और मैं तुमको सिरफ अपने ही लायक समझता हूँ।"

खाँ की इस प्रकार की बातों पर और चिट्ठी लानेवाले नौकर को अपनी नौकरी में ले लेने के समाचार से वह बहुत खुश हुई। खाँ ने यह देखा तो अपने को बहुत खुशनसीब मान वहाँ से चला गया।

शान्ति देवी को सुखिया से लाया गया काग़ज का टुकड़ा मिल गया था। अब वह आशा कर रही थी कि शायद वह वहाँ से निकल सकेगी। इसके लिए वह सोचती थी कि किस प्रकार उस जेलखाने से निकलना सम्भव हो सकेगा। उसने नज़ीर के जाने से पहिले एक सदेस और भेजा। उसमें उसने लिखा, "सवाल बहुत मुश्किल है। उनके भरोसे पर ही ज़िन्दगी बसर हो रही है। इससे अधिक लिखने का उसको साहस नहीं हो सका। उसे अभी सुखिया पर पूरा इतबार नहीं था।

सुखिया को एक रुपया देते हुए उसने कहा, "अभी तुम यह रखो। वालिद साहब कुछ दिन मे आवेगे। तुम्हे बहुत इनाम दिलवाऊँगी।"

शान्ति की माँ उससे कई कमरे दूर रहती थी। यूँ तो खाँ दोनो को अपनी बीवी बनाना चाहता था मगर जब उसे मालूम हुआ कि फ़ातिमा उसकी लड़की है तो उसने उसको अपनी लड़की की ख़िदमत करने पर लगा दिया। इस पर भी उसको दूसरी लौंडियों से ऊँचे दर्जे पर रखा। आज शान्ति की माँ आई तो उसने दरवाजा बन्द कर उसको धीरे से बताया कि उसने अपना सदेस सदाशिव को भेज दिया है। पीर साहब का नौकर, जो उनकी चिट्ठी लाया है, उनका मित्र है। शायद हिन्दू है। कुछ भी हो मैने यह ख़तरा तो सिर पर ले लिया है कि उससे सम्बन्ध बनाने का यत्न करूँ। इसके बिना कोई चारा ही नहीं।"

उसकी माँ ने कहा, "देखो बेटी। साहस से काम लेना। परमात्मा हमारी सहायता करेगा। और यदि कहीं इससे भी ज्यादा कष्ट हुआ, तो धीरज से सहन करना, निराश नहीं होना। आत्मघात करना

आदमियों का काम नहीं। तुमने एक दिन ऐसा कहा था। मैं इसको पसन्द नहीं करती।"

"माँ, मुझको एक बात का ही डर है कि हम जो जान जोखम में डालकर यहाँ से निकले और जब हम वहाँ पहुँचे तो वे मुझको भ्रष्ट हो गई समझकर स्वीकार ही न करें।"

"यह बात कितनी व्यर्थ करती हो तुम। हमारा यहाँ से बचकर निकल जाना इसलिए भी तो है कि यह जेलखाना है, यह दोज़ख है, यह बेइज़्ज़ती है। यहाँ रहकर हम अपने आत्मा को पतित कर रही है। मैं सच कहती हूँ कि जिन दिनों मैं गाने-बजाने का काम करती थी, उन दिनों भी मैं अपने को इतना पतित हुआ नहीं समझती थी। वहाँ भी बहुत हद तक आजादी की ज़िन्दगी बसर करती थी।"

[१५]

नज़ीररुद्दीन बम्बई पहुँचा तो दरगाह जाने से पहिले खुशीराम के घर जा पहुँचा। खुशीराम उसे देख बहुत प्रसन्न हुआ और उठकर उसे गले मिला। पश्चात् अपने समीप आदर से बैठाकर पूछने लगा, "सुनाओ भैया, क्या हुआ?"

"अजी क्या पूछते हो! जाते ही दाँव, पाओ बारह, पड़ा। मेरी बातचीत ने और मेरे रोब-दाब ने ऐसा प्रभाव जमाया कि मुझको, उसी काम पर लगाया गया जहाँ उनको न लगाना चाहिए था। पीर साहब ने शान्ति देवी के पास ही चिट्ठी देकर भेज दिया। उस समय मैं विश्वास से नहीं जानता था कि मै उनके पास जा रहा हूँ। यह तो वहाँ जाकर पता लगा।

"होशंगाबाद में एक साहब अब्दुल करीम खाँ भारी जागीरदार हैं। उनकी शरह के मुताबक उसकी चार बीबियाँ हैं और उनकी प्रथा के अनुसार उसकी दस रखेल हैं। इन दस में एक शान्ति देवी भी हैं। रियासत का मामला है। कानूनी तौर पर कुछ भी हो सकना कठिन है।

"शान्ति देवी ने एक पंक्ति लिख कर भी दी है। वह यह है।" इतना कह उसने वह कागज़ का टुकड़ा दिखा दिया जो शान्ति देवी ने सुखिया के हाथ भेजा था।"

खुशीराम ने पूछा, "दादा। तुम्हारा काम पीर साहब के यहाँ ख़तम हो गया है। इस पर भी मेरी राय है कि उनसे कहकर ही तुमको छोड़ना चाहिए। मै चाहता हूँ कि उनको संदेह नहीं होना चाहिए कि हम किसी प्रकार की ख़बर पा गए हैं।"

"एक और मजेदार बात हो गई है। खाॅ साहब मेरी बातो से इतने प्रभावित हुए हैं कि उन्होने मुझको अपने पास नौकर रख लेने की ख़्वाहिश जाहर की है। अब अगर आप कहें तो मै इस बात के लिए यत्न करूॅ।"

"पीर साहब की नौकरी तो छोड़ ही देनी चाहिए। उनसे कह देना कि खाँ साहब ने इसरार किया है कि तुम उनकी नौकरी में चले जाओ। वह तुमको जाने की स्वीकृति दे देगा। तब तुम यहाॅ आ जाना। उस समय तक हम अपनी अगली योजना बना रखेंगे।"

पीर साहब ने शान्ति देवी की चिट्ठी पढ़ी तो आग़बबूला हो गए। वे पूछने लगे, "तो तुमने चिट्ठी उसके हाथ मे दी थी?"

"हज़रत मै ठीक बात तो नहीं कह सकता। चिक के पीछे खड़ी थीं। मैंने कह दिया था कि वह चिट्ठी फ़ातिमा बीवी के लिए है। उन्होंने हाथ चिंक के पीछे से निकाला और चिट्ठी ले ली। खुदा जाने मुझको धोखा दिया गया है या नहीं। अगले दिन खाँ साहब ने यह चिट्ठी मुझको देकर कहा कि उन्होने दी है।"

"चिट्ठी तो उसके हाथ की ही लिखी है। मगर इस बदमाश सदाशिव ने उसके सिर पर ऐसा जादू किया है कि हर बात, जो मैं कहता हूॅ, उसे उलटी ही समझ पड़ती है।"

"हज़रत एक बात और है। खा साहब ने ख़्वाहिस जाहर की है मै उनके यहाँ नोकरी कर लूॅ। इसमें मै इजाजत चाहता हूँ।"

"क्या तनख़्वाह देने को कहते हैं?"

"मैंने पूछा ही नहीं। वे कुछ कहते जरूर थे मगर मैंने उस ओर ध्यान ही नहीं दिया। बात तो यह है कि आप क्या पसन्द करेंगे। बिना आपकी इज़ाज़त के मै इसकी बाबत सोच भी नहीं सकता।"

"तुम क्या पसन्द करोगे?"

"बम्बई जैसे शहर मे रहने की बजाय देहात में रहना ज्यादा पसन्द करूँगा। मगर मैं आपके अहसान के नीचे दबा हूँ। मुझको मरते हुए आपने पनाह दी थी। मै उसको भूल नहीं सकता।"

"मेरी तरफ से तुमको इज़ाज़त है। मैंने बम्बई छोड़ने का फ़ैसला कर लिया है। इसी साल के जून-जुलाई म मै कराची चला जाऊँगा। मैं इस काफ़िरों के मुल्क में रहना नहीं चाहता।"

"हैदराबाद तो ठीक जगह मालूम होती है। वहाँ इसलाम की हकूमत है। और खुदा का फ़ज़ल है कि एक दीनदार के हाथ में है।"

"ठीक है, ठीक है। यह लो।" पीर साहब ने पचास रुपये नज़ीरुद्दीन को देते हुए कहा "अब तुम जा सकते हो। देखना, अगर हैदराबाद में रहना चाहो तो उस बेवकूफ लड़की का ख़्याल रखना। मैंने बचपन से उसकी परवरिश की है और उससे मुहब्बत हो गई है। शायद ऐसा मौका आन पड़े कि वहाँ से भी मुसलमानो को कराची मे आना पड़े। तो उनकी वफ़ादारी से ख़िदमत सरंजाम देना। मै इसका सिला दूँगा।"

नज़ीररुद्दीन ने घुटनों के बल ही पीर साहब के चोग़े के किनारे को चूमा और सिर आँखों से लगाया और दुआ माँगी। यह पीर साहब ने दोनो हाथों को उसके सिर से कुछ ऊपर रखकर मुख में बुरबुराते हुए दी। नज़ीरुद्दीन दुआ ले उठकर दरग़ाह से बाहर आ गया।

वहाँ से वह सीधा खुशीराम के घर पहुँचा। वहाँ पर सदाशिव आया हुआ था। उसने नज़ीरुद्दीन के काम की प्रशंसा करते हुए कहा,

"मदन भैया। तुमने तो कमाल कर दिया है। मगर अब आगे जो कुछ करने को है वह तो इससे भी अधिक जान जोखम का काम है। अब तुम सोच लो कि इसमें हाथ डालना चाहते हो या नहीं। मैं तो जान हथेली पर रखकर वहाँ जा रहा हूँ। शायद कुछ और लोग भी जाने का विचार रखते हैं। वहाँ से बिना लड़े काम बनता दिखाई नहीं देता।"

"सदाशिव भैया। मैं तो खाँ साहब की नौकरी करने जा रहा हूँ। यह बात कि वहाँ क्या करना होगा और फिर उसमें कितनी हानि-लाभ की संभावना होगी, यह सब जब वहाँ आइएगा, विचार कर लिया जावेगा। मुझको तो वहाँ जाना ही है।"

"इसके अर्थ यह हुए कि छुड़ाने का यत्न करना ही है। तुम ठीक कहते हो। एक बार पहिले दंगा-फ़साद से डरकर मै एक निर्दोष बालिका को गुंडो के हवाले कर बैठा था। अब मैं समझ गया हूँ कि डरनेवालों के लिए संसार मे स्थान नहीं है।"

बात तय हो गई। नज़ीरुद्दीन जिसका असली नाम मदन मोहन था, हौशंगाबाद के लिए चला गया।

विष बीज

[१]

"जब मरहठों ने सन् १७५६ में हैदराबाद की सेना को पराजय दी थी तब ही हिन्दुस्तान से मुसलमानों के राज्य के उठ जाने की नींव पड़ी थी। मरहठे यदि अपनी जीत को उसके स्वभाविक परिणाम तक ले जा सकते, अर्थात् हैदराबाद पर अपना अधिकार बना लेते और निज़ाम हैदराबाद की हुकूमत को एक हिन्दू-राज्य मे बदल सकते तो हिन्दुस्तान में से मुसलिम राज्य का बीज नाश हो जाता। ऐसा नहीं हो सका और शायद हो भी नहीं सकता था। उस समय का बच गया बीज आज एक सुदृढ़ पेड़ बनकर भारत के मुसलमानों को अपनी छाया मे सुख और आराम पाकर फलने-फूलने का निमंत्रण दे रहा है।"

एक वक्ता, बीस-पच्चीस आदमियो की सभा में, ऊपर लिखी बात कह रहा था। उसने अपना कथन जारी रखते हुए कहा, "सन् १७६१ के पानीपत के तीसरे युद्ध के पश्चात् मरहठों का सूर्य अस्ताचल की ओर चल पड़ा और अँग्रेजो का सूर्य उदयाचल की ओर से ऊपर उठना आरम्भ हो गया।

"१७५७ के वर्ष मे पलासी का युद्ध हुआ। अँगरेजों की विजय हुई, परन्तु यदि मरहठे पानीपत के युद्ध मे परास्त न होते तो इस विजय से अँग्रेजी-राज्य पूर्ण भारतवर्ष में न हो सकता। दिल्ली पर राज्य पा जाने से वे इतनी शक्ति पा जाते कि फिर उन पर अँग्रेजो की विजय प्रायः असम्भव हो जाती। १७६१ में मरहठों की पराजय से अँग्रेज समझ गये कि मरहठों में किस बात की न्यूनता थी। मुगल-साम्राज्य तो जर्जरीभूत हो चुका था। उस पर शक्ति व्यय करना व्यर्थ समझ,

अँग्रेजों ने उसी दिन से अपना ध्यान मरहठों की ओर लगाया। सन् १७७६ में इनसे प्रथम युद्ध हुआ। यद्यपि इस युद्ध मे अग्रेज़ों की पराजय हुई तो भी मरहठो को इससे शक्ति नहीं मिली। तीन युद्धों में मरहठों को अँग्रेज़ो ने धराशाई कर दिया।

"अँग्रेजो की ताकत बढ़ती गई और इस बढ़ती ताकत को पहला धक्का १८५७ में पहुँचा। इस धक्के से अँग्रेजी-राज्य को बचाने के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बन्द कर भारत के राज्य को सरकार-अँग्रेजी ने अपने हाथ मे ले लिया। मलिका विक्टोरिया से घोषणा कराकर सरकार ने अपने राज्य को नया जीवन प्रदान किया। यह १८८५ तक चलता रहा। इस समय भारत के नीतिज्ञो ने देश मे पुनः जाग्रति उत्पन्न करने के दो आन्दोलन चला दिए। एक था राजा राम-मोहन राय की ब्रह्म-समाज' दूसरा था, स्वामी दयानन्द की आर्य-समाज। इन दोनो प्रयत्नो से भारत की सरकार अनभिज्ञ नहीं थी। राजा राम मोहन राय ने अपने पूरे बल से हिन्दुओं की कुरीतियों को दूर करने के लिए ब्रह्म-समाज का आन्दोलन चलाना चाहा और दूसरी ओर स्वामी दयानन्द ने उसी अभिप्राय से आर्य-समाज का आन्दोलन खड़ा कर दिया।

"भारत-सरकार ने इन दोनों आन्दोलनो को बेकार करने के लिए दो आन्दोलन उठाए। एक से आर्य-समाज के आन्दोलन को निर्जीव करने के लिए एक नई कौम के होने की सृष्टि कर दी। आर्य-समाज यह समझती थी कि भारतवर्ष मे रहनेवाली जाति हिन्दू है, जिसका पुराना नाम आर्य था। सरकार के प्रयत्नों से कांग्रेस की नींव रखी गई, जिसका उद्देश्य यह था कि हिन्दुस्तान में रहनेवाली जाति हिन्दुस्तानी कौम है और इसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्मिलित हैं।

"राजा राम मोहन राय और उसके साथी सरकार द्वारा उठाए कांग्रेस के आन्दोलन में सम्मिलित हो गए। इसके विरोध मे सरकार

ने कलनल बैंक द्वारा मुसलमानों की अलीगढ़-नीति की नींव रखवाई। अलीगढ-नीति से यह अभिप्राय है कि मुसलमान और हिन्दू दो जातियाँ हैं और मुसलमान हिन्दुस्तान मे हिन्दुओ पर हुकूमत करते रहे हैं। इससे हिन्दू-मुसलमान के साँझे अधिकार का तो प्रश्न ही नहीं रहता। राज्य होगा तो मुसलमानों का।

"हिन्दुस्तान में मुसलमानो की हुकूमत का बचा हुआ बीज हैदराबाद अलीगढ़-नीति का पोषक हो गया। हैदराबाद की रियासत ने अलीगढ़ की यूनिवर्सिटी को धन दिया और यहाँ के पढ़े ग्रेजुएटो को अपने यहाँ स्थान दिया। इसके प्रतिकार मे हैदराबाद रियासत के रूप में मुसलिम हुकूमत के बचे बीज की सिंचाई, अलीगढ़ के ग्रेजुएटों के रूप मे, पानी से होने लगी। अलीगढ़ के देश घातक झरने का दूसरा मुख हैदराबाद के अंदर ही बना दिया गया। यह उसमानिया यूनिवर्सिटी के रूप में और अधिक विषैला जल प्रस्तुत करने लगा।

"फिर यूरोप के प्रथम युद्ध के समाप्त होने पर हैदराबाद के राज्य-परिवार के सिर पर एक और पंख लग गया। निज़ाम हैदराबाद के लड़के के साथ टर्की के ख़लीफ़ा की लड़की का विवाह हो गया। यदि महात्मा गांधी की ख़िलाफ़त मूवमेंट सफल हो जाती तो निज़ाम हैदरा-बाद का लड़का ख़लीफा घोषित हो जाता, और फिर मुसलिम जगत के बल पर हैदराबाद दुनिया की एक प्रबल शक्ति बन जाती, जिसको न केवल हिन्दुस्तान के मुसलमान ही सहायता देते बल्कि दूसरे मुसल-मानी देशो के भी राज्य हैदराबाद की सहायता में खड़े हो जाते।

"जहाँ हैदराबाद को मुसलमानी राज्य के बीज के रूप में मरहठो ने छोड़ दिया; जहाँ इस बीज की सिंचाई और फिर भराई अलीगढ़ के कालिज के विद्यार्थियों और उसमानिया यूनिवर्सिटी के ग्रेजुएटो ने की, वहाँ महात्मा गांधी ने तो इस राज्य को न केवल हिन्दुस्तान के सिर चढ़ाने का, प्रत्युत दुनिया के गले में फाँस बनाकर डालने का यत्न किया।

"महात्मा गाधी अपने इस अज्ञानतापूर्ण आन्दोलन में असफल हुआ तो संसार ने सुख का साँस लिया। इस पर भी महात्मा गांधी अपनी मुसलमान पोषक-नीति के कारण हैदराबाद की प्रशंसा करता रहा। यहाँ तक कि एक बार सन् १६४० में महात्माजी ने यह कह दिया कि यदि अँग्रेज हिन्दुस्तान से चले गए और हैदराबाद, जो यहाँ पर सबसे बड़ी रियासत है, देश पर अधिकार जमा बैठी तो मै इसका स्वागत करूँगा।

"गाधी जी का खलाफ़त आन्दोलन और यह वक्तव्य भारत में मुसलमानी राज्य स्थापित करने का एक प्रबल प्रमाण है! इससे पहिले सन् १६३८ में, जब रियासत हैदराबाद का वहाँ के हिन्दुओं पर अत्याचार बहुत बढ़ गया था, और जब आर्य-समाज और हिन्दुओं ने सत्याग्रह आरम्भ कर दिया था, तो महात्मा गाधी ने इस रियासत के विरुद्ध सत्याग्रह का विरोध किया था। कहने का अभिप्राय यह है कि भारत में मुसलमानी राज्य के शेष बीज के बढ़कर पेड़ बनने में तथा पुनः मुसलमानी राज्य के स्थापित होने मे कांग्रेस और महात्मा गांधी भरसक यत्न करते रहे हैं

"यही कारण है कि आज हैदराबाद मसलिम लीग का एक भारी स्तम्भ बन रहा है। मुसलिम लीग चाहती है कि भारत के एक टुकड़े में इस्लाम का राज्य स्थापित हो। साथ ही मुसलिम लीग के एक कर्ता-धर्ता यह भी चाहते हैं कि वह राज्य अर्थात् पाकिस्तान, तो एक पग और आगे कूदने का स्थान बने जिससे वे पूरे हिन्दुस्तान पर इस्लाम का हलाली झंडा फहरा सके।

"यह इतिहास की बात तो मैंने इस कारण बताई है कि हैदराबाद का बीज नाश करना देश से मुसलमानी हुकूमत का बीज नाश करना है। अब वर्तमान परिस्थिति का वर्णन कर देना आवश्यक समझता हूँ। हिन्दुस्तान के वे सब लोग जो पाकिस्तान के हिमायती हैं और जो हिन्दुस्तान की हिन्दू कौम को नुकसान पहुँचाना चाहते हैं, सब

हैदराबाद में एकत्रित हो रहे हैं। साथ ही देश-भर की लड़कियाँ और औरतें भगा-भगाकर यहाँ लाई जा रही हैं। यहाँ की रज़ाकार संस्था भी इसी प्रयोजन से बनाई गई है।

"यदि आप इसका प्रमाण चाहते हैं तो यह हमारे शहर के ही जागीरदार अब्दुल करीम खाँ साहब की कोठी की तलाशी ले ली जावे। इनके पास जहाँ एक फौज को खिलाने लायक अन्न जमा है; जहाँ एक फौज के लड़ने लायक अस्त्र-शस्त्र जमा हैं वहाँ औरतों की एक फौज भी रखी हुई है जिनमें कई हिन्दू भी हैं। उनमें एक या शायद दो तो अभी-अभी बम्बई के बलवे मे चोरी की हुई हैं।"

यह एक वक्तृता थी जो एक नवयुवक साधू हौशंगाबाद के एक मकान में वहाँ के नवयुवकों की एक मंडली के सम्मुख दे रहा था। उसके मुख पर तेज और हाथों में स्फूर्ति दिखाई देती थी। नवयुवक साधू पंजाबी प्रतीत होता था। श्रोतागण बहुत उत्तेजित अवस्था में थे। एक तो देश की वायुमण्डल हिन्दू-मुसलिम झगड़े से भर रहा था और दूसरे, एक विशेष घटना हौशंगाबाद मे हो गई थी। अब्दुल करीम खाँ के एक बैरे की आशनाई शहर के एक बनिया की लड़की से हो गई थी। इस सभा से एक दिन पहिले पाँच छै आदमी बल-पूर्वक उस लड़की को उठाकर ले गए थे। खाँ साहब के एक नौकर ने जिसका नाम नज़ीरुद्दीन था बाजार में किसी से कहा था कि लड़की खाँ साहब की कोठी में मौजूद है और अगर दस-बीस आदमी रात के दस बजे के बाद वहाँ पर सशस्त्र आक्रमण करें तो वह औरत पकड़ी जा सकती है। उस लड़की का पिता भी उस सभा में उपस्थित था। साधूवक्ता कई दिन से हौशंगाबाद के एक मंदिर में आकर ठहरा हुआ था और हिन्दू संगठन का काम कर रहा था। उसका सब प्रयत्न रज़ाकार संस्था के विरोध मे एक हिन्दू स्वयं-सेवक दल बनाने की थी। इस सभा में बहुत से युवक उसी दल के सदस्य थे।

लड़की के पिता ने कहा, "नजीरुद्दीन हर रोज मुझसे सौदा-सुल्फ

लेने आता है और एक बहुत ही भला आदमी मालूम होता है। उसका कहना है कि अभी तक लड़की का निकाह उस चपरासी से नहीं पढ़ा गया। इस कारण खाँ साहब ने उसको अपनी एक रखेल के पास रखा हुआ है। एक दो दिन में वह चपरासी उस लड़की के लिए कपड़े वगैरा बनवा लेगा तो निकाह पढ़ा दिया जावेगा। ऐसी अवस्था में यदि तो कुछ करना है तो फ़ौरन करना चाहिए। कहीं निकाह पढ़ा दिया गया तो वह बेचारी न इधर की रहेगी न उधर की।"

इस पर साधू ने कहा, "क्यों साहब! आप लोग इस जोखम के काम को करने के लिए तैयार हैं या नहीं?"

इस प्रश्न पर सब नवयुवकों ने हाथ उठा दिए और सब ने यह कहा, "हम सब हिन्दू औरतो को छुड़ाकर रहेंगे।"

"इसमें सम्भव है कि लड़ाई हो जावे और दोनों ओर से लोग घायल हों। जो अपनी जान तक इस काम में दे देना चाहेंगे वह उठकर एक ओर हो जावे।"

एक दर्जन से ऊपर नवयुवक एक ओर होकर खड़े हो गए। उन सबसे यह शपथ ली गई कि वे खाँ अब्दुल करीम खाँ के घर से उन सब औरतों को बिना छुड़ाए दम नहीं लेंगे जो पहिले हिन्दू रही हैं। अन्य उपस्थित लोगों से यह शपथ ली गई कि जो कुछ वहाँ हो रहा है उसकी सूचना आक्रमण से पूर्व और पश्चात् किसी को नहीं देंगे। वहाँ उपस्थिति लोगो में से किसी का नाम किसी को नहीं बताएँगे।

[२]

नज़ीरुद्दीन अब्दुल करीम खाँ के यहाँ नौकरी पा गया था। उसमें एक विशेष गुण था। वह अपने मन की बात ऐसे ढंग से कहता था कि दूसरे को वह उसीके ही लाभ की प्रतीत होती थी। नज़ीरुद्दीन ने नौकरी के पहिले ही दिन मालिक से पूछा, "हुज़ूर! मेरे लिए क्या काम मुकर्रिर किया है? मैं बेकार बैठना नहीं चाहता।"

"भाई, काम सोचकर बताया जावेगा। मैंने तुमको चपरासी बनाकर तो रखा नहीं। तुम्हारे लिए कोई अच्छा-सा काम सोचना होगा।"

"तो इसका यह मतलब हुआ कि जब तक आप सोचिएगा तब तक का वेतन हराम में मिलेगा। तब तक के लिए मेहमानखाने का ही इन्तज़ाम मेरे को करने दीजिए।"

"हाँ ठीक है। वह बहुत गंदा रहता है। वहाँ का चपरासी बहुत काहिल मालूम होता है।"

उसी दिन से नजीरुद्दीन ने वहाँ के चपरासी से मिलकर वहाँ की झार-फूँक करनी आरम्भ कर दी। वहाँ की खाटें टूटी हुई थीं। उनकी मरम्मत करने को बढ़ई बुला भेजा। फरनीचर पर पालिश करने को सामान बाज़ार से ले आया। मेहमानख़ाने के सामने सब जगह गंदी थी। उसने चपरासी की सहायता से साफ कर, वहाँ पर सुर्खी बिछा दी। इसके पश्चात्, वहाँ आसपास घास लगा, उसमें फूलों की क्यारियाँ लगा दीं।

अभी तक भी खाँ साहब यह नही जान सके थे कि उससे क्या काम लिया जावे। एक दिन नज़ीरुद्दीन ने फिर पूछा, "हुज़ूर! मेरे लायक़ कोई काम तजवीज़ नहीं किया आपने ?"

"अरे भाई, कुछ तो करते ही हो। अब कोई यह तो नहीं कह सकता कि नज़ीर हराम की खाता है।"

"यह तो हुज़ूर की मेहरबानी है कि इस मामूली-सी बात को काम समझते हैं। हकीकत में मैं इतने में अपनी तनख़्वाह हक़ की कमाई नहीं समझता।"

"यह तो मै समझता हूँ, कि तुम्हारी या किसी और नौकर की कितनी तनख्वाह होनी चाहिए। इसमें मैं तुम्हारी राय नहीं चाहता।"

इन दिनों में नज़ीरुद्दीन ने सुखिया से गहरा मेल-जोल पैदा कर लिया था। वह उसे भाभी करके पुकारता था और वह उसे भैया कहती थी। इतने मात्र से ही वह शान्ति देवी से चिट्ठी-पत्री कर रहा

था। जब भी वह आती तो वह उससे पूछता, "भाभी कहो, फातिमा बेगम ठीक-ठाक हैं?"

वह उत्तर देती, "बेचारी बहुत उदास रहती हैं। लो, उन्होंने यह चिट्ठी दी है। कहती थीं, पीर साहब की कोई चिट्ठी आई हो तो उनकी राज़ी-खुशी की खबर लिखना। नज़ीर चिट्ठी लेकर पढ़ता और झूठ-मूठ कह देता, "लिखती हैं कि खाँ साहब बहुत ही दयालू आदमी हैं। आज उन्होंने उनकी मुहब्बत से खुश होकर बहुत बढ़िया साड़ी ले दी है।" इस प्रकार की खबरे सुनकर सुखिया बहुत खुश होती। वह समझती कि अपने मालिक की प्रशंसा सुनकर उसे खुश होना चाहिए।

फिर जब वह एकान्त में होता तो चिट्ठी पढ़ता, और पश्चात् उत्तर देता। एक दिन शान्ति देवी की चिट्ठी आई, "क्या हो रहा है? यहाँ मेरा जीवन एक ग़ुलाम औरत-सा हो रहा है। मै यहाँ के मालिक को किसी भी बात में न नहीं कर सकती। मैं कितना भी शोर मचाऊँ कोई सुननेवाली नहीं है। मकान ऐसा बना है कि भीतर यदि किसी को मार भी डाला जावे तो बाहर किसी को ख़बर तक भी नही हो सकती। जब वह भैंसा मुझसे हमबिस्तर होना चाहता है और मैं इस बात से इन्कार करती हूँ तो वह मेरे से बलात्कार करता है और यदि चीख़-पुकार करूँ तो मेरी साथिने वहाँ आ जमा होती हैं और मुझको रोते-गाते देख हँसती हैं। फिर मुझको मजबूर करने के लिए मेरी माँ को सामने खड़ा कर पीटा जाता है। भैया नज़ीर अब इस दोजख से छुड़ाओ। उनको कहो कि जल्दी करें। नही तो जान तो एक दिन ऐसे ही निकल जावेगी।"

नज़ीरुद्दीन को खाँ साहब की नौकरी में आए हुए एक महीने से ऊपर हो चुका था। उसने एक लम्बी चिट्ठी लिखी, जो इस प्रकार थी। "बहिन! आज बहुत-सी बाते निश्चय हो गई हैं। यहाँ के कई नौजवान तुम्हारे लिए लड़ाई करने को भी तैयार हो गए हैं। उनको

योजना यह है कि बाहर किंचित् मात्र भी हल्ला-गुल्ला होने पर तुम अपने कमरे में घुस, भीतर से बंद कर बैठ जाना जब, तक कोई बाहर से दोबारा, तीन-तीन, खट-खट न करे तुम दरवाजा न खोलना। साथ ही महल के फाटक से लेकर अपने कमरे तक के मार्ग का मानचित्र खींच कर भेज दो। आक्रमण करनेवाले एक क्षण भी व्यर्थ खोना नहीं चाहते।

"कल तक यह मानचित्र आ जाना चाहिए और मै समझता हूँ कि उसके एक दिन पीछे जंगे-आज़ादी होगा।"

शान्ति देवी ने मकान के भीतर का पूरा ब्यौरा लिखकर भेज दिया। इससे अगले दिन दोपहर के समय जब सुखिया आई तो नजीर ने उसको एक पत्र लिख भेजा। उसमें केवल यह लिखा था, 'रात के दो बजे।' शान्ति देवी इसका अर्थ समझती थी और वह उसके अनुकूल अपनी योजना बनाने लगी। सबसे प्रथम उसने अपनी माँ को बुलाकर सब बात बताई। उसने कहा, "माँ! बाहर से संदेश आया है कि आज रात के दो बजे हमको छुड़ाने का यत्न किया जावेगा। हम को तो सिरफ यह करना है कि जब भी बाहर किसी प्रकार की हलचल देखें तो हम एक कमरे में आकर, भाग जाने के लिए तैयार बैठी रहें। इसके लिए मेरा कमरा निश्चय हुआ है। उनके पास मेरे कमरे तक पहुँचने के मार्ग का मानचित्र है। माँ, तुम याद रखना कि कुछ भी संदेह होने पर भागकर मेरे कमरे में चली आना। मुझको शीघ्र ही दरवाजा बंद कर बैठ रहना है। दरवाजे पर संकेत के अनुसार ठपठपाने पर ही दरवाजा खोलना है।"

शान्ति देवी का मन बहुत प्रकार के विचारों में घूमने लगा था। वह सोचती थी कि यदि योजना सफल न हुई तो क्या हो सकता है। यदि कोई भी मर गया तो मारनेवाले पर मुकद्मा होकर फाँसी का दंड हो सकता है।

वह इस काम की भयंकरता देखकर भय से काँप रही थी। वह

सोचती थी कि क्या उसका जीवन इतना क़ीमती है कि उसके लिए कई नवयुवकों का जीवन स्वाहा किया जावे। साथ ही वह अपनी पतित अवस्था पर विचार करती थी। क्या उस जैसी नीच औरत के लिए इतना खून-खराबा होना चाहिए। अभी समय था कि वह सुखिया के हाथ उनको कहला भेजे कि उसको न छुड़ाया जावे। इसके साथ ही वह अपनी मुसीबत और अपमान, जो प्रतिदिन की बात थी, की बाबत सोचती थी तो चुप कर जाती थी।

वह अपने मन के संशयों को लेकर अपनी माँ के पास पहुँची। उसकी माँ ने उसके मन के विचार सुने और अपनी पीठ नंगी कर उस पर तीन दिन पीछे की मार के चिन्ह दिखा दिए। उसकी माँ ने कहा, "देखो बेटी। देवता और असुरों में लड़ाई आदि काल से होती रही है। इस कारण युद्ध करने मे देवताओं पर दोषारोपण कोई नहीं करता। राम ने लंका पर आक्रमण किया था और इस आक्रमण मे सहस्रों बानर मारे गए थे। परन्तु इसका अपराध राम के सिर नही लगा। दोषी तो रावण था। इसी प्रकार कृष्ण ने कंस की हत्या की थी, परन्तु हत्या का पाप कंस के अपने ऊपर था। कृष्ण ने पाप नहीं किया था। इस लिए तुम डरती क्यों हो ? यह संसार की रीति है कि दुष्टों के दमन के लिए भले लोग अपने जीवन को भय में डालें।

"मैं तुमको एक कथा, जो मैंने अपने बचपन में अपने पिता से सुनी थी, सुनाती हूँ। कौरव अति दुष्ट थे। उन्होंने एक बार अपनी भाभी द्रौपदी को भरी सभा मे नंगा करने का यत्न किया था। पीछे जब उसके पाँच पतियों में और कौरवों में युद्ध होने लगा और जब कृष्ण युद्ध को रोकने के लिए, कौरवो के बड़े भाई दुर्योधन के पास जाने लगा तो द्रौपदी उसके सम्मुख उपस्थित होकर अपने केश दिखाकर बोली, "देखो भैया कृष्ण ! इन केशों को पकड़ कर ही दुर्योधन के भाई दुःशासन ने भरी सभा में घसीटा था, और मुझको नग्न करने का यत्न किया था। क्या संसार में इसके लिए कोई दंड नहीं है ?"

"दंड है और दोषी को वह मिलेगा।" कृष्ण का उत्तर था। "यदि दोषी को दंड न मिले तो संसार में इतनी दुर्व्यवस्था उत्पन्न हो जावेगी कि किसी भले आदमी का इसमें रहना दुर्भर हो जावेगा। तुम निश्चिन्त रहो द्रौपदी! परमात्मा भले लोगों की ओर होता है।"

"इस कारण मैं कहती हूँ कि जो कुछ हो रहा है वह भगवान की प्रेरणा से ही समझना चाहिए। इसमें हमारा हस्तात्क्षेप उसके न्याय-पथ में बाधा खड़ी करना होगा। जब हम समझते हैं कि एक दुष्ट को दंड देने का आयोजन हो रहा है तो उस दंड के मार्ग में हम रुकावट बनने से स्वयं दंड के भागी हो जावेंगे।"

इस प्रकार शान्ति देवी के मन को सात्वना दे उसकी माँ अपने कमरे में जाकर, भीतर से दरवाजा बंद कर अति विनीत भाव से परमात्मा से प्रार्थना करने लगी।

[२]

शान्ति देवी आज बहुत सहमी हुई प्रतीत होती थी और यह बात खाँ साहब से छिपी नहीं रह सकी। खाना खाते समय खाँ साहब ने उसके समीप बैठते हुए कहा, "फ़ातिमा, आज तो तुम बहुत खूब-सूरत मालूम हो रही हो। तुम्हारे मुख पर यह लाली, मैंने कई दिन के बाद आज देखी है।"

"मैंने अपनी माँ की पीठ पर उस दिन की मार के निशान अभी अभी देखे हैं।"

"तब तो तुम्हारा मन हमारी ताकत का अन्दाज़ लगा रहा होगा। तुम अब तो समझ रही होगी कि मेरा कहना मानने के सिवाय और चारा नहीं है।"

शान्ति देवी आज लड़कर झगड़ा खड़ा करना नहीं चाहती थी। वह जानती थी कि जिस दिन उसकी माँ पीटी गई थी, घर के भीतर रहनेवाले सब लोग रात के दो बजे तक नहीं सोए थे। आज

वह ऐसी बात करना नहीं चाहती थी। वह चाहती थी कि दो बजे तक सब घर में शान्ति हो जावे और सब लोग गहरी नींद सो रहे हों, जिससे आक्रमण करनेवालों को कम से कम खतरे में अपना काम करने का अवसर मिल सके। इस कारण वह चुपचाप बैठी रही। इस पर खाँ बोला, "मेरे कहने की सच्चाई समझ आ गई है न ?"

शान्ति देवी अभी भी चुप रही। इस पर उसने फिर कहा, "खामोशी नीम-रज़ा समझनी चाहिए। तो लो, हम एलान करते हैं कि आज हम फ़ातिमा बेग़म के मेहमान होंगे।"

शान्ति देवी यह सुनकर काँप उठी। इस पर खाँ ने उसके गले में बाँह डालकर उसका मुख चूम लिया। वह इस समय झगड़ा नहीं करना चाहती थी। इस पर भी उसने यह समझाने का यत्न किया कि उसको उस रात क्षमा कर दिया जावे। परन्तु खाँ साहब पर भूत सवार हो गया था। उसने कहा, "नहीं बेग़म ! आज हम तुमको प्रसन्न पाते हैं और हम तुमको खुश कर देना चाहते हैं।"

इतना कहकर वह उठकर चला गया। फ़ातिमा इस नई परिस्थिति से घबरा उठी। वह समझने लगी कि पूरी योजना असफल हो जावेगी। ज़रा-सा भी शोर हुआ तो यह जाग उठेगा और फिर न जाने क्या कर देगा। वह खाने से उठकर सीधी अपनी माँ के कमरे में गई और उसको इस नई परिस्थिति से परिचित कर उसकी राय पूछने लगी। माँ ने एक क्षण सोचकर कहा, "बेटी ! भगवान् की बातें हम क्या जान सकती हैं। हमें तो जो कुछ हो रहा है उसमें अपना कर्तव्य ही बनाना और करना है। देखो, मैं रात भर जागती रहूँगी। ठीक समय पर मैं तुम्हारा दरवाजा साधारण रूप में खट-खटाऊँगी। तुम उठकर मुझे भीतर कर लेना। वहाँ हम यत्न करेंगी कि खाँ किसी प्रकार से भी आक्रमण करनेवालों के मुकाबिले में न जा सके। तुम उसको वहीं अपने कमरे में सुला रखना।"

इस रात के शान्ति देवी के व्यवहार से खाँन बहुत प्रसन्न था। रात के बारह बजे तक वह उससे प्रेम-प्रलाप करता रहा। इसके पश्चात् वह सो गया। सोने से पूर्व उसने यह कहा था कि अगले दिन वह उसे एक सहस्र स्वर्ण निजामी अशरफियाँ देगा। शान्ति देवी ने मन कड़ा कर अपना व्यवहार ऐसा बनाए रखा, जिससे वह अति प्रसन्न और संतुष्ट हो, सुख की नींद सो गया। उसे गहरी नींद में सोता देख शान्ति देवी पलंग से उठी और समीप रखी कुर्सी पर बैठकर धक-धक करते हुए दिल से समय की प्रतीक्षा करने लगी। वह अंधेरे में बैठी हुई भय के मारे काँप रही थी।

अभी दो नहीं बजे थे कि उसको बाहर से दरवाज़ा धकेलते हुए कोई जान पड़ा। उसने समझ लिया कि अवश्य उसकी माँ है। उसने उठकर आराम से दरवाज़ा खोल दिया। उसकी माँ ही थी। उसके हाथ में कुछ था। लड़की ने उसको कोने में ले जाकर पूछा, "यह क्या है माँ?"

"एक मज़बूत रस्सा है। यह बहुत काम की वस्तु है। भागने के वक्त यह कई काम दे सकता है। मैं समझती हूँ कि इसकी जरूरत पड़ेगी।"

अब दोनो आराम से कुर्सियों पर बैठ गईं। समय आ गया। बाहर घड़ियाल बजानेवाले ने दो बजाए। जैसे बिजली का स्विच दबाने से मशीन काम करती है, इसी प्रकार घड़ियाल का शब्द सुन-कर दोनो खड़ी हो गईं। परन्तु बाहर कुछ नहीं हुआ। शान्ति देवी अपने स्थान से चलकर दरवाज़े के पास पहुँच, उससे कान लगा, सुनने लगी। उसकी माँ पलंग, जिस पर खाँन सो रहा था, के पास जा खड़ी हो गई। उसका ख़्याल था कि बाहर हल्ला-गुल्ला होगा। इससे खाँन की नींद खुल जावेगी और वह उठकर बाहर भागेगा। उसका यह भी ख़्याल था कि उसे बाहर नहीं जाने देना चाहिए। अगर

जरूरत पड़ी तो उसको रस्से से बाँधकर वहाँ कैद कर रखना चाहिए।

लगभग दो बजने के पन्द्रह मिनट पश्चात् किसी ने दो बार तीन-तीन खट-खट की। शान्ति देवी दरवाजे के पास ही खड़ी थीं। उसने बहुत धीरे-से दरवाज़ा खोल दिया। पाँच आदमी भीतर आ गए। सदाशिव इन में एक था। उसने धीरे से पूछा, "शान्ति।"

"मै हूँ।" उसने उत्तर दिया। पश्चात् उसने बिजली का स्विच दबाकर रोशनी कर दी। इस समय खाँ जाग पड़ा और कमरे मे रोशनी देख पूछने लगा, "क्या है बेगम?" परन्तु पूर्व इसके कि वह भली भाँति परिस्थिति को समझ सकता, सदाशिव पिस्तौल लेकर उसकी छाती की ओर निशाना बाँधकर खड़ा हो गया। सदाशिव ने कहा, "देखो जी, अगर ज़रा भी हिले तो काम तमाम कर दूँगा।"

खाँ अभी भी समझ नही सका था कि क्या हो रहा है। हाँ, उसने पिस्तौल का काला मुख अपनी ओर झाँकते हुए देख लिया था। इससे उसने समझ लिया था कि बोलना और शोर करना ख़तरे से ख़ाली नही। उसने वैसे ही लेटे हुए कहा, "क्या चाहते हो?"

"चाहते हैं कि तुम लेटे रहो और बोलो नहीं।" इस समय सदाशिव के साथियों ने खाँ के मुख में कपड़ा ठूँस दिया और उसके हाथ-पाँव बाँध दिये। उसको कसकर पलंग से बाँध उन्होंने बिजली बुझा दी और सब, शान्ति देवी और उसकी माँ को लेकर कमरे के बाहर आ गए। कमरे के बाहर दो और युवक हाथों में पिस्तौल लिए हुए खड़े थे। कमरे से बाहर निकल शान्ति की माँ ने दरवाजा बाहर से बन्द कर दिया।

बीस के लगभग युवक आए थे। फाटक पर चौकीदार को भी हाथ-पाँव बाँधकर मुख में कपड़ा ठूँसकर और फाटक के साथ बाँध कर छोड़ आए थे। कोठी की ड्योढ़ी पर खड़े पहरेदार सो गए थे। इस कारण उनको काबू कर लेना भी आसान ही रहा। थोड़ा-सा

झगड़ा एक चौकीदार के साथ जो ज़नानख़ाने के बाहर खड़ा था, हुआ। वह शोर मचाने लगा था परन्तु एक युवक ने अपने हाथ में पकड़ी बंदूक के कुन्दे की चोट से उसको अचेत कर दिया। इस प्रकार बिना किसी प्रकार का शोर किए सब लोग कोठी में दाख़िल हो गए। इस समय नज़ीरुद्दीन भी वहाँ आ गया। उसने सुखिया से भीतर की सब सूचना प्राप्त कर रखी थी। इस प्रकार उसने सदाशिव को तो शान्ति देवी के कमरे की ओर भेज दिया और वह स्वयं विवाहित बेगमों की ओर जा पहुँचा। वहाँ चारों बेग़मों को एक स्थान पर एकत्रित कर नज़ीरुद्दीन ने उनसे पूछा, "तुम में हिन्दू की लड़की कौन है?" सबसे छोटी बेग़म जिसका विवाह पिछले वर्ष ही हुआ था बोल उठी, "मैं हूँ।"

"किस की लड़की हो।"

"हैदराबाद के विख्यात वकील केलकटर की। मेरा अपहरण ख़ाँ साहब ने एक सिनेमा हाल के बाहर से किया था।"

"इधर हट जावो।"

इसके पश्चात् उसने दूसरी बेग़मों से कहा, "तुम में से कोई यहाँ से चली जाना चाहती हो?"

कोई नहीं बोली। अब नज़ीरुद्दीन ने युवकों को कहा, "इन सब के मुख, हाथ और पाँव बाँध दो और इन सबको इकट्ठा बाँधकर कमरे में बंद कर दो।"

इस प्रकार जब सब लोग बाहर आ गए तो बनिया, जिसकी लड़की पर यह सब झगड़ा खड़ा हुआ था, कहने लगा, "पर नज़ीर बाबू! श्यामा तो मिली नहीं।"

"लाला जी, रात को तो महल में थी। अब कहीं दिखाई नहीं देती।"

इससे उसको बहुत निराशा हुई। वहाँ ठहरे रहने के लिए समय नहीं था। इस कारण सब इन तीन औरतों को साथ लेकर कोठी से

बाहर निकल आए। कोठी के बाहर मोटर-गाडियाँ खड़ी थीं। शान्ति देवी और उसकी माँ तथा सदाशिव एक गाड़ी में बैठ गए। सुखिया इनके साथ थी। वह गाड़ी हैदराबाद की सरहद की ओर तेज गति से चल पड़ी। दूसरी गाड़ी मे छोटी बेगम और नज़ीरुद्दीन, साथ में वह पंजाबी साधू जो एक दिन हौशंगाबाद के युवको की सभा में व्याख्यान दे रहा था, बैठ गए। उन्होने वहाँ से हैदराबाद की ओर का रास्ता पकड़ा। अन्य युवक दो-दो तीन-तीन कर मंडलियों में विभक्त हो गए और भिन्न-भिन्न दिशाओं मे पैदल चले गए।

[४]

प्रात काल हौशंगाबाद में यह विख्यात हो गया कि अब्दुल करीम खाँ की कोठी पर डाका पड़ा है। उस इलाके के थानेदार को यह समाचार मिला तो उसको विश्वास नहीं आया। उसके थाने मे किसी प्रकार की भी रिपोर्ट नहीं लिखवाई गई थी। पहिले तो कुछ काल तक वह किसी के रिपोर्ट लिखवाने के लिए आने की प्रतीक्षा करता रहा। जब कोई नहीं आया तो वह स्वय पता करने खाँ साहब की कोठी मे पहुँच गया। खाँ साहब से उसकी मुलाकात थी। जब वह कोठी मे पहुँचा तो उसने देखा कि लोग छोटी-छोटी टोलियों मे इधर-उधर खड़े हुए आपस में बातें कर रहे थे।

थानेदार ने चपरासी से पूछा, "खाँ साहब घर पर हैं?"

"जी हुजूर। मगर तबीयत कुछ खराब है।"

"हमारी इत्तला कर दो।"

चपरासी गया और भीतर से खबर लाया कि खाँ साहब अभी आते है और दारोगा साहब बैठक मे बैठे। दारोगा बैठक मे जा बैठा। पन्द्रह-बीस मिनट प्रतीक्षा करने पर खाँन आया। उसका मुख उतरा हुआ था। दारोगा ने उठकर सलाम की, हाथ मिलाया और ख़ैर-ख़ैरीयत पूछी। इस पर खाँ ने कहा, "और तो सब खैर है मगर कल

रात हमारे यहाँ से कुछ चीजें चुरा ली गई हैं। इस वजह से कुछ परेशानी हो रही है।"

"मगर उस चोरी की इत्तला आपने थाने में नहीं की।"

"मैने मुनासिब नहीं समझा।"

"क्यो?"

"चोरी का माल चोरी गया हो तो कैसे इत्तला करता?"

"तो आपके पास चोरी का माल रखा था?"

"देखो जी मिस्टर यूसफ। बात कुछ ऐसी ही है। आप तो दोस्त ठहरे। आपसे क्या छिपाना है। खुदा ने मुझको कुछ शौकीन-तबीयत बनाया है। इसलिए कुछ बढ़िया जवाहरात देखे तो तबीयत मचल गई। कुछ जावाहरात ऐसे भी होते हैं कि वे मोल पर नही मिल सकते। उन्हे हासिल करने के लिए हर किस्म के तरीके इस्तमाल होते रहते हैं। उनमें एक तरीका चोरी करना भी है।" .

दारोगा यूसफ मियाँ अब्दुल करीम खाँ की युक्ति सुनकर हँस पड़ा। उसने कहा, "आपके फिलासोफरों जैसे ख़्यालात सुनकर दिल बहुत खुश हुआ है। मगर हुजूर, एक बात मै गुजारिश कर देना चाहता हूँ कि हमारा महकमा फिलासोफी पर 'मबनी' नहीं है। हम तो इन्साफ़ के लिए बने हैं।"

"वह तो भाई बहुत अच्छी तरह मालूम है। उस दिन जब लभू बनिये को ब्लैक मार्केटिंग करते पकड़कर भी छोड़ दिया था तो न्याय का पालन ही तो किया था।"

"वह तो एक दूसरी बात है। उसमें बन्दा को खुरचन काफी मिली है। फिर एक बहुत ज़रूरी बात यह भी तो है कि शायद चोरी करनेवाले हिन्दू हों।"

"वह ठीक है। भाई लभू बनिया भी तो हिन्दू ही था और वह अभी तक भी मुसलमान नहीं हुआ। खैर, छोड़ो इस बात को। मैं तो

यह जानना चाहता हूँ कि क्या मुझसे भी खुरचन की उम्मीद में आए·हो।"

"अजी तोबा करो। भला आपसे कैसे ले सकता हूँ। अगर आप इत्तला कर देते तो हम इधर-उधर हाथ मारते।" इतना कहकर उसने खाँ के मुख की ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखा।

खाँ ने उत्तर दिया, "मगर एक बात तुम्हारी अकल में नहीं आई मालूम होती। वह है चोरी हुई चीज़ में जिन्दगी का होना। अगर वह अदालत में पेश हो गई तो बोल उठेगी और उसके पहिले मुझसे चुराए जाने की बात, बता देगी।"

"तो वह कोई औरत है। तब तो बात ठीक है। एक गई तो दूसरी आ जावेगी।"

"हाँ। तुम अब समझे हो। मेरे माल को कुछ भी नुकसान नहीं हुआ। किसी जान का नुकसान भी नहीं हुआ। कुछ थोड़ा-सा मेरी बहादुरी को बट्टा लगा है। पर मै क्या करता? रात को सोया हुआ था कि कम्बख्तों ने आन दबाया। लेटे-लेटे ही मुँह में कपड़ा ठूँस दिया और हाथ-पाँव बाँध दिए। चपरासी और चौकीदारों के साथ भी यही हुआ मालूम होता है। अब किस को कसूरवार कहूँ और किस को बेकसूर। ग़ज़ब तो यह हुआ है कि एक शादी-शुदा बेगम भी भाग गई है।"

"तो उसकी ही रपट लिखवा दीजिए।"

"यूसफ साहब, नहीं। वह हिन्दू की लड़की थी और पिछले साल हैदराबाद के विक्टोरिया सिनेमा हाल के बाहर से चुराई गई थी। यहाँ लाकर उससे शादी कर ली। यूँ तो वह बहुत प्रसन्न मालूम होती थी। क्या हुआ समझ नहीं आता। न जाने उसने क्या देखा है कि रात उन लोगों के साथ भाग गई है। दो औरतें और भागी हैं। एक तो मुसलमान की लड़की थी और उसके बाप ने ही उसके हिन्दू

ख़ाविन्द से चुराकर यहाँ भेजी थी। साथ उसके उसकी माँ भी थी। दोनों ही भाग गई हैं। असल मे मैने एक बहुत वफादारी दिखानेवाला नौकर रखा था। मालूम होता है कि वही इन सबको भगाकर ले गया है।"

"पर खाँ साहब, यह एक आदमी का काम तो मालूम नहीं होता। इसमें तो कोई बहुत बड़ी साज़िश मालूम होती है।"

"अजी छोड़िए इस बात को। मैं रिपोर्ट नहीं लिखवाऊँगा।"

थानेदार बहुत हैरान और एक भारी आमदन का स्रोत हाथ से जाता देख, दुखी हुआ था। वह वहाँ से वापिस आया तो नगर से एक और समाचार मिला। लोटन बनिये की लड़की छै दिन तक घर से ग़ायब रहकर रात लौट आई है। लोटन ने उसके ग़ायब हो जाने की रपट थाने में नहीं लिखाई थी। इससे वह उसके मिलने की भी सूचना देने नहीं आया। थानेदार इस समाचार से आग-बबूला हो गया। उसने समाचार लानेवाले के सामने ही लोटन को गालियाँ देनी आरम्भ कर दीं। "बदमाश के बच्चे, क्या समझते हैं, यह अपने को? इन्होंने घर में ही थानेदारी खोल रखी है। घर में ही रिपोर्ट लिख लेते हैं और घर मे ही सुराग़ लगाना आरम्भ कर देते हैं. ...ओ! पीर दीन! जाना ज़रा लोटन को बुला लावो।"

लोटन आया और थानेदार के सामने हाज़िर हुआ। थानेदार का क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ था। इससे कहने लगा, "क्यों बे लोटन के बच्चे! लड़की के ग़ायब हो जाने की ख़बर क्यो नही लिखवाई?"

"हुजूर। कोई नेकनामी की बात होती तो लिखाने आ जाता। अपने मुख पर आप ही कालख़ कैसे पोत लेता?"

"अबे, थाने में रिपोर्ट तो लिखवाई जाती है।"

"मुझे मालूम नहीं था। उमर भर मे पहिली ही बार तो लड़की भागी थी। अब फिर कोई भागेगी तो जरूर लिखा दूँगा।"

"तो इसी की अब ही लिखा दो न ?"

"अब क्या लाभ होगा ?"

"अबे यह दस्तूर है ।"

"न हुजूर ! अभी तक तो सिरफ आपको ही पता लगा है और रिपोर्ट लिखाने पर तो सबको मालूम हो जावेगा ।"

"तो फिर चोर कैसे पकड़ा जावेगा ।"

"वह चोर नहीं था साहब । लड़की कहती है कि कोई साधु महात्मा थे । उन्होंने उसको बहुत भली भाँति रखा था । खाने-पहरने और प्रत्येक प्रकार का आराम उसको दिया था ।"

इस बात से तो थानेदार को भी हँसी निकल गई । उसने कहा, "ओ बेवकूफ़ लोटन । किसी के भी घर में लड़की को भेज दो । वह दो-चार दिन तो उसकी ज़रूर खातिर करेगा ।"

"यह नहीं दारोगा साहब । क्या मैं समझता नहीं हूँ । सब कुछ जानता हूँ । पाँच बच्चों का बाप हूँ । मैंने सब कुछ मालूम कर लिया है । उसको ले जानेवाला एक विशेष प्रयोजन से उसको ले गया था । वह प्रयोजन मुझको मालूम हो गया है ।"

"देखो लोटन । तुमको वह प्रयोजन बताना होगा और उस साधू का नाम भी बताना होगा । नहीं तो तुमको अपनी लड़की से पेशा कराने के जुरम में हवालात में रखना पड़ेगा ।"

लोटन बनिया इससे घबराया । उसने हाथ जोड़कर कहा, "हुजूर । यह बहुत सख़्त बदनामी का कारण बन जावेगा । मैं आपको विश्वास दिलाने के लिए वह कारण बता सकता हूँ, जिससे वह साधु लड़की को अपने पास ले गया था । मगर मैं उस साधु का नाम नहीं बता सकता । न तो मैं उसका नाम जानता हूँ और न ही वह लड़की जानती है । इसलिए मैं क्षमा माँगता हूँ ।

"मेरी लड़की ने मुझको बताया है कि खाँ साहब के बैरा रफ़ीक़ ने उससे विवाह कर लेने को कहा था । वह उसके साथ भाग जाने-

वाली थी कि खाँ साहब के एक और नौकर नज़ीरुद्दीन ने उससे मिलकर उसको मना किया। जब वह नहीं मानी तो वह उसको धोखा देकर उसी साधु के पास ले गया। वहाँ उस साधु ने उसको अपने मकान में बन्द कर रखा। उसी नज़ीर ने मुझको बताया कि मेरी लड़की रफ़ीक़ बैरे से चुराई गई है। साथ ही मुझको कहा कि उसका अभी निकाह नहीं पढ़ा गया। इसके बाद उसने कहा कि वह उसके छुड़ाने का यत्न कर रहा है। अब आज सुबह वह स्वयं आ गई है। उसने कहा है कि साधु इतने दिन तक उसको समझाता रहा है कि उसको किसी मुसलमान से विवाह नहीं करना चाहिए। अब वह उस रफ़ीक़ से विवाह करना नहीं चाहती। उसका कहना है कि साधु और नज़ीर दोनों उससे सगे भाई का-सा सुलूक करते रहे हैं। अब दारोग़ा साहब जो कुछ भी हुआ है मैं उसको अदालत में घसीटकर अपने ही मुख पर कालख नहीं पोतना चाहता।

"मैंने नज़ीर को ढूँढ़ने का यत्न किया है। वह न मालूम कहाँ चला गया है।"

यह कहानी सुनकर थानेदार ज़ोर से हँसा और बोला, "बहुत अच्छी तरह बेवक़ूफ़ बनाया है उन्होंने तुमको। छै दिन तक तुम्हारी लड़की का भोग किया और फिर हिन्दू और मुसलमान की बात बनाकर चल दिए। एक बात बताओ तो। कितना माल तुम्हारी लड़की घर से चुराकर ले गई थी?"

"सत्य बताऊँ हुज़ूर? कोई दो हज़ार का ज़ेवर ले गई थी, परन्तु वह सब का सब अपने साथ वापिस ले आई है।"

"तुम झूठ बोलते हो! मैंने इतनी उमर में कोई माई का लाल इतना इमानदार नहीं देखा जो घर में आई औरत को छूए नहीं और इस प्रकार आए धन को वापिस कर दे। देखो लोटन! अगर तुम कहते हो कि तुम्हारी लड़की को अदालत में न घसीटूँ और उसका डाक्टरी मुआइना न कराऊँ तो कुछ हमारा भी खयाल करना होगा।

पाँच सौ रुपया आज शाम तक यहाँ जमा कर दो। नहीं तो भाईजान फिर न कहना। उस साधु और नज़ीर की तालाश तो हो रही है। उन्होंने खाँ साहब के घर डाका डाला है।"

"हाँ! कुछ उड़ती बात सुनी तो है। कुछ बहुत माल गया है उनके घर से?"

"उनकी बात छोड़ो तुम। वे बहुत अमीर आदमी हैं। तुम अपनी बात कहो। रुपया शाम तक आएगा या नहीं?"

"कहीं से ढूँढ़ता हूँ साहब!"

[५]

दिन निकलने से पूर्व सदाशिव शान्ति देवी और उसकी माँ को लेकर हैदराबाद की सीमा से बाहर निकल गया। मार्ग में शान्ति देवी ने बम्बई 'मेराईन ड्राइव' वाले मकान से अपहरण होने के समय से लेकर छूटने के समय तक अपनी पूर्ण आप-बीती सुना दी। इस काल में इतनी करुणाजनक घटनाएँ हो गई थीं कि इनको सुनाते-सुनाते कई बार उसके आँसू बह निकले। सदाशिव दाँत पीस रहा था। शान्ति की माँ भविष्य के विषय में सोचती गम्भीर बैठी थी। शान्ति देवी अपनी कथा सुना चुकी तो कहने लगी, "इस बदमाश पीर को मैं अपना बाप समझती थी। जब मुझको दरगाह की घृणित बातों का पता चला तो कई बार मेरे मन मे उसके लिए घृणा होती थी, परन्तु उसको पिता का आदर देकर अपने मन मे कभी भी उसके विरुद्ध विचार आने नहीं देती थी। उसने अपने मन की नीचता का परिचय उसके साथ भी दिया जिसको वह अपनी लड़की कहता था।"

शान्ति देवी इतना कह हिचकियाँ भर रोने लगी। तीनो पिछले दो मास की बातों से इतना दुख अनुभव करने लगे कि उनको कुछ समझ ही नहीं आता था कि क्या करें। सबसे पहले शान्ति देवी की माँ ने होश सम्भाली और उसने कहा, "बेटी। अब इस रोने-धोने को

छोड़ हमको आगे के विषय में विचार करना चाहिए। भगवान का धन्यवाद है कि उसने पुनः हमारे लिए नया संसार खोल दिया है। इसमें हमको कहाँ कैसे रहना होगा और अपनी बिगड़ी हालत को कैसे बनाना होगा, इस समय यही एक सोचने की बात है।''

सदाशिव ने कहा, "देखो माता जी। मैंने इतना तो सोच रखा है कि अब बम्बई में नहीं रहूँगा। मैंने अभी यह विचार नहीं किया कि किस स्थान पर चल कर रहूँ। इस बात पर सोचने को समय नहीं था। सबसे पहले तो आपको छुड़ाने की बात थी। सो हो गई है। अब इसके आगे विचार करने का समय आ गया है बम्बई पहुँचते हीं अपना सामान ठीक कर चल देंगे।"

"यह तो ठीक है।" शान्ति देवी ने कहा, "परन्तु मेरा आपके साथ रहना ठीक भी है या नहीं, मुझको समझ नहीं आ रहा। मेरी अब वह बात नहीं रह गई। शायद मै अब वेश्या का काम करने के लायक़ ही रह गई हूँ।''

"क्या हो गया है तुमको?" सदाशिव ने सचेत हो पूछा

"बताया तो है। मेरे शरीर को उस शैतान के हाथ लग चुके हैं, यह अब गंदा हो गया है।"

"शरीर गंदा हो गया है या मन भी।''

"क्या मतलब?" शान्ति देवी ने पूछा।

"मतलब तो स्पष्ट है। क्या तुम मन से भी कभी उसकी बीवी बनी हो?''

"उस पशु की? उसके लिए मेरे मन में पति की भावना कैसे हो सकती थी जो मुझको वश में करने के लिए मेरी माँ को नगा कर मेरे सामने पीट सकता है। मैं इतनी मूर्ख नहीं हो सकती

'यही तो कहता हूँ, तुम्हारा केवल शरीर ही पतित हुआ है। उसको साबुन मलकर साफ कर लूँगा। इस गंदे शरीर की दुर्गन्ध निकालने

के लिए खुशबूदार उबटन मल लूँगा। मन तो तुम्हारा मेरे से मुहब्बत करता है न? एक बात और बताऊँ शान्ति देवी। हम हिन्दू तो मन की भी शुद्धि कर सकते हैं। उसके लिए प्रायश्चित्त करना होता है और वह भी शुद्ध हो जाता है।"

"यह बात पहिले तो आपने कभी नहीं बताई। मैं समझती हूँ कि मेरा मन बहलाने के लिए ही आप कह रहे हैं।"

"मन बहलाना नहीं शान्ति! मन से भ्रम को दूर करना कहो तो ठीक है।"

"देखो बेटा सदाशिव! हम बदनसीबो के लिए तुम अपनी जिन्दगी खराब न करना। तुम कौंसिल के मेम्बर हो। बड़े आदमियो मे तुम्हारा चलना-फिरना है। हम नहीं चाहते कि तुमसे लोग घृणा करने लगे और कहीं वह तुमसे बात करना अथवा तुम से मेल-जोल रखना न पसन्द करें। तुम हमको हमारे हाल पर छोड़ दो। हम किसी न किसी तरह अपना निर्वाह कर लेंगे।"

"देखिए माँ जी! मैं आपको बदनसीब नहीं समझता। जो कुछ हुआ है वह आज इस देश में किसी भी औरत से हो सकता है। यह हमारी सरकार की दुर्बलता के कारण हुआ है। आप नहीं जानतीं क्या, कि दरगाह मे नित्य हिन्दू औरतो से क्या होता है? किस-किस को बदनसीब कहूँ। उन औरतों का कुछ भी दोष नहीं है। देश मे राज्य ही दुर्बल हो गया है। यह देश की बदनसीबी है। वह अब भी इस दरगाह की और उसके पीर की कथा पर विश्वास नहीं करेगा।"

"बेटा! मैं तो तुम्हारे भविष्य का विचार कर ही कह रही हूँ।"

"मैंने फैसला कर लिया है कि कौंसिल छोड़ दूँगा। इसलिए नहीं कि तुम्हारे भी साथ होने के कारण मेरे पर लोग उँगली करेंगे, प्रत्युत इसलिए कि मुझको उन लोगों के साथ रहते लज्जा आती है। वे

लोग इस प्रकार के नासमझ हैं कि उनकी बचपन की-सी बातों पर मुझको कई बार सिर झुकाना पड़ता है। उनकी नासमझी के कारण जो हानि देश और जाति को होनेवाली है, उसके करनेवालों में मैं नाम लिखाना नहीं चाहता।

"शान्ति! मैंने सब कुछ जानते हुए तुमको छुड़ाने का इतना कठिन काम करने का साहस किया है तो सोच-समझकर किया। मदन मोहन, जिसको तुम नज़ीर के नाम से जानती हो तुम्हारे विषय में मुझको सब कुछ बता चुका था। इस पर भी मैंने यह षड्यन्त्र किया और अपने तथा खुशीराम जी के मित्रों की जानें खतरे में डालीं। हम सब यह भली-भाँति समझते थे कि तुम सर्वथा पवित्र हो।"

शान्ति इसका उत्तर नहीं दे सकी थी। उसकी आँखों से टप-टप आँसू गिर रहे थे। उसकी माँ, जो उसके पास दूसरी ओर बैठी हुई थी, उसके गले में हाथ डालकर कहने लगी, "देखो बेटी, मैं कहती न थी कि सदाशिव ऐसा है। अब छोड़ो इस बात को। आओ सोचें कि बम्बई छोड़कर कहाँ चलना चाहिए। और बम्बई से जाते समय ऐसे जाना चाहिए कि पीर का बच्चा हमको पा ही न सके।"

तीनों बम्बई में पहुँचे तो अपने घर जाने के स्थान खुशीराम के घर चले गए। खुशीराम को अपनी योजना के सफल होने से बहुत प्रसन्नता हुई। उसने उनको अपने घर में रखा और उनके छूटने की पूर्ण कथा सुनी।

एक-आध दिन में ही उनके बम्बई छोड़कर जाने का विचार हो गया। उन दिनों बम्बई की धारा-सभा की बैठक हो रही थी। इस पर भी सदाशिव ने बम्बई को सदा के लिए छोड़ने का विचार कर लिया। उन सबका विचार पहले हरिद्वार जाने का ही ठहरा। पश्चात् दिल्ली में कोई काम कर लेने का विचार पक्का कर लिया।

बम्बई से विदा होते समय सदाशिव ने खुशीराम का धन्यवाद करते हुए कहा, "दादा, मैं जीवन-पर्यन्त तुम्हारे किए को भूल नहीं

सकता। इस परिवर्तनशील कालने मुझे वह शिक्षा दी है जिससे मेरे में एक प्रकार की मानसिक क्रान्ति उत्पन्न हो गई है। मैं समझता हूँ कि मेरी देश तथा जाति के विषय में धारणा अशुद्ध थी।

"यद्यपि मैं यह नहीं समझ सका कि मुसलमान क्यों देश-हित का विरोध कर रहे हैं, इस पर भी यह बात तो स्पष्ट हो गई है कि वे प्रायः सब अपने मज़हब को देश से ऊँची पदवी देते हैं और मज़हब को देश से ऊपर रखने के लिए प्रत्येक प्रकार के, उचित अथवा अनुचित उपायों को प्रयोग में लाने में संकोच नहीं करते।"

हरिद्वार में पहुँचकर सदाशिव ने एक मकान भाड़े का ले लिया। उसका विचार था कि वह शान्ति से कुछ दिन रहकर दिल्ली जाने की बात निश्चय करेगा। परन्तु यहाँ भी उसको शान्ति नहीं मिली। रावलपिंडी और मुलतान के हिन्दू अपना घर-बार लुटा सहस्रो की संख्या में आने लगे थे।

सदाशिव उनकी दुर्दशा की कथाएँ सुनकर पागल हो रहा था। वह सोचता था कि क्या हिन्दुओं के लिए मुसलमानों के साथ रहने को स्थान नहीं।

निर्भ्रान्त मन

[१]

अनिमा देवी अपने पिता के देहान्त हो जाने पर उदास तो थी ही परन्तु जब उसे गिरीश के चक्षु-विहीन हो जाने का समाचार मिला तो उसकी कमर ही टूट गई। कई दिन तक तो वह खाट से उठ ही नहीं सकी। सुधीर और उसके पिता के अन्य साथी उसका मन बहलाने का प्रयत्न करते रहे। गिरीश के पिता जब अपने पुत्र को वियाना ले जाने लगे तो इसने साथ जाने की इच्छा प्रकट की परन्तु गिरीश की माँ तो गिरीश की मुसीबतों का कारण उसे ही समझती थी। इससे उसने अनिमा को गिरीश से मिलने ही नहीं दिया और उसे साथ ले जाने से न कर दी।

जब गिरीश को हवाई जहाज के अड्डे पर ले जाया जा रहा था तो अनिमा वहाँ पर जा पहुँची और उसकी माँ के मना करने पर भी उसके सामने जा खड़ी हुई। "गिरीश जी।"

अनिमा इतना कहकर रुक गई। शब्द उसके गले में अटक गए। गिरीश ने हाथ फैलाते हुए कहा, "अनिमा! तुम हो।" अनिमा ने हाथ बढ़ाकर अपना हाथ गिरीश के हाथ में दे दिया। गिरीश ने टटोलकर अपना हाथ उसके कंधे पर रख उसका आश्रय लेकर खड़े होकर कहा, "तुम इतनी देर तक कहाँ रही हो? पहिले मुझे बताया गया था कि तुम घायल हो गई हो, फिर तुम पिता जी के शोक में घर से नहीं निकलती और पश्चात् तुम रुग्न होकर दिल्ली चली गई हो।"

अनिमा ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर उसकी माँ की ओर देखा। वह लज्जा से आँखें नीचे किए हुए खड़ी थी। अनिमा समझ गई

कि उसने अपने पुत्र को उससे पृथक् रखने के लिए झूठ बोला है। उसने एक क्षण में अपने व्यवहार का निश्चय कर लिया। और कह दिया। "हाँ, मेरी नानी जी आई थीं और एकाएक उनका मुझको ले चलने का विचार हो गया। मैं कल ही लौटी हूँ। यहाँ आकर पता चला कि आप वियाना जा रहे हैं। इससे मिलने यहाँ चली आई हूँ।"

"कितना अच्छा होता यदि तुम मेरे साथ चल सकती।"

"परन्तु अब इतनी जल्दी तो पासपोर्ट बन नहीं सकता।" अनिमा ने उसकी माँ की ओर घृणा की दृष्टि से देखते हुए कहा। गिरीश को माँ की आँखों से आँसू झर-झर बह रहे थे। अनिमा ने अपना कहना जारी रखा, "मुझको बहुत शोक है कि मै आपकी सेवा करने के लिए साथ नहीं जा सकी। अपना समाचार भेजवाने का यत्न करिएगा और मै आपकी यहाँ प्रतीक्षा करूँगी।"

गिरीश ने टटोलते हुए अपना हाथ अनिमा के सिर पर रख दिया और आर्द्रता के भाव में सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "पत्र नहीं लिखूँगा। आप लिख नहीं सकता और किसी दूसरे से लिखाना नहीं चाहता। तुम्हारा भेजा पत्र भी तो पढ़ नहीं सकूँगा। अतएव अब चलता हूँ। आशा करता हूँ कि याद रखोगी।" इतना कह उसने अनिमा के हाथ को अपने दोनों हाथों मे दबाकर छोड़ दिया और अपने पिता जी का हाथ पकड़कर हवाई जहाज की ओर चल पड़ा।

अनिमा को गिरीश की माँ का झूठ बोलना बहुत बुरा प्रतीत हुआ। इस पर भी उसकी इच्छा नहीं हुई कि माँ-पुत्र मे वैमनस्य उत्पन्न कर दे। गिरीश आँखो के ऑपरेशन के लिए और उसकी माँ उसकी सेवासुश्रूषा के लिए साथ जा रही थी। दोनों मे मनमुटाव हो जाने से गिरीश को ही हानि थी।

जब पिता-पुत्र आगे निकल गए तो गिरीश की मा ने अनिमा को पीछे रोक लिया। जब वे आवाज सुनने की सीमा से दूर निकल गए

तो उसकी मा ने कहा, "अनिमा ! मै तुम्हारी कृतज्ञ हूँ और हृदय से धन्यवाद करती हूँ ।"

अनिमा की आँखो से भी आँसू टपकने लगे थे और उसके मुख से केवल यह उत्तर निकला, "क्या लाभ होगा इससे ?"

उसी दिन सायंकाल अनिमा ने कलकत्ता छोड़ दिया। उसके ननिहाल दिल्ली में थे जरूर, परन्तु वे इतने ग़रीब हो गए थे कि जब से अनिमा और उसकी माँ वहाँ से गए थे तब से न तो कोई उनको मिलने गया था और नही कोई चिट्ठी-पत्री आती-जाती थी। अनिमा जब दिल्ली ननिहाल में पहुँची तो सब अचम्भे में उसका मुख देखते रह गए। उसकी नानी थी, नाना था। दो मामा-मामियाँ और उनके बच्चे थे। सब मिलकर ग्यारह प्राणी थे। अब खाने को एक मुख और आता देख कोई नहीं जानता था कि क्या कहे।

सबसे पहिले नानी ने मुख खोला, "अनिमा तुम अब काफ़ी बड़ी हो गई हो। तुम्हारा विवाह नहीं हुआ अभी ?"

"माँ जी नहीं !" अनिमा ने वास्तविक बात समझते हुए कहा, "मैं यहाँ से छै फुट भूमि रात को सोने को चाहती हूँ। इससे अधिक आप पर बोझा नहीं डालूँगी।"

नाना ने इस बात की कटुता का अनुभव कर कहा, "नहीं बेटी। यह बात नहीं। जैसा हम खाते-पीते हैं, वैसा तुम भी खा-पी सकती हो। हम इतने गए-गुजरे नहीं कि दो वक्त अपनी बेटी को रोटी भी न दे सकें।"

अनिमा एक बिस्तर ही साथ लेकर आई थी। सो उसने अपने नाना के कमरे में एक कोने में रख दिया। अगले दिन से उसने नौकरी ढूँढ़नी आरम्भ कर दी। अपने घर का सब बचा हुआ और सामान के बेचने से प्राप्त, धन लेकर आई थी। इसको उसने सेविंग बैंक में हिसाब खोलकर जमा करा दिया। एक हज़ार से ऊपर रुपया था।

शोर्ट हैंड और टाईप करने का काम जानने से नौकरी पाने में कठिनाई नहीं हुई।

उसे दिल्ली में आए अभी एक सप्ताह भी नहीं हुआ था कि अनिमा ने एक सायंकाल अपने नाना को बताया कि उसे 'बनारसी दास एण्ड सन्ज़' कम्पनी में एक सौ पचास रुपया मासिक की नौकरी मिल गई है। नाना ने उसके सिर पर हाथफेर कर आशीर्वाद देते हुए पूछा, "यह कम्पनी कहाँ है बेटी?"

"नई दिल्ली में बारहखंभा सड़क पर एक ठेकेदार हैं। कल उनका इश्तहार हिन्दुस्तान समाचार-पत्र में पढ़ा था। आज गई तो उन्होंने परीक्षा ली और रख लिया है।"

नाना को तो खुशी हुई ही साथ ही दोनो मामियो के टेढ़े हुए मुख भी सीधे हो गए। बड़ी, जिसका नाम सन्त कुमारी था इतने दिन के पश्चात् उसके पास आकर बैठी और घन्टा भर बातें करती रही। छोटी मामी प्रकाशवती जिसकी पकी रोटी उसके नाना, नानी और वह स्वयं इतने दिन खाती रही थी उसकी ओर देखते समय माथे पर त्यौरी चढ़ा लेती थी आज हंस कर बोली। अनिमा सब बात समझती थी। उसको मालूम हो चुका था कि उसके बड़े मामा केवल एक सौ दस रुपये महीना वेतन पाते हैं और उसके तीन बच्चे हैं। वे अपने पिता को पन्द्रह रुपया महीना देते हैं और शेष में बहुत कठिनाई से खाना-पीना चलता है। छोटा मामा पौने दो सौ वेतन पाता था। वह अपने माता-पिता को खाने को भोजन देता था। छोटी मामी बहुत फजूल-खर्च थी। इससे वेतन अधिक और बच्चे कम होने पर भी उसके पास बचता कुछ नहीं था।

अगले दिन अनिमा ने कुछ रुपये बैंक से निकलवाकर छोटी मामी के हाथ पर रखते हुए कहा, "अभी आप तीस रुपये खाने के लिए और दस रुपये मकान के किराए के हसाब में रख लीजिए।

फिर जो कुछ आवश्यकता होगी बताईएगा। वेतन मिलने पर दे दूँगी।"

मामी ने एक-आध बार न की परन्तु रुपये हाथ में लेते ही आँचल मे बाँध लिए। अनिमा के नाना को यह बात पसन्द तो नहीं आई परन्तु अपनी विवशता जान चुप कर रहा।

अनिमा अब नित्य नौकरी पर जाने लगी थी। प्रातः पाँच बजे उठकर स्नानादिक से छुट्टी पा चौका बासन में लग जाती। ठीक साढ़े आठ बजे भोजन तैयार कर मामा को खिला और स्वयं खाकर नौ बजे काम पर जाने को तैयार हो जाती।

काम से सायं पाँच बजे वापस आती थी और फिर बच्चों को पढ़ाई कराने लग जाती थी। रात खाना उसकी मामी पकाती थी। रात को दस बजे सोकर अगले दिन फिर पाँच बजे प्रातः उठना और सदा की भाँति काम करना होता था। इस प्रकार दिन व्यतीत हो रहे थे। अब उसने एक बाईसिकल खरीद ली थी, जिस पर वह अपने घर से नई दिल्ली में काम पर जाया करती थी।

नवम्बर के दिन थे और गरम कोट पहनकर अनिमा बाईसिकल पर सवार, दरियागंज से बारह-खंभा रोड की ओर आ रही थी, कि एक ताँगे मे बैठे चेतनानन्द ने उसे पहचान लिया और ताँगा खड़ा-कर लपककर उतर उसकी बाईसिकल को रोक खड़ा हो गया। अनिमा बाईसिकल से नीचे उतर, नमस्कार कर पूछने लगी, "आप यहाँ कैसे घूम रहे हैं?"

चेतनानन्द ने उत्तर देने के स्थान अपनी बात कह दी, "आप कलकत्ता से आईं तो मिलकर भी नहीं आईं। आपका धन्यवाद करने के लिए आपके मकान पर पहुँचा तो पता मिला कि आपके रहने का मकान जलकर भस्म हो चुका था। एक दिन सुधीर बाबू से भेंट हो गई। उनसे पता चला था कि आप दिल्ली में हैं। मुझे दिल्ली में आए तीन दिन हो चुके हैं। मुझ को पूर्ण आशा थी कि

आप से चलते-फिरते अवश्य कहीं भेंट हो जावेगी। मेरा अनुमान ठीक ही निकला है। बताईए आप कहाँ रहती हैं ?"

"सुधीर बाबू ने क्या यह नहीं बताया कि पिता जी का देहान्त हो गया है और गिरीश बाबू की आँखे जाती रही हैं।"

"बताया था।"

"इस कारण मेरा वहाँ रहना असम्भव हो गया। यहाँ एक ठिकाना है, इस कारण यहाँ आ पहुँची हूँ। आप यहाँ कब तक रहिएगा।"

"अपने विचार से तो सदैव के लिए रहने आया हूँ। मैंने नौकरी छोड़ दी है।"

"नौकरी छोड़ दी है। क्यों ?"

"मेरे मस्तिष्क मे यह बात बैठ गई है कि बंगाल की सरकार एक शत्रु-जाति की सरकार है। मैं उसमे नौकरी नहीं कर सकता।"

अनिमा यह सुन गम्भीर विचार में पड़ गई। उसने अधिक गहराई मे जाने की आवश्यकता नही समझी। इससे बात बदल दी, "नसीम बहन साथ आई हैं क्या ?"

"नहीं। उनका कहना है कि वहाँ तो मकान मिला है। यहाँ मैं मकान और काम का प्रबन्ध कर लूँ तो वे आ जावेगी।"

"मैंने सुना था कि उसके भाई यहाँ रहते हैं।"

"हाँ, परन्तु वह अपने भाई के पास नहीं रहना चाहती।"

"विचित्र है। मैं तो अपने नाना के पास रहने आ गई हूँ ?"

"अनिमा देवी ! उसमें और आप में अन्तर है न ?"

"मैं अब काम पर जा रही हूँ। आप से फिर कहाँ भेंट होगी ?"

"सायं काल छै बजे। मै रायल होटेल मे ठहरा हूँ। कमरा नम्बर सोलह है।"

"अच्छी बात है। आशा करती हूँ कि आज ही आप से भेंट होगी।"

अनिमा नसीम के अपने पति के साथ दिल्ली न आने में विशेष कारण मानती थी। केवल स्थान की असुविधा को वह कुछ अधिक महत्ता नहीं देती थी। इस प्रकार के विचारों मे मग्न वह अपने काम पर चला गई।

कार्यालय मे बनारसी दास का लड़का इन्द्रजीत काम की देख-भाल करता था। वह अनिमा की विशेष प्रतिभा से बहुत प्रभावित हुआ था। इसका परिणाम यह हुआ था कि अनिमा दिन-प्रतिदिन बनारसी दास के घरवालों के निकट होती जाती थी। इन्द्रजीत की स्त्री कमला से उसका परिचय हो गया और दोनों परस्पर मिलती भी रहती थीं।

आज जब अनिमा कार्यालय में पहुँची तो उसकी मेज़ पर एक निमंत्रण-पत्र पड़ा दिखाई दिया, निमंत्रण इन्द्रजीत की स्त्री कमला की ओर से था। लिखा था, "पिता जी के मित्र और लाहौर के प्रसिद्ध रईस लाला जीवनलाल की पुत्री रेवा देवी अपने पति सहित हमारे यहाँ चाय पर आ रही हैं। अतएव अनिमा देवी से भी प्रार्थना है कि सायं चार बजे चाय-पार्टी में सम्मिलित होकर अनुगृहीत करें।"

अनिमा देवी न नहीं कर सकी। उसका विचार था कि इस चाय-पार्टी में उसका जाना एक व्यवहारिक सी बात है। वास्तव में कमला देवी का आशय भी ऐसा था।

महेश और रेवा एक मास के लिए लाहौर से बाहर घूमने निकले हुए थे। उनका विचार था कि दिल्ली, अजमेर, चित्तौड़, बम्बई, नासिक, मद्रास रामेश्वर इत्यादि स्थानो पर भ्रमण कर दिसम्बर मास के अन्त तक लाहौर लौट जावेंगे। सब स्थानो पर लाला जीवनलाल के परिचित लोग थे और उन सब के लिए महेश परिचय-पत्र लाया था। दिल्ली मे वह लाला बनारसी दास के नाम पत्र लाया था। आज की चाय-पार्टी उस पत्र का परिणाम थी। महेश और रेवा नई दिल्ली में मरीना होटेल मे ठहरे थे।

पौने चार बजे कमला देवी कार्यालय में आकर अनिमा को ले गई। कार्यालय घर के एक भाग में ही था। चार बजे रेवा और महेश आये। इन्द्रजीत और लाला बनारसी दास भी इस समय वहाँ आ गए। कोठी के ड्रायंग रूम में चाय-पार्टी का आयोजन था। लाला बनारसी दास रेवा को तो जानते थे परन्तु महेश को उसने पहिली बार ही देखा था। इस कारण उसका परिचय इस पार्टी में एक मुख्य बात हो गई। रेवा को कमला और अनिमा एक ओर लेकर बैठ गईं।

कमला ने अनिमा का परिचय रेवा से कराया। "ये हैं अनिमा देवी-हमारे कार्यालय में स्टीनोटाइपिस्ट। बहुत योग्य और समझदार काम करनेवाली हैं।"

रेवा ने हाथ जोड़कर नमस्ते कर दी। नमस्ते करते समय जब अनिमा से उसकी आँखें मिलीं तो उसको पता चल गया कि यह कोई साधारण लड़की नहीं। वह उससे पूर्व परिचय पूछने लगी। अनिमा ने संक्षेप में अपना परिचय दे दिया। जब उसने अपने पिता का नाम बताया तो बनारसी दास, जो मेज़ के दूसरी ओर बैठा हुआ था कान खड़े कर अनिमा की बात सुनने लगा। जब अनिमा अपनी कहानी सुना चुकी तो बनारसी दास ने पूछ लिया, "अनिमा देवी! आप गुरु धीरेन्द्र जी को जानती हैं?"

अनिमा देवी ने अचम्भे में लालाजी का मुख देखा। पश्चात् कुछ सोच कर कहा, "हाँ। एक गुरु धीरेन्द्र जी मेरे पिता के सहयोगी थे। उनका देहान्त हो गया है।"

"कब?"

"आज पाँच मास हो चुके हैं।"

"आप शंकर पंडित को भी जानती हैं क्या?"

"जी हाँ उनके भी दर्शन किए हैं।"

"मै शिशिर कुमार जी को जानता हूँ।"

"उनका भी देहान्त हो गया है।"

"तो आप अपने नाना के यहाँ रहती हैं?" बनारसी दास ने गम्भीर हो पूछा।

"मैं नहीं जानती थी कि आप मेरे विषय मे इतना कुछ जानते हैं।"

"आपके विषय में तो नहीं परन्तु आपके पिता जी को जानता था। उनके कार्य को जानता था और उनके मित्रों को जानता था। परन्तु अब तो समय बदल गया है।"

अनिमा देवी विस्मय में लाला जी का मुख देखती रह गई। रेवा ने उसका ध्यान तोड़कर पूछा, "आपके पिता कोई धनी-मानी आदमी रहे होंगे।"

"हम बहुत ग़रीब आदमी थे। पिता जी का काम छूटे तीन वर्ष से ऊपर हो चुके थे और हमारा निर्वाह मेरे वेतन पर चलता था। मेरी नौकरी भी, वहाँ कलकत्ता मे, छूट चुकी थी। जब उनका देहान्त हो गया तो मेरे लिए कलकत्ता में रहना कठिन हो गया। मैं अपने घर का सब सामान बेच कर यहाँ आ सकी थी।"

"अब यहाँ तो कोई कष्ट नहीं होगा?" रेवा ने पूछा।

"अब तो मै अकेली हूँ। एक सौ पचास रुपये मासिक यहाँ से मिल जाते हैं। निर्वाह हो कर भी कुछ बच जाता है।"

इस समय बनारसी दास महेश से व्यापार की बातें करने लगा था। इन्द्रजीत रेवा से बातें कर रहा था। चपरासी 'ईविनिन्ग न्यूज़' पत्र दे गया। पत्र लेकर बनारसी दास ने पढ़ना आरम्भ कर दिया। उसमें एक समाचार लिखा मिला। 'भारत के डिप्टी-प्रधान पर मुसलमान गुंडो का आक्रमण', समाचार का यह शीर्षक था। बनारसी दास ने इस समाचार को ऊँचे ऊँचे पढ़ना आरम्भ कर दिया। समाचार आगे यह था, "जब मुसलिम लीग के नेता शपथ उठाने

वाईसराय के महल में जा रहे थे तो पंडित जवाहरलाल नेहरू भी उस अवसर पर उपस्थित होने के लिए वहाँ गए। वह अपनी मोटर गाड़ी बाहर छोड़कर जब भीतर गए तो कुछ मुसलिमलीगी गुंडों ने पंडितजी की गाड़ी पर जलते सिगरेट और दियासलाई फेंकीं, जिससे पडित जी की मोटर की गद्दियाँ जल गईं। जब पंडितजी शपथ लेने की रसम से लौटे तो मुसलमान गुंडों ने उन पर पत्थर फेंके। यदि सैक्रेटेरिएट के हिन्दू कलर्क, जो तमाशा देखने निकल आए थे उन मुसलमानों से न भिड़ जाते तो झगड़ा बढ़ जाने की संभावना थी।"

इस समाचार को सुन सब विस्मय में एक-दूसरे का मुख देखने लगे। बनारसी दास ने कहा, "मुसलमानों का बहुत साहस बढ़ गया है।"

"पर प्रश्न तो यह है कि क्या वहाँ पुलिस उपस्थित नहीं थी और यदि थी तो उसने कोई गिरफ्तारी की है अथवा नहीं।" अनिमा देवी ने पूछा।

"समाचार पत्र में ऐसी कोई बात नहीं लिखी।"

"मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह भी डायरैक्ट ऐक्शन का एक अंग ही है।"

"हो सकता है।" बनारसी दास का उत्तर था। इसी समय एक खद्दर धारी लम्बे छरहरे शरीर के व्यक्ति, कमरे में प्रवेश करते हुए बोले, "हो क्या सकता है। असलीयत में यही बात है।"

बनारसी दास ने आने वाले व्यक्ति को देखा तो प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा, "ओह! सआदत हुसैन साहब। सुनाओ भाई कहाँ रहते हो? कैसे आना हुआ है?"

"यही, जिस विषय में आप बात कर रहे थे। लाला जी बात यह है कि कल मुसलिम लीग के डायरैक्ट ऐक्शन का एक महान दिन है, ऐसा हमे मालूम हुआ है। कल केन्द्रीय असैम्बली की

मीटिंग आरम्भ होगी और सुना है कि मुसलमान असैम्बली-हाल के सामने प्रदर्शिन करेंगे। उस समय यदि अवसर मिल गया तो पंडित जी पर हाथ सफा करने का यत्न किया जावेगा।"

'यह हो सकता है।" लाला बनारसी दास ने कहा। "परन्तु हज़रत! इस विषय की चर्चा करने के लिए तो आप को डिप्टी कमिश्नर साहब के पास जाना चाहिए। यहाँ आने से क्या लाभ होगा?"

"डिप्टी कमिश्नर तो एक अंग्रेज़ है न। उसके पास मैं गया था। हज़रत कहते थे कि उसे इसका विश्वास नहीं होता। इस पर मैंने कहा कि पुलिस का प्रबन्ध तो हो जाना चाहिए। तो जनाब फ़रमाने लगे कि क्यों? मैं उसे प्रबन्ध के मामले में सबक़ सिखाने आया हूँ, नतीजा यह हुआ कि मैं अपना-सा मुख लेकर चला आया हूँ।"

"तो आप होम-मैम्बर को टैलीफोन कर दीजिए न?"

"कर दिया है और वह कहते हैं चीफ कमिश्नर को कहूँ।"

"ग़ज़ब है। कैसे आदमियों से वास्ता पड़ा है। हिन्दुस्तान पर राज्य करने बैठे हैं या बच्चो का खेल खेल रहे हैं। अरे बाबा, ऐसे आदमी को तो हवालात में रात गुज़ारनी चाहिए। देखो न, आज पंडित जी की गाड़ी पर पत्थर फेंके गए हैं और समीप खड़े पुलिस-वाले किसी को भी पकड़ नहीं सके। अगर कोई आदमी हकूमत करने-वाला होता तो आज पुलिस के कई अफसर डिसमिस हो चुके होते। जब अपने ही विषय में ये लोग इतने अयोग्य सिद्ध हो रहे हैं तो प्रजा की ये क्या रक्षा करेंगे?"

"पर लाला जी! उनकी नीति की नुक्ताचीनी करने की जगह क्या यह अच्छा न होगा कि हम सोचें कि इस मामले में हम कुछ कर सकते हैं या नहीं?"

"हम क्या कर सकते हैं? हमारे पास कौन अधिकार है और फिर हमारी शक्ति ही क्या है?"

"मै तो निराश होकर घर जा पहुँचा था, परन्तु वीणा ने मुझे आपके पास भेजा है। उसका कहना है कि आप आर्य-समाजी हैं। आप हिन्दू-सभा के भी कुछ हैं। आप यदि चाहें तो अपने छुपे हाथों से पडित जी की जान की रक्षा कर सकते हैं।"

इस प्रस्ताव से लाला बनारसी दास गम्भीर विचार मे पड़ गए। उन्हें इस प्रकार चुप देख साआदत हुसैन ने कहा, "आप के पास एक ऐसी संस्था है जिसने एक बार एक हिन्दू लड़की को, जिसे कुछ मुसलमान गुंडे उड़ाकर लाहौर की एक दरगाह में ले गए थे, एक रात के अन्दर न सिरफ ढूँढ़ निकाला था बल्कि उसे छुड़ाकर दिल्ली पहुँचा दिया था।"

"हाँ, आप सत्य कहते हैं। परन्तु अब वह नहीं है। वह हिन्दू-मुसलमान मित्रता की चट्टान से टकराकर चकनाचूर हो गई है।"

"क्या मतलब ? क्या वह संस्था अब नहीं है ?"

कुछ सोचकर बनारसीदास ने कहा, "कम से कम वह मेरे अधीन नहीं है। और मैं नही कह सकता कि हिन्दू-मुसलमान के झगड़े में वह अब कोई हस्तक्षेप करेगी या नहीं ?"

"लेकिन एक हिन्दू लड़की को मुसलमानो के हाथ से छुड़ाने से क्या पंडित जी की जान बचानी ज्यादा फिरकेदाराना बात है ?"

"मै तो नहीं समझता, मगर जिसके अधीन वह है, उसके समझने की बात है।"

"तो वह कौन है ?"

"मैं उससे पूछकर बता सकता हूँ। मेरा उसमें अब कोई अधिकार नहीं है।"

इतना वह बनारसीदास उठकर साथ के कमरे में, जहाँ टेलीफून रखी थी, चला गया। साआदत हुसैन भी उनके पीछे कमरे से निकल गया उनकी बातें सुन और लाला बनारसीदास के मुख से गुरु धीरेन्द्र का नाम सुन अनिमा समझ गई कि स्वराज्य-सस्थापन-समिति की बात

हो रही है। उसे यह जानकर कि बनारसी दास जी इस सस्था से सम्बन्ध रखते हैं, बहुत प्रसन्नता हुई। वह अपने इनके यहाँ नौकरी पाने के संयोग पर बहुत विस्मय करने लगी। चाय समाप्त हो चुकी थी और इधर-उधर की बाते हो रहीं थी। अनिमा को अपने विचारो में खोया हुआ देख कमला ने पूछ लिया, "अनिमा देवी! क्या विचार कर रही हो?"

"मै सोच रही थी कि कौन-सी ऐसी संस्था है जो एक ही रात में किसी लड़की को ढूँढ़कर लाहौर से दिल्ली पहुँचाने की शक्ति रखती है।"

कमला हँस पड़ी और बोली, "छोड़ो, इस बात को अनिमा। यह रेवा जी कहती हैं कि आप एक अति दृढ निष्ठावाली लड़की प्रतीत होती हैं।"

"रेवा बहिन की बहुत कृपा है जो ऐसा समझती हैं। वास्तव में मैं एक निर्धन परिवार की लड़की हूँ। मुझे दृढ़ सकल्पवाली होना ही चाहिए, अन्यथा जीना ही दुर्भर हो जावे।"

"इसमे निर्धनता अथवा साधन-सम्पन्नता की बात नहीं।" रेवा ने कहा। "मै तो आपकी दृढ़ चुबुक देखकर कह रही हूँ। मैं फिजिओनौमी का अध्ययन कर चुकी हूँ और मेरा अनुमान है कि अनिमा बहिन सहस्रों लोगों के सामने भी अपने निश्चय और विश्वास से डिग नहीं सकती।"

इस समय बनारसीदास साआदत हुसैन के साथ कमरे में आ गया। लाला जी ने उसे चाय पर निमंत्रित करते हुए कहा, "अब चिन्ता की आवश्यकता नहीं। जब शेखरानन्द जी ने कहा है तो वह कर दिखावेगे।"

[२]

साआदत हुसैन ने जल्दी-जल्दी एक प्याला चाय पी और यह कहकर कि वे अपने साथियो की चिन्ता कम करने जा रहा है, चला

गया। उसके जाने के पश्चात् कमला ने पूछ लिया, "तो शेखरानन्द जी मान गए हैं क्या ?"

"बड़ा मज़ा हुआ।" लाला जी ने कहा, "शेखरानन्द जी कहने लगे, 'साआदत हुसैन साहब ! वे हजारो वालंटीयर, जो सरकार-अँग्रेज़ी की जेलें भर देते थे कहाँ हैं अब ?' इस पर वे बोले, 'वे तो लड़ना नहीं जानते। साथ ही यदि कांग्रेस के वालन्टियर लड़ने लगे तो महात्मा जी नाराज़ हो जावेगे। उनका तो कहना है कि स्वराज्य मिल ही इसलिए रहा है कि कांग्रेस ने अहिंसा की नीति का अवलम्बन किया हुआ है।"

अनिमा की हँसी निकल गई। रेवा विस्मय मे उसकी ओर देखने लगी। बनारसीदास भी हँस रहा था। अनिमा ने अपने हँसने का कारण बताते हुए कहा, "रेवा बहिन ! ये अहिंसा के देवता वास्तव में भीरुता की मूर्ति हैं। जब भी कभी कहीं मरने की आशंका होती है तो ये महात्मा जी की ओट में छुप जाते हैं। ये लोग अपने पाप-कर्मों का बोझा दूसरों पर लादने में बहुत चतुर हैं।"

बनारसीदास ने अनिमा का समर्थन करते हुए कहा, "देखो, बेटी कमला। अकर्मण्यता को वैराग कहनेवाले ससार में कम नहीं हैं। इसी प्रकार विवशता को अहिंसा का नाम देनेवाले भी बहुत हो गए हैं। दोनों प्रकार के लोग महापातकी हैं। ये लोग यह तो चाहते हैं कि इनका नेता बच जावे, परन्तु यह भी चाहते हैं कहीं खून-खराबा हो जावे तो कांग्रेस का नाम न लगे।

"इस पर भी शेखरानन्द ने कहा है कि पंडित जी के जीवन और मान की रक्षा तो करनी ही है, चाहे कुछ भी हो।"

अनिमा ने कहा, "यह तो ठीक ही है परन्तु कलकत्ता और नोआखाली में मुसलमानो का व्यवहार देखकर भी कांग्रेसी लीग की सहायता करनेवालो को राष्ट्रवादी कहते हैं और इनको भी मुसलमानों के हाथ से बचाने का यत्न करनेवालों को ये साम्प्रदायिक कहेंगे।"

सत्य ही मुसलमानो ने शरारत करने का विचार कर रखा था। साग्रादत हुसैन भी असेम्बली का एक सदस्य था। यद्यपि शेखरानन्द ने उसे वचन दे रखा था कि वह पंडित जी के जीवन और मान की रक्षा करेगा, इस पर भी साग्रादत हुसैन घबराया हुआ, बहुत प्रातः बनारसीदास जी के घर पहुँच गया। वहाँ जाकर लाला जी को विवश कर दिया कि शेखरानन्द को काम की याददाश्त करा दे। लाला जी ने कहा भी कि इसकी आवश्यकता नहीं, परन्तु साग्रादत हुसैन की घबराहट देख लाला जी ने शेखरानन्द को टेलीफून कर दिया। शेखरानन्द घर पर नहीं था। उसकी स्त्री ने टेलीफून मे उत्तर दिया कि वे बहुत प्रातःकाल के गए हुए हैं। उसने यह भी बताया कि वे दोपहर से पूर्व नहीं लौटेंगे।

शेखरानन्द के घर पर न मिलने से साग्रादत हुसैन की चिन्ता कम नहीं हुई। लाला बनारसीदास उसे घबराया हुआ देख कहने लगे, "आप चिन्ता न करे। वे अवश्य इसी के प्रबन्ध में लगे होगे।" साग्रादत हुसैन को इससे संतोप नहीं हुआ। वह वहाँ से विदा होकर कौंसिल-चेम्बर मे जा पहुँचा। वहाँ अभी चपरासी झार-फूँक कर रहे थे। वह पार्टी रूम में गया। वहाँ भी कोई नहीं था। आधा घंटा तक वह अकेला बेचैन इधर-उधर घूमता रहा। सबसे पहिले श्री विश्वेश्वरन पार्टी के 'विप' आए। वह साग्रादत हुसैन को पार्टी-रूम मे घबराए हुए इधर से उधर घूमते हुए देख पूछने लगा, "मालूम होता है कि हालत ठीक नहीं?"

"कह नहीं सकता। डिप्टी कमिश्नर ने तो यह कहकर टाल दिया कि वह अपने काम को मुझसे अधिक अच्छी तरह जानता है। नगर के एक स्वयं-सेवक दलवालों ने वचन दिया था, परन्तु अभी तक उनमें से कोई नहीं आया।"

"मैं समझता हूँ कि मुसलमानों के विषय में आपका भ्रम-मात्र

भी तो हो सकता है। दिल्ली में ये लोग कोई शरारत करेंगे, मुझे विश्वास नहीं होता।"

"परन्तु आयंगर साहब, मैं पक्के-रूप मे जानता हूँ कि वे आज शरारत करेंगे। इसमे उनका उद्देश्य वही है जो कलकत्ता में और नोआखली में फ़साद करने का था। वे चाहते हैं कि हिन्दुओं को इतना डरा-धमका दिया जावे कि वे उनकी सब माँगें मान ले।"

"यह तो ठीक है, परन्तु मैं कहता हूँ कि दिल्ली और बंगाल में बहुत अंतर है। वहाँ की सरकार बदमाशों की सहायता कर रही थी।"

"और यहाँ की सरकार क्या कर रही है?"

"तो क्या हमारे होम-मेम्बर यहाँ फसाद चाहते हैं?"

"अभी होम-मेम्बर साहब का राज्य नहीं हुआ। यहाँ राज्य चीफ कमिश्नर और डिप्टी कमिश्नर का है। दोनों अँग्रेज हैं और दोनों होम-सेक्रेटरी के अधीन हैं। वह भी अँग्रेज है।"

"खैर, यह तो है ही। पर मैं पूछता हूँ कि क्या आपके पास कोई निश्चित प्रमाण है, जिससे झगड़े की आशंका हो रही है।"

"हाँ, मेरे खानसामे ने बताया है कि उनके पड़ोस की मस्जिद में परसों एक मीटिंग हुई थी, जिसमें उन्होंने यह फैसला किया है कि पंडित जी पर हाथ सफा किया जावे। इसी मतलब से कल उन्होने यत्न किया था। कुछ हिन्दू क्लर्कों ने उनकी कोशिश पर पानी फेर दिया। उसका कहना है कि आज काम पूरा कर दिया जावेगा। वह बेवकूफ समझता है कि मैं इससे खुश हुआ हूँ।"

इस प्रकार दोनों बातें करते हुए असेम्बली-चेम्बर के बाहर आ गए। वहाँ ड्योढ़ी में खड़े होकर वह लोगों की छोटी-सी भीड़ को, जो इस समय तक एकत्रित हो गई थी, देखने लगे। साआदत हुसैन ने उन लोगों को देखकर कहा, "यह सब मुसलमान हैं। इनमें हिन्दू कोई नहीं और पुलिसवाला भी अभी कोई नहीं आया।"

मिस्टर आयंगर ने हाथ पर बँधी घड़ी देखकर कहा, "साढ़े दस बज गए हैं।"

"यही तो कह रहा हूँ। हिन्दू सेवक दलवालों ने धोखा दिया है।"

इस समय एक भारी शरीर का आदमी, सिर से पाँव तक खद्दर पहिने, तांगे में से अहाते के बाहर ही उतरा और वहीं ठहर गया। मिस्टर आयंगर ने पूछा, "उस आदमी को जानते हो?" इतना कह उसने खद्दरपोश की ओर संकेत कर दिया।

साआदत हुसैन ने उसकी ओर देखकर सिर हिला दिया और कहा, "नहीं! मै नहीं जानता। देखने से हिन्दू मालूम होता है।"

सेक्रेटेरिएट के कुछ क्लर्क जाते-जाते रुककर तमाशा देखने लगे। इस प्रकार वहाँ खड़े लोगो के दो ग्रोह बन गए। ज्यों-ज्यों समय समीप आने लगा दोनों ग्रोह बढ़ने लगे। एक ओर, हाथों में फाइलें लिए हुए क्लर्क मालूम होते थे और दूसरी ओर नगर के बदमाश और कोठियो के खानसामे और बैरे मालूम होते थे। इस परिस्थिति को देख साआदत हुसैन के माथे पर पसीने की बूदे झलकने लगीं थीं। उसने आयंगर को भी दिखाया कि मुसलमानों की भीड़ में कई लोग लाठियाँ लिए हुए थे। एक मुसलमान हाथ में नंगी छुरी लिए दूसरों को दिखा रहा था। यह देख तो आयंगर का दिल भी बैठने लगा। वह यह कह कि भीतर जाकर देखना चाहता है कि कौन-कौन आया है, साआदत हुसैन को वहीं छोड़ भीतर पार्टी-रूम में चला गया। साआदत हुसैन आ रहे सदस्यो से मिल रहा था। इस सब समय उसकी एक दृष्टि भीड़ की ओर थी। अभी तक पुलिस नहीं आई थी। तमाशा देखनेवालों की भीड़ बढ़ रही थी। इस समय तक बीच की सड़क छोड़कर सामने का फुट-पाथ सब लोगों से भर गया था। अभी तक भी भीड़ मे दो ग्रोह स्पष्ट दिखाई देते थे। ज्यों-ज्यों कांग्रेसी मेम्बर

आते थे मुसलमान, 'अल्ला-हू-अकबर' का नारा लगाते थे और हिन्दू खड़े-खड़े 'महात्मा गाधी की जय' कहते थे।

ग्यारह बजने मे केवल दस मिनट रह गए थे। इस समय भीड़ एकाएक इतनी बढ़ गई कि लोग सड़क पार कर चेम्बर की ड्योढी में भी एकत्रित हो गई। साआदत हुसैन को यह देख सतोष अनुभव हो रहा था कि हिन्दुओं की संख्या बहुत अधिक हो गई थी। अभी भी पुलिस के दो-तीन कान्सटेबलों के अतिरिक्त कोई नहीं था।

एकाएक मुसलमानो का वह झुंड जो सबसे पहिले वहाँ पहुँचा था सामने के फुट-पाथ को छोड़, सड़क पार कर ड्योढ़ी मे घुस आया। ये मुसलमान आगे बढ़ने के लिए यत्न करने लगे। वे हिन्दू क्लर्कों को, जो वहाँ पहिले ही खड़े थे, धकेलकर आगे आने लगे। साआदत हुसैन ने देखा कि वह आदमी जो अपने साथियो को छुरी दिखा रहा था सबसे आगे की पंक्ति में खड़ा है। उसके दोनो हाथ ओवरकोट जो वह पहिने हुआ था, की जेबो में थे। साआदत हुसैन ड्योढी मे खड़ा था परन्तु उसके चारो ओर लोग खड़े हो गए थ और वह दीवार के साथ ठसकर खड़ा, हिल नहीं सकता था।

इतने में मिस्टर लियाकत अली खान की मोटर आई परन्तु वह ड्योढी मे खड़ी न होकर असेम्बली-चेम्बर का चक्कर काटकर पिछले दरवाजे की ओर चली गई। इसी समय पंडित जी की मोटर आई और ड्योढ़ी में आकर खड़ी हो गई। 'अल्ला हू-अकबर' और 'महात्मा गांधी की जै' के नारे लगे। ज्यो ही पंडित जी गाड़ी से निकले कि एक मुसलमान ने हाकी निकाल वार करने के लिए उठाई, परन्तु पीछे से किसी ने हाकी पकड़ ली। पंडित जी सीढ़ियाँ चढने लगे तो छुरेवाले ने अपने कोट की जेब से छुरी पकड़ा हुआ हाथ निकाला और पडित जी पर लपका, परन्तु पूर्व इसके कि वह एक भी पग आगे बढ़ता, उसी भारी शरीर के खद्दरधारी ने उसका छुरीवाला हाथ पकड़ लिया इसी समय उसके सिर पर किसी ने हाकी से चोट की और वह घायल

हो वहीं लेट गया। इतने में पडित जी ड्योढ़ी की सीढियाँ चढ भीतर जा पहुँचे। ड्योढ़ी म मुक्केबाजी आरम्भ हो गई।

एक दो मिनट में पाँच-छै आदमी लहु-लुहान हो भीड़ से निकलते दिखाई दिए। इस समय भीड़ तितर-बितर होने लग गई। ठीक इस समय दो ट्रको मे पुलिस वहाँ आ पहुँची। पुलिस को देखते ही लोग भाग खड़े हुए और देखते-देखते चेम्बर के सामने का मैदान खाली हो गया।

साआदत हुसैन चाहता था कि उस भारी शरीरवाले आदमी से, जिसने छुरीवाला हाथ पकड़ा था मिले, परन्तु जब तक उसके आगे से लोग हटते और वह हिल-डोल सकता, वह खद्दरधारी लापता हो गया था। साआदत हुसैन ड्यिढ़ी से बाहर निकल उस आदमी को ढूँढ़ने लगा। उसका कहीं पता नहीं चला।

[२]

अनिमा अगले दिन सायंकाल रॉयल होटेल में चेतनानन्द से मिलने गई। चेतनानन्द उसकी प्रतीक्षा पहिले दिन भी करता रहा था और उस दिन भी कर रहा था। अनिमा देवी को आया देख उसने प्रसन्न होकर कहा, "शुकर है। कल रात के आठ बजे तक बैठा रहा और मैंने मन में यह निश्चय कर लिया हुआ था कि जब तक आप नहीं आतीं, नित्य छै बजे से आठ बजे तक आपकी प्रतीक्षा किया करूँगा।"

"बात यह हुई कि कल हमारे लाला जी के लाहौर के एक मित्र, लाला जीवनलाल जी की पुत्री लाला जी के घर चाय पर आई थी। लाला जी की पुत्र-वधु कमला देवी ने मुझे उस पार्टी मे सम्मिलित होने के लिए कहा तो मै न नहीं कर सकी। वहाँ इतनी देर हो गई कि फिर यहाँ नहीं आ सकी।"

चेतनानन्द अपने पिता जी का नाम सुन गम्भीर विचार में पड़ गया। फिर सोचकर बोला, "क्या नाम है उस लड़की का।"

"रेवा देवी!" इस समय अनिमा ने चेतनानन्द के मुख पर गम्भीर भाव देखा। इससे उसने पूछा, "चेतनानन्द जी, क्या बात है? आपका मुख मलिन क्यों हो गया है?"

चेतनानन्द ने गम्भीर भाव में धीरे-धीरे कहा, "वह मेरी सगी बहिन है। उसके साथ उसका पति है क्या?"

"हाँ महेशचन्द्र जी भी हैं।"

"कहाँ ठहरे हैं?"

"मरीना होटेल में।"

कुछ सोच चेतनानन्द अपने स्थान से उठ मैनेजर के कमरे में टेलीफून करने चला गया। उसके चले जाने पर अनिमा ने उसके कमरे की ओर ध्यान किया। उसने देखा कि एक बिस्तर और एक छोटे से अटेची केस के अतिरिक्त और कोई सामान नहीं था। इस सबसे उसके मन में कई प्रकार की आशंकाएँ उठने लगी थीं। चेतनानन्द ने मैनेजर के कमरे से आकर कहा, "रेवा और रमेश अभी आ रहे हैं।"

"कल से दो विचित्र घटनाएँ हुई हैं। एक तो आपकी बहिन के मेरे सम्पर्क में आने की घटना और दूसरे मुझे कल मालूम हुआ है, कि लाला बनारसीदास जिनकी कम्पनी में मैं नौकरी करती हूँ मेरे पिता जी को भलि-भाँति जानते थे। कल मै अपना परिचय रेवा देवी को दे रही थी कि लाला जी ने मेरे पिता जी का नाम सुन लिया और लगे अन्य परिचितों का नाम बताने। आज उन्होंने मुझको बुलाकर कहा है कि मैं उनको अपने पिता तुल्य ही मानूँ। उन्होंने अपनी पुत्र-वधु को बुलाकर भी कह दिया है कि मैं उनके एक परम मित्र की लड़की हूँ। आज उनका पोता आकर बोला, "बाबा कहते थे कि तुम मेरी बुआ हो।"

"तो आज हम दोनों के लिए बहुत अच्छा दिन चढ़ा है।"

"खैर यह तो हुआ, पर मै जो जानने के लिए उत्सुक हो रही हूँ वह है आपके विषय मे। आप नसीम बहिन को पीछे क्यो छोड़ आए हैं? और फिर आप उसके भाई के घर क्यो नही ठहरे?"

"इसमें विस्मय की कौन बात है, अनिमा देवी। नसीम के बच्चा होनेवाला है और उसके लिए इधर-उधर भागना अच्छा नही समझा गया। रहा उसके भाई के घर मे रहना। जब वह स्वयं अपने भाई के घर नहीं रहना चाहती तो मेरे लिए भी वहाँ जाकर रहना ठीक नहीं रहा।"

"उसके बच्चा होनेवाला है? इससे तो और भी आवश्यक था कि वह अपने भाई के यहाँ आ जाती। यहा उसकी भाभी है और अन्य स्त्रियाँ हैं। वहाँ वह अकेली है। खैर छोड़िए इस बात को। आप नहीं बताना चाहते तो न सही। अब बताइए आप यहाँ काम की खोज मे क्या कर रहे हैं। यदि आपकी इच्छा हो तो मै लाला बनारसीदास जी से कहूँ। उनका काम बहुत बड़ा है। वे आपके लिए कुछ तो कर ही सकते हैं।"

चेतनानन्द ने हँसकर अनिमा की बात टाल दी और अपने विषय में कहने लगा, "मै यहाँ आया तो था वकालत का काम आरम्भ करने के विचार से, परन्तु यहाँ पर कानूनी प्रोफेशन की दुर्गति देख मेरा विचार बदल गया है। कल से मै सोच रहा हूँ कि अपने पिता जी से क्षमा माँगकर उनकी शरण में चला जाऊँ।"

"तो पिता जी से आपका कुछ झगड़ा था?"

"मुझे अब कहते लज्जा लगती है कि हाँ। मेरा उनसे राजनीति में और हिन्दू संस्कृति के विषय मे मतभेद था। यह मतभेद बढ़ता-बढ़ता कलह में बदल गया। अब मुझे अपनी भूल का भास हो रहा है। यह रेवा और रमेश के यहाँ मिल जाने से मेरा पिता जी से क्षमा प्राप्त कर लेना सुगम हो गया है।"

इस आत्मा के विनीत भाव को देख अनिमा के मन में भाँति-भाँति के विचार उठने लगे थे और वह गम्भीर विचारों में डूब गई। चेतनानन्द भी अपने मन में अपने भावों के संचय में लग गया था। इस प्रकार दोनों एक दूसरे से बिना बात किए अपने-अपने विचारो में लीन थे कि महेश और रेवा आ पहुँचे। रेवा ने अनिमा को देखा तो विस्मय में उसका मुख देखती रह गई। उसने अनिमा की बाँह में बाँह डालते हुए कहा, "अनिमा जी ने बताया है कि हम यहाँ हैं?"

"मुझे क्या मालूम था कि ये आपके भाई हैं। मैंने तो साधारण रूप में बताया था कि हमारे लाला जी के एक मित्र, लाहौर के लाला जीवनलाल जी की लड़की दिल्ली में आई हुई है। इस पर ये कहने लगे कि आप इनकी बहिन हैं।"

"जब रेवा और महेश बैठ गए तो अनिमा ने जाने की स्वीकृति माँग ली। इस पर चेतनानन्द ने आग्रह कर कहा, "अनिमा देवी! तनिक बैठो तो। आपसे मेरी कोई बात छिपी तो है नहीं। और फिर मैं तुम्हारा परिचय इनसे कराना चाहता हूँ।"

"सो तो हो गया है।" रेवा ने कहा, "परन्तु ये यहाँ बैठ सकती हैं।"

"नहीं, अब तो क्षमा करें। मुझे सायं होने से पहिले घर पहुँच जाना चाहिए। मैं उनको कहकर नहीं आई।"

अनिमा चली गई। इस पर चेतनानन्द ने महेश और रेवा के दिल्ली आने के विषय में पूछा। पिता जी और रेवा के स्वसुर के स्वास्थ्य के विषय में पूछा। इसके उपरान्त रमेश और रेवा चेतनानन्द के विषय में, भाभी नसीम के विषय मे और उसके काम के विषय में पता करने लगे। चेतनानन्द ने बताया, "यह लड़की, अनिमा देवी मेरे जीवन में क्रान्ति उत्पन्न करनेवाली हुई है। यह कलकत्ता में मेरे अधीन 'स्टीनो-टाईपिस्ट' थी। इसने भारत के इतिहास को और फिर कांग्रेस की नीति को ऐसे ढंग से मेरे सामने रखा कि मुझको सब कुछ

पहिले से उलट दिखाई देने लगा। मुझको नसीम की मुहब्बत और अपना पार्वती से व्यवहार भूल प्रतीत होने लगा है। जब मै इसके कथन पर विचार कर अपने जीवन का निरीक्षण करने लगा तो मेरे ज्ञान-चक्षु खुल गए। इसके पश्चात् इसके कहने का प्रमाण मुझे कलकत्ता के हिन्दू-मुसलिम फ़साद के दिनो मे मिला। इस लड़की की कर्मनिष्ठा और निर्भयता का परिचय मुझे उन दिनों मे पता चला और साथ ही मुझको मुसलमानो (लीगी और नेश्नलिस्ट दोनो) के दृष्टिकोण का ज्ञान हुआ। मैं अब पिता जी से अपने झगड़े में अपने को दोषी समझने लगा हूँ और जब से यहाँ आया हूँ लाहौर जाकर उनके चरणो पर सिर रख उनसे क्षमा माँगने की बात सोच रहा हूँ।"

रेवा ने मुस्कराते हुए पूछा, "तो अब पार्वती और नसीम का स्थान यह अनिमा देवी लेनेवाली हैं।"

"यदि यह हो सकता तो बहुत अच्छा होता। परन्तु रेवा! तुम इसका इतिहास नहीं जानती। यह एक पढ़े-लिखे सुन्दर युवा से प्रेम करती है और उससे विवाह मे भारी बाधा होने पर भी उसकी प्रतीक्षा कर रही है। इसके दृढ निश्चय को देख मै इससे प्रेम करने का साहस भी नही कर सकता। हमारा सम्बन्ध भाई-बहिन का है। इसी नाते से इसने पिछले फसाद में अपनी जान को ख़तरे में डालकर मेरी रक्षा की थी। इसका प्रमाण, उसके कंधे पर नसीम की गोली का निशान, सदैव के लिए बन गया है।"

"अनिमा के विषय में लाला बनारसीदास जी ने भी हमें बहुत-सी बाते बताई हैं। भैया, हमे प्रसन्नता है कि आप अब इस प्रकार सोचने लगे हैं। मुझको पूर्ण विश्वास है कि पिता जी में और आपमें मनमुटाव मिट जावेगा। मैं आपके लाहौर जाने के विषय में उनको आज ही लिख दूँगा।" महेश ने प्रसन्नता प्रकट कर कहा।

"पर नसीम के विषय में क्या होगा? क्या वह पिता जी के घर मे रहना पसन्द करेगी?" रेवा का प्रश्न था।

"वह तो शायद मेरे साथ भी रहना पसन्द नहीं करेगी। उसके और मेरे में तलाक हुए बिना नहीं रहेगा। कठिनाई यह है कि उसके बच्चा होनेवाला है। इसी कारण वह इस विषय में चुप है और बात इस नौबत तक नहीं पहुँची।"

"तब तो सुलह हो जाने में अभी आशा है।" रेवा का कहना था।

"मैंने उससे झगड़ा नहीं किया। उसे मुझसे निराशा हुई है। उसने मुझको जैसा देखा था, वैसा मै नहीं रहा। इससे उसे मेरी संगति मे मिठास मालूम नहीं होती।"

"उसे आपके बच्चे में मिठास प्रतीत होने लगेगी और वह आपको छोड़ नहीं सकेगी।" महेश ने कहा।

[४]

महात्मा गांधी नोआखाली से लौट आए थे। दो मास तक वे उस इलाके में पैदल घूमते रहे जिससे वे वहाँ की देहाती जनता के हृदय तक पहुँच सके। जहाँ-जहाँ महात्मा जी गए वहाँ-वहाँ ही लोगों की भीड़ उनके आगे-पीछे घूमती रही। गाँव-गाँव में 'अल्लाह ईश्वर तेरो नाम' की धुन गाई जाती रही और महात्मा जी के चेले-चपाटों के कथनानुसार महात्मा जी का यह प्रयास अति सफल रहा। देश भर में महात्मा जी को शान्ति का अवतार कहकर स्मरण किया गया।

जब नई दिल्ली, भंगी कालोनी में महात्मा जी अपनी राम-धुन गा रहे थे, उनसे दो-अढ़ाई मील के अंतर पर हिन्दुओं के कत्ले-आम की योजना बन रही थी। मुसलिम लीग की मीटिंग डायरैक्ट ऐक्शन की सफलता के कारणों पर विचार करने के लिए हो रही थी। मिस्टर जिन्ना प्रधान पद पर सुशोभित थे। भिन्न-भिन्न प्रान्तों से आए हुए लोग अपना-अपना अनुभव बता रहे थे। आसाम से एक दुबला-पतला व्यक्ति महात्मा जी के नोआखाली के दौरे के विषय पर एक प्रश्न के उत्तर में कह रहा था।

"महात्मा जी के वहाँ जाने का नतीजा यह हुआ कि हिन्दू लोग वहाँ से भागने बन्द हो गए हैं। हमारा ख़्याल था कि नोआखाली के फ़साद के बाद वह इलाका हिन्दुओं से बिल्कुल ख़ाली हो जावेगा और अगर पाकिस्तान के मुतल्लिक वोट लिया गया तो वोट हमारे हक़ में होगा।

"आसाम में बंगाल के मुसलमान न भेजकर बिहार के मुसलमान भेजने चाहिएँ। बंगाल में मुसलमानो की तादाद हिन्दुओं से कुछ ही ज्यादा है और बिहार में हमारी तादाद कभी भी ज्यादा नहीं हो सकती। वहाँ कुछ और कम हो जाने से नुकसान नहीं हो सकता। बिहार के फ़साद से भागे हुए जितने भी लोग इस वक्त कलकत्ता में पड़े हैं, सब आसाम में भेज देने चाहिए। यह हमारी खुशनसीबी है कि हमारे गवर्नर एक मुसलमान हैं और अगर उन पर ठीक ढंग से दबाव डाला गया तो वे इस मसलह मे हमारी मदद करेंगे।

"रहा आसाम में डायरैक्ट ऐकशन। मै समझता हूँ कि बिहार के वाक़्यात ने वहाँ के मुसलमानों को ऐसा डरा दिया है कि वहाँ इसका होना नहायत मुश्किल है। मुझको इसके हमारे सूबा में कामयाब होने की भी उम्मीद नहीं ''

इससे प्रधान इजलास तिलमिला उठा और बोला, "अगर वहाँ के लोग इतने बुज़दिल हैं तो पाकिस्तान मे उनका शामिल होना, न होना एक बराबर है। अब आसाम के मसलह को छोड़िए। मै आपको बम्बई के मुतल्लिक कुछ वाक़्यात बताना चाहता हूँ। बम्बई, कांग्रेस का मोदी है। कांग्रेस की सब मूवमेंटे बम्बई की मदद से चलती रही हैं। इसलिए कांग्रेस को किसी बात के लिए मजबूर करने के लिए बम्बई का गला दबाना जरूरी था। इसलिए बम्बई और अहमदाबाद में डायरैक्ट ऐकशन जारी कर दिया है। वहाँ पर लगभग एक महीने से कारखाने बन्द पड़े हैं। बम्बई और अहमदाबाद के व्यापारी लोग अभी से कांग्रेस के पीछे पड़ रहे हैं। यह ठीक है कि बम्बई मे हमारा

भी बहुत नुकसान हुआ है मगर पाकिस्तान बनने में बहुत मदद मिली है। वाइसराय की कौंसिल में आधी सीटों का हमको मिलना, यह बम्बई अहमदाबाद मे डायरैक्ट ऐकशन का पहिला नतीजा है।

"मैं चाहता हूँ कि वहाँ पर इतना फ़साद जारी रहना चाहिए जिससे मीलें अभी कुछ देर तक बन्द रह सकें। बम्बई के मील-मालिकों ने जब देखा कि बिना पाकिस्तान बने उनका कारोबार चल नहीं सकेगा तो वे कांग्रेस का यह मानने पर मजबूर कर देंगे।"

इस समय बिहार का एक प्रतिनिधि उठकर कहने लगा, "पंडित जवाहर लाल जी ने बिहार के हिन्दुओं को फ़साद करने पर बहुत कोसा है। महात्मा गांधी ने भी उनकी सख़्त इल्फ़ाज़ मे निन्दा की है। ऐसे मौके से फ़ायदा उठाकर हमें सरकार की ओर से मज़लूम मुसलमानों की मदद करवानी चाहिए।"

"इसका इन्तज़ाम कर दिया गया है। वाइसराय की कौंसिल में मुसलिम लीग के नुमाइन्दों ने सबसे पहिले इसी बात को छेड़ा था और उन्होंने इस मतलब के लिए पचास लाख मंजूर करवा लिया है।"

इसके बाद मीटिंग मे पंजाब का मसलह आरम्भ हुआ। पजाब का नुमाइन्दा उठकर कहने लगा, "हमारे यहाँ तो जब तक यूनियनिस्ट पार्टी क़ायम है, डायरैक्ट ऐकशन हो नहीं सकता।"

"तो फिर इस पार्टी को हटा दो।"

"इसी मस्लह पर गौर करने के लिए तो लिखा था।"

"तो आपकी कोई तजवीज नहीं है?"

"तजवीज तो है। अगर आप इजाजत दें तो अर्ज करूँ। हमारा कहना है कि यूनियनिस्ट सरकार को बदलने के लिए पुर अमन हलचल करनी चाहिए। जलूस, जलसे और, जैसा कि पंजाब में मशहूर है, 'सिआपे' करने चाहिए। हिन्दू इस ऐजीटेश्न की मुखाल्फत करेंगे और कुदरती तौर पर हिन्दू-मुसलमान फसाद हो जावेगा। यह हमारे डायरैक्ट ऐकशन का आगाज होगा।"

"बहुत खूब" प्रधान ने कहा, "मुझको यह बात मंजूर है। शर्त सिरफ यह है कि पंजाब को बिलकुल खाली करवाना है।"

"ऐसा ही होगा। हमारा बस चल गया तो दो महीने में पंजाब में हिन्दू का नाम लेनेवाला नहीं रहेगा।"

प्रधान ने कहा, "मेरा ख़याल है कि सिन्ध में अभी हलचल नहीं होनी चाहिए। वहाँ के हिन्दू तो सौ फी सदी मुसलमान हो जावेंगे। उनको निकालने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। एक बात और याद रखने की है कि सिक्ख कौम हमारी दुशमन नम्बर एक है। उसके मरद, औरत व बच्चे, हर एक को मौत के घाट उतारना है। इस कौम का बीज नाश करना है।"

जिस समय यह योजनाएँ बन रही थीं, भंगी कालोनी में महात्मा जी हिन्दुओं को डाँट रहे थे। महात्मा जी की प्रार्थना में किसी ने कुरान के पढ़े जाने पर आपत्ति उठाई थी। कुरान पढ़ने के समय एक औरत ने उठकर कहा था, "यहाँ यह नहीं पढा जाना चाहिए।"

"क्यों?" महात्मा जी का प्रश्न था।

"यह एक हिन्दू मन्दिर है और इसमें कुरान का पढ़ना हिन्दू धर्म के विरुद्ध है।"

"मैं ऐसा नहीं समझता।"

"परन्तु आपको धर्म में व्यवस्था देने योग्य हम नहीं मानते।"

"तो इसमें उपस्थित लोगों का मत ले लिया जावे।"

"क्या धर्म के विषय में वोटों से निर्णय हो सकता है। धर्म-शास्त्रियो को बुलवाकर इस बात में मत लिया जावे।"

"आप मेरे धर्म में मदाख़लत कर रही हैं।"

"महात्मा जी! यह नहीं। आप कोटि-कोटि हिन्दुओं के धर्म में नाजायज़ दख़ल दे रहे हैं।"

"मैं तो कुरान सुनूँगा।"

"मैं इसका विरोध करूँगी।"

इस पर दस बारह नवयुवक उठ खड़े हुए और कुरान पढ़े जाने का विरोध करने लगे। जब यह झगड़ा हो रहा था, महात्मा जी के भक्तो में से कोई उठकर टैलीफून करने गया और उसने पुलिस को बुला लिया। पुलिस आई और कुरान पढने में विरोध करनेवाले युवकों को पकड़ कर ले गई और उनके खिलाफ दफा एक सौ सात का मुकद्दमा चला दिया।

उनके गिरफ्तार होने के पश्चात् महात्मा गाधी ने कुरान पढने के लिए कहा और पीछे प्रार्थना में विघ्न डालनेवालों को डाँटना आरम्भ कर दिया।

[५]

यह वही दिन था जिस दिन चेतनानन्द अपनी बहिन रेवा और महेश से मिला था। अगले दिन इस घटना को चेतनानन्द ने समाचार-पत्र में पढ़ा तो उसका रक्त उबलने लगा। वह सोचता था कि दूसरे कांग्रेसी चाहे कितने भी खराब हों पर महात्मा गाधी तो शान्ति और सत्याग्रह के अनुयायी हैं। उसे पहिले तो यह समाचार असत्य ही प्रतीत हुआ। उसने बाज़ार में जाकर दूसरे समाचार-पत्र ख़रीदे। सब में इस समाचार को एक समान लिखा पाकर क्रोध से उतावला हो महात्मा जी के निवास-स्थान पर जा पहुँचा। जाते ही उसने महात्मा जी के आस-पास रहनेवाले लोगों से महात्मा जी से भेंट करने की स्वीकृति माँगी। यह सुन महात्मा जी के प्राइवेट सेक्रेटरी बाहर आ गए और पूछने लगे, "आप कौन हैं?"

चेतनानन्द ने मुलाकात हासिल करने के लिए कह दिया, "मै बंगाल सरकार का पबलिसिटी आफिसर हूँ।"

भेंट तुरन्त हो गई। चेतनानन्द देख रहा था कि कई खद्दरधारी वहाँ पर घटो से बैठे थे। उन सबको छोड़कर चेतनानन्द को भेंट का अवसर मिल गया।

"आपका इस्म-शरीफ़ क्या है।" महात्मा जी का पहिला प्रश्न था।

"चेतनानन्द।"

"मैंने समझा था कि आप कोई मुसलमान हैं। अच्छा ख़ैर। आप जल्दी करिए, क्या काम है?"

चेतनानन्द इस बात से तो सन्न रह गया। उसने ज़रा अकड़कर कहा, "यदि मैं मुसलमान होता तो आपको जल्दी नहीं थी क्या? आपको एक हिन्दू से बात करने मे भी दुख होता है?"

"नहीं! नहीं! यह बात नहीं। आप जानते हैं कि मुझे काम बहुत रहता है। इस लिए आप काम की बात करिए।"

चेतनानन्द ने भी समय व्यर्थ न खोने का विचार कर इस बात को छोड़ दिया और अपने आने का उद्देश्य कहने के लिए जेब से समाचार-पत्र निकालकर महात्मा जी के सम्मुख रखकर पूछा, "क्या यह सत्य है?"

"हाँ, यह सब सत्य है।"

"आपकी प्रार्थना में ये लोग पकड़े गए हैं?"

"हाँ।"

"इन्होने किसी को मारा-पीटा तो नहीं था।"

"इन्होंने प्रार्थना में बाधा डाली थी।"

"पर इनके विरुद्ध तो दफा १०७ की कार्रवाई हो रही है।"

"यह देखना मेरा काम नहीं है।"

"पर यह तो अन्याय हो गया है और आपकी प्रार्थना में।"

"मैं क्या कर सकता हूँ? मैं सरकार नहीं हूँ। इन पर कौन दफा लग सकती है, यह देखना मेरा काम नहीं है।"

"पर महात्मा जी! आपकी प्रार्थना मे से गिरफ़ारियाँ हों और आप सहन करें, यह मेरी समझ में नहीं आ रहा। शायद आप उन युवकों को छुड़ाने के लिए आमरण व्रत रखेंगे?"

महात्मा जी चुप कर रहे। इसी समय महात्मा जी के प्राइवेट सेक्रेटरी ने चेतनानन्द को कहा, "आपका समय हो गया।"

"पर मैं तो बहुत जरूरी बातचीत करने आया हूँ। मैं चाहता हूँ महात्मा जी सरकार के इस अनुचित हस्ताक्षेप को हटवाने के लिए व्रत रखे। मैं तो उनके साथ व्रत रखने आया हूँ।"

"पर भाई साहब, सरकार तो अब अपनी है। जब बेगानी थी तब तो सत्याग्रह ही ठीक था परन्तु अब जो कुछ वह कर रही है सब हमारी भलाई के लिए ही है।"

"तब तो और भी ज़रूरी है कि सत्याग्रह किया जावे। अपनी सरकार तो तुरन्त मान जावेगी। व्रत बहुत लम्बा नहीं चलेगा।"

"पर कोई बात भी तो हो।"

'इससे भी बढ़कर कोई बात हो सकती है क्या? महात्मा जी की प्रार्थना में पुलिस आवे और प्रार्थना करनेवालों को पकड़ ले जावे। भला इस प्रकार काम कैसे चलेगा? उन लड़को को छुड़ाना चाहिए। उन्होंने कोई बुरी बात नहीं की।"

"अच्छा, अच्छा महाराज। चलिए! अन्य मिलनेवाले बहुत बाहर बैठे हैं।"

विवश चेतनातन्द बहुत निराश हो होटल को जहाँ वह ठहरा हुआ था लौट आया। मार्ग में और होटल मे भी जब तक अनिमा नहीं आई वह गम्भीर विचार मे पड़ा रहा। वह सोचता था कि महात्मा जी तो विचार स्वतन्त्रता और सत्याग्रह के पुजारी हैं। उन्होंने सत्याग्रह करनेवाले लड़को को पकड़वा दिया सो अत्यन्त विस्मय करने की बात है। सबसे बड़ी बात यह थी कि उन पर दफा १०७ का मुकद्दमा बनाया गया था। महात्मा जी जानते थे कि उन्होने कोई फ़साद नहीं किया। दूसरे शब्दो में उन पर अन्याय हो रहा है और महात्मा जी चुपचाप बैठे हैं। वह मन में सोचता था कि क्या महात्मा जी भी दूसरों की भाँति सत्य और न्याय का ढोंग करते हैं। जब वह

इस परिणाम पर पहुँचता था तो काँप उठता था। जब महात्मा ऐसे हैं तो उनके शिष्य क्या होंगे ? इन लोगों पर कितना भरोसा रखना चाहिए और इनसे क्या कुछ आशा करनी चाहिए।

आज सायं अनिमा आई तो उसे चेतनानन्द का मुख उतरा हुआ दिखाई दिया। उसने चिन्ता के भाव में पूछा, "यह आज क्या हो रहा है ?"

"आज मुझे जीवन की सबसे बड़ी बात में धोखा हुआ है। वकालत पास करने के बाद पाँच वर्ष मैंने एक थोथे आदमी के पीछे व्यर्थ खोए हैं। मैं उसे महात्मा समझता था परन्तु वह तो सर्वथा ही साधारण-सा व्यक्ति निकला है। अपनी मूर्खता पर भारी पश्चात्ताप हो रहा है।"

"कौन हैं वे, जिनसे आपको इतना धोखा हुआ है ?"

"आज हिन्दुस्तान में केवल एक ही तो महात्मा है। मेरा मतलब महात्मा गाधी से है। कल उनकी सभा में कुछ लड़कों ने कुरान पढ़े जाने के विरुद्ध आग्रह किया। इस पर उनको पुलिस बुला पकड़वा दिया है। जिस बात में महात्मा गाधी की महिमा थी उसी मे वे असत्य सिद्ध हुए। दूसरे राजनीतिक नेताओं की बात न मानकर महात्मा जी के पीछे तो मैं इसी लिए लगा था कि वे सत्य के साक्षात् अवतार और शान्ति के सबसे बड़े समर्थक हैं। मुझे आज पता चला है कि वे अपने विरुद्ध न तो सत्याग्रह सहन कर सकते हैं, न ही वे किसी दूसरे के दृष्टिकोण को समझने की क्षमता रखते हैं।"

"पर इसमें निराश और उदास होने की कौन आवश्यकता है। कई बार मनुष्य धोखा खाता है। जब किसी को ठीक वस्तु का ज्ञान प्राप्त हो तो उसे उदास होने के स्थान प्रसन्न होना चाहिए। महात्मा लोग भी तो संसार में मनुष्य ही होते हैं और भूल कर सकते हैं। यह बात निर्विवाद सत्य है कि महात्मा जी की पूर्ण योजनाएँ असफल हुई हैं। उनसे प्रतिपादित सिद्धांत असत्य सिद्ध हुए हैं। अहिंसात्मक

सत्याग्रह अफ्रीका में निष्फल हुआ, पश्चात् १९२१ में असफल रहा, १९३१-३२ का आन्दोलन व्यर्थ गया और १९४२ में चल भी नहीं सका। वास्तव में महात्मा जी स्वयं भी अपनी योजनाओं की व्यर्थता और अपने सिद्धातो की असत्यता को समझने लगे हैं। यद्यपि वे अपनी असफलता को मानते नहीं, इस पर भी उनकी अतरात्मा, इस असफलता का भान करती प्रतीत होती है। यही कारण है कि वे अपने विरुद्ध न तो किसी की बात सुन सकते हैं और न ही अपने पर आक्षेप सहन कर सकते हैं।"

"बहुत विचित्र है। महात्मा को तो मन, वचन और कर्म से एक समान होना चाहिए। इस पर भी, अनिमा देवी! तुम्हारी सूझ और तुम्हारे वस्तु स्थिति को समझने की शक्ति की मै दाद दिए बिना रह नहीं सकता। आज मैने उनसे कहा कि आपकी प्रार्थना में सत्याग्रह करनेवाले पर दफा १०७ की कार्रवाई हो रही है तो बोले कि वे सरकार नहीं हैं। मैं तो यह सुनकर चकित रह गया था। वे तो कभी भी सरकार नहीं हुए। फिर पहिली सरकारों के विरुद्ध वे क्यों इतना झगड़ा करते रहे हैं। मुझे उनकी बात समझ नहीं आई थी, परन्तु आपके उनकी मानसिक अवस्था के विश्लेषण से मै समझ गया हूँ कि उनकी अंतरात्मा उनको कह रही है कि पहिले वे गलती करते थे।"

"केवल यही नहीं, प्रत्युत यह भी है कि पहिले वे जानते थे कि वे सरकार नहीं थे और अब वे साक्षात् सरकार हैं। इसी से जो कुछ सरकार के विरुद्ध वह पहिले कर सकते थे, अब नहीं करना चाहते। उनके सत्याग्रह, सत्य इत्यादि सब बाते दूसरो के लिए थीं। अपने लिए नहीं।"

"बहुत विस्मयजनक बात है। समझ नहीं आता कि क्या मानूँ और क्या न मानूँ?"

"और भी देखिए। जो कुछ काग्रेसी नेता कर रहे हैं, सब उनकी

राय से कर रहे हैं। इस पर भी समय-समय पर वे लोगों को कहते रहते हैं कि वे सरकार नहीं हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि यदि कुछ ख़राबी हो गई तो उत्तरदायित्व उन पर न हो। जब कांग्रेस कमेटी नेताओं की बात को सुन रद्द करने लगी थी तो वे उनकी सहायता के लिए अपना मौन-व्रत तोड़कर भी और कांग्रेस का मेम्बर न होते हुए भी सभा में जा पहुँचते हैं और वैसे कहते रहते हैं कि वे पंडित जवाहर लाल आदि से सहमत नहीं।"

"देखो अनिमा देवी! मेरा सब प्रयास विफल गया है। इन्हीं महात्मा जी की नीति का अनुकरण करते हुए मैं अपने पिताजी से लड़ गया था। मैं नसीम से विवाह कर बैठा और अब बेकार बेमददगार और अपने मन में ही दोषी अनुभव कर रहा हूँ।"

"रेवा देवी आज मुझे मिलने आई थीं और मेरा धन्यवाद कर रही थीं। मैंने कारण पूछा तो कहने लगी कि आपसे पूछ लूँ।"

चेतनानन्द हँस पड़ा। अनिमा देवी विस्मय में उसका मुख देखती रहीं। इस पर उसने कहा, "मैंने तो केवल इतना कहा था कि आपने मेरे विचारों में परिवर्तन उत्पन्न कर दिया है जिससे मैं पिता जी से क्षमा माँगने लाहौर जा रहा हूँ। शायद इसी कारण वह आपकी सराहना करती होगी। वास्तव में आप हैं भी इसी योग्य।"

[२]

लाला जीवनलाल को दो तार मिले। एक रमेश का भेजा हुआ था और दूसरा लाला बनारसीदास जी का। महेश ने लिखा था। "भाई चेतनानन्द परेशानी में हैं। आ जाइए।" बनारसीदास ने कुछ व्याख्या में लिखा था। "चेतनानन्द चौराहे पर पहुँच गया है। आपसे पथ-प्रदर्शन लाभ कर सकता है, जरूर आइए।"

जीवनलाल महेश के कहने पर शायद न भी आता परन्तु बनारसीदास जैसे अनुभवी मित्र का कहना वह टाल नहीं सका। तार मिलते

ही हवाई जहाज़ द्वारा दिल्ली पहुँच गया। हवाई जहाज़ के अड्डे से वह सीधा बनारसीदास की कोठी पर पहुँचा। बनारसीदास उसके आने की आशा अगले दिन करता था, परन्तु उसे उसी सायंकाल अपनी कोठी में प्रवेश करते देख समझ गया कि बाहरी कठोर आवरण के भीतर पिता का स्नेहयय हृदय अभी जीता है।

बनारसीदास बाहर आकर जीवनलाल का स्वागत करने लगा। दोनोगले मिले और फिर कोठी में पहुँचे तो रेवा और महेश को टेली-फून कर दिया। वे पिक्चर देखने के लिए जानेवाले थे कि उनको टेलीफून मिला। वे तुरन्त पिता को मिलने चले आए।

स्वास्थ्य समाचार हो चुकने पर जीवनलाल ने चेतनानन्द की बात आरम्भ कर दी।

"भाई बनारसीदास! चेतनानन्द की क्या बात है?"

"यह तो महेश जी बतावेंगे। तब तक हम चाय पी लें। फिर उससे मिलने चलेंगे।"

संकेत पा रमेश ने बता दिया, "हमको तो मालूम नहीं था कि भैया यहाँ दिल्ली मेहैं। परसो हम चाय पर यहाँ आए तो इनके आफिस की एक स्टीनो टाइपिस्ट श्रीमती अनिमा देवी को हमारा परिचय प्राप्त हा गया। वे भैया के अधीन कलकत्ते मे स्टीनो रह चुकी थीं और यहाँ पर उनसे मिलती रहती हैं। कल वे उनसे मिलने गइं तो रेवा के विषय मे बात हो गई। इससे भैया को हमारे यहाॅ होने का पता चल गया और उन्होंने हमको टेलीफून कर दिया। हम दोनों कल उनसे मिले थे। भैया यहाँ एक छोटा-सा अटैची-केस और बिस्तर लेकर होटल के सबसे सस्ते कमरे में ठहरे हुए हैं। उस कमरे को ही देखकर अनुमान लग सकता है कि उनकी आर्थिक अवस्था बहुत दुर्बल है। भैया अपने पूर्व के व्यवहार पर पश्चात्ताप भी करते थे और मैने उनसे वचन दिया था कि आपको पत्र लिखूँगा। आज जब लाला जी से

मिलने आए तो हमने उनसे सब बात कही। इस पर उनकी सम्मति यह हुई कि आपको तार देकर यहाँ बुला लिया जावे।"

महेश और लाला जीवनलाल इन्द्रजीत की गाड़ी में बैठकर रायल होटेल में जा पहुँचे। अनिमा बैनर्जी चेतनानन्द से उस दिन की भगी कालोनीवाली घटना की विवेचना कर ही रही थी कि उसका पिता और रमेश कमरे के दरवाजे पर आ खड़े हुए। अनिमा की पीठ दरवाजे की ओर थी। चेतनानन्द ने पिता जी को देखा तो उठकर उनके पाँव पड़ा। अनिमा उसे एकाएक उठ और दरवाजे की ओर जाते देख खड़ी हो, घूमकर देखने लगी और महेश के साथ एक साठ पैंसठ वर्ष की आयु के व्यक्ति को देखकर सब समझ गई।

जीवनलाल ने चेतनानन्द को उठाकर पीठ पर हाथ फेर स्नेह से गले लगा लिया। पश्चात् कमरे में प्रवेश किया। इस समय महेश ने अनिमा देवी का परिचय कराया।

जीवनलाल ने होटल के कमरे के फरनीचर और चेतनानन्द के सामान पर एक नज़र दौड़ाई तो रमेश के कहने की सत्यता जान गया। दो-तीन मिनट तक इधर-उधर की बात-चीत करने के पश्चात् जीवनलाल ने चेतनानन्द से कहा, "यहाँ आकर तुम बनारसीदास जी से मिलने नहीं गए। मेरा विचार है तुमको उनसे मिलने चलना चाहिए। क्या अभी चल सकोगे?"

चेतनानन्द उठ चलने को तैयार हो गया। अनिमा भी उठ खड़ी हुई और विदा माँगने लगी। अनिमा के चले जाने के पश्चात् चेतनानन्द अपने पिता रमेश के साथ बनारसीदास जी की कोठी पर आ गया।

मार्ग में चेतनानन्द अपने विचारों का संकलन करता रहा। वह अपनी भूल को उपयुक्त शब्दों में अपने पिता के सम्मुख रखना चाहता था। जीवनलाल भी सोच रहा था कि यदि दिन-भर का भूला रात को भी घर आ जावे तो प्रसन्नता का ही विषय है।

बनारसीदास जी की कोठी में पहुँच चेतनानन्द ने अपने राजनीतिक विषयों में निर्भ्रान्त होने की पूर्ण कथा सुना दी। जब से वह बगाल सरकार का पबलिसिटी अफिसर बना था, तब से लेकर उस दिन के महात्मा गाधी से भेंट करने तक पूर्ण विवरण और अनुभव वर्णन कर उसने बताया "पिता जी, मैं रुपये-पैसे से दुखी होकर पश्चात्ताप नही कर रहा। अभी मेरा त्याग-पत्र बंगाल सरकार ने स्वीकार नहीं किया। इसके अतिरिक्त अभी भी, यदि मै चाहूँ तो, भारत-सरकार में कुछ न कुछ काम पा सकता हूँ। परन्तु मेरे दृष्टिकोण मे इतना भारी अंतर आ गया है कि मै अब न तो काग्रेस सरकार से सहयोग कर सकता हूँ और न बंगाल की मुसलिम सरकार से।

"मैं समझता था कि हिन्दू-मुसलमान एक ही जाति है, परन्तु कलकत्ता, नोआखेली और बम्बई के झगड़ो को देख मेरा भ्रम दूर हो गया है। इच्छित लक्ष्य और वस्तु-स्थिति में अन्तर दिखाई देने लगा है

"मैं समझता था कि काग्रेस एक राष्ट्रीय सस्था है। आज मेरा यह स्वप्न भी भंग हुआ है और मुझ को दिखाई देने लगा है कि काग्रेस एक सम्प्रदाय बन गया है। इस सम्प्रदाय के गुरु, पीर, मुर्शिद महात्मा गान्धी हैं और उन पर सम्प्रदाय के लोगों की अगाध श्रद्धा है। यह काग्रेसी सम्प्रदाय हिन्दू-विरोधी और मुसलिम-परस्त है।

"मैं समझता था कि मैं काग्रेस मे सम्मिलित होकर देश तथा जाति की सेवा कर रहा हूँ। मेरा यह भ्रम भी दूर हुआ है और मुझ को ऐसा प्रतीत होने लगा है कि मैं देश का गला काटनेवाली छुरी की पैनी धार बना हुआ था।

"मै अपने किए पर पश्चात्ताप कर रहा हूँ और अपने भावी जीवन के मार्ग को स्पष्ट देखने लगा हूँ। यह मार्ग गाधीवाद से दूसरी ओर को जाता है।

"देखो चेतनानन्द। यदि वास्तव में तुम यह समझ गए हो तो मैं ईश्वर का धन्यवाद करता हूँ। मनुष्य को ज्ञान देनेवाला वही है, परन्तु मैं तुमको एक बात और बताना चाहता हूँ। मेरे विचार धारा का आधार यही बात है। मैं समझता हूँ कि देश एक निर्जीव वस्तु है। यहाँ नदी-नाले हैं। पहाड़ और झीलें हैं। हरे-भरे मैदान और फूलों से लदी घाटियाँ हैं। ये सब बहुत सुन्दर हैं, परन्तु इनसे भी अधिक सुन्दर स्थान अन्य देशों में हो सकते हैं। अतएव देश प्रेम इन नदी-नालों और पर्वत-झरनो से प्रेम को नहीं कहते। देश-प्रेम यहाँ बसे हुए लोगो से प्रेम को कहते हैं। भारत मे रहनेवाले हिन्दू हैं और जो संस्था उनका ही नाश करनेवाले हैं वह देशहितैषी नहीं हो सकती। साथ ही यह भी याद रखना चाहिए कि हिन्दू एक जन-समूह है। यह पशुओ का झुंड नहीं है। प्रयोजन यह है कि हिन्दू भी अपना आचार-व्यवहार और विचार रखते हैं। इस देश में रहनेवाले अस्सी प्रतिशत सख्या लोगों, अर्थात् हिन्दुओ, के आचार और विचारों की हत्या करनेवाली संस्था अथवा व्यक्ति देश की प्रेमी नहीं, देश की घातक कही जानी चाहिए।

"मैंने तुमको घर से नहीं निकाला। उस समय भी जब तुम इन सब बातों को समझते नहीं थे, तब भी तुमको निर्वाह-योग्य देने को कहता था। अब भी वही ही दे सकता हूँ। दान में दिया धन तो दे ही दिया है। अब वापिस नहीं लूँगा।

"तुम युवा हो, समझदार हो, पढ़े-लिखे हो, क्या इतने से तुम सीधी ग्रीवा कर चल नहीं सकते। चलो मेरे साथ और संसार-सागर में डुबकी लगावो। अभी भी इस के मंथन से रत्न निकाल सकोगे।"